ब्रज-साहित्य-माला स० ४

ब्रजभाषा साहित्य का
ऋतु-सौन्दर्य



ब्रजभाषा काव्य की षट् ऋतु विषयक उत्कृष्ट कविताओं का संकलन



संकलयिता :

प्रभुदयाल मीतल

प्रथम संस्करण
आषाढ, सं० २००७ वि०

मूल्य ४)

ब्रजसाहित्य माला

ब्रजभाषा-काव्य के प्रेमियो
तथा
उच्च हिंदी कक्षाओ के विद्यार्थियो
के लाभार्थ—

ब्रज-साहित्य-माला की पुस्तकें

[लेखक—प्रभुदयाल मीतल]

*

१. अष्टछाप-परिचय [परिवर्द्धित संस्करण] ५)

२. ब्रजभाषा साहित्य का
नायिकाभेद [परिवर्द्धित संस्करण] ६)

३. सूर-निर्णय ... ... ५)

४. ब्रजभाषा साहित्य का
ऋतु-सौन्दर्य... ... ४)

प्राप्तव्य स्थान .

ब्रजभाषा-काव्य के प्रेमियो
तथा
उच्च हिंदी कक्षाओ के विद्यार्थियो
के लाभार्थ—

ब्रज-साहित्य-माला की पुस्तकें

[लेखक—प्रभुदयाल मीतल]

*

१. अष्टछाप-परिचय [परिवर्द्धित संस्करण] ५)

२. ब्रजभाषा साहित्य का
नायिकाभेद [परिवर्द्धित संस्करण] ६)

३. सूर-निर्णय ... ... ५)

४. ब्रजभाषा साहित्य का
ऋतु-सौन्दर्य... ... ४)

प्राप्तव्य स्थान :

अग्रवाल प्रेस, मथुरा।

प्राक्कथन



ज्योतिष-शास्त्रियों ने सूर्य की गति की कल्पना करते हुए उसके एक क्रांत वृत्ताकार मार्ग की भी कल्पना की है। सूर्य जितने समय में इस मार्ग का पूरा चक्कर लगाता है, उसे एक वर्ष कहा जाता है। इस मार्ग पर स्थित सूर्य कभी पृथ्वी के निकट रहता है और कभी इससे दूर हो जाता है। जब सूर्य पृथ्वी के निकट रहता है, तब यहाँ पर गर्मी की अधिकता और शीत की न्यूनता होती है। जैसे-जैसे सूर्य पृथ्वी से दूर होता जाता है, वैसे-वैसे ही यहाँ पर गर्मी की न्यूनता और शीत की अधिकता होती जाती है। इस प्रकार सूर्य की स्थिति से उत्पन्न गर्मी-सर्दी की न्यूनाधिकता ही ऋतुओं का कारण है।

सूर्य के वृत्ताकार मार्ग के ज्योतिषियों ने १२ भाग किये हैं। ज्योतिष शास्त्र में इन १२ भागों को १२ राशियाँ और लोक में १२ महीने कहा जाता है। गर्मी, सर्दी और वर्षा के कारण वर्ष के ६ विभाग किये जाते हैं, जिनको छै ऋतु कहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक ऋतु दो-दो महीनों की होती है। वृत्ताकार मार्ग पर स्थित सूर्य जब छै महीनों तक पृथ्वी के निकट होता है, तब उसे उत्तरायण और शेष छै महीनों तक जब वह पृथ्वी से दूर होता है, तब उसे दक्षिणायन कहते हैं। उत्तरायण में शिशिर, बसंत और ग्रीष्म तथा दक्षिणायन में वर्षा, शरद और हेमंत ऋतुएँ होती हैं।

यह क्रम सौर मान के अनुसार है; किंतु सूर्य के अतिरिक्त चद्रमा की गति के अनुसार भी वर्ष और महीनों की गणना की जाती है। चांद्र गणना में वर्ष का आरंभ चैत्र से होता है, इसलिए इस मत के अनुसार ऋतुओं का आरंभ भी चैत्र में पड़ने वाली बसंत ऋतु से किया जाता है। सौर गणना में ऋतुओं का आरंभ शिशिर से होता है, जैसा ऊपर लिखा गया है।

प्रकृति के प्रत्येक व्यापार का अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रभाव मानव-जीवन पर पड़ना स्वाभाविक है, इसलिए साहित्य में ऋतु वर्णन की परिपाटी अत्यंत प्राचीन काल से प्रचलित है। सस्कृत साहित्य में ऋतुओं का बड़ा मनोरम वर्णन मिलता है। कालिदास कृत 'ऋतु-संहार' इस विषय की प्रमुख रचना है। संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में भी ऋतुओं का सुंदर वर्णन किया गया है। हिंदी साहित्य में ब्रजभाषा कवियों की ऋतु वर्णन संबंधी एक विशिष्ट शैली है, जिसके अनुसार विक्रम की १६ वीं शती

से अब तक सैकड़ों कवियों ने ही षट् ऋतु विषयक रचनाएँ की हैं। इस प्रकार ब्रजभाषा में ऋतु वर्णन संबंधी विशाल साहित्य प्रस्तुत है, जो काव्य–सौन्दर्य में अपनी समता नहीं रखता है । परिष्कृत साहित्य के अतिरिक्त लोक गीतों में भी ऋतु वर्णन अति प्राचीन काल से होता रहा है । यद्यपि अत्यंत प्राचीन लोक गीतों के प्रामाणिक नमूने इस समय प्रचुर परिमाण में उपलब्ध नहीं है, तथापि इस बात के यथेष्ट प्रमाण हैं कि प्राचीन काल में लोक गीतों द्वारा ऋतु वर्णन अत्यंत विशद रूप में होता था । वंग, गुर्जर एवं राजस्थान प्रदेशों के १० वीं से १२ वी शती के अनेक ऋतु गीत अब भी उपलब्ध हैं ।

वैष्णव संस्कृति में कृष्ण और राधा का सर्वोपरि महत्व है, जिसके कारण वैष्णव साहित्य, संगीत एवं चित्र कला आदि कृष्ण और राधा की प्रेम-लीलाओं से ही विशेषतया संबंधित हैं। लोक–मानस पर भी राधा–कृष्ण की कितनी गहरी छाप है, इसके प्रमाण वे लोक गीत हैं, जिनमें राधा–कृष्ण का विविध भाँति से वर्णन किया गया है। वंग एवं गुर्जर प्रदेशों के प्राचीन ऋतु गीतों में भी कृष्ण-लीला का ही वर्णन मिलता है, किंतु राजस्थान के ऋतु गीत वहाँ के शूरवीरों के वर्णनों से भरे हुए हैं।

संस्कृत साहित्य में कालिदास आदि प्राचीन कवियों ने सौर मान के अनुसार शिशिर से ऋतु वर्णन का आरंभ किया है। इसके विरुद्ध हिंदी साहित्य में चान्द्र मान को प्रमुखता देते हुए बसंत से ऋतु वर्णन का आरंभ किया जाता है। होली शिशिर ऋतु के अंत में होने पर भी एक प्रकार से बसंत ऋतु का उत्सव है। होली के साथ ही साथ बसंत ऋतु का आरंभ होता है, इसलिए संस्कृत कवियों के अनुसार शिशिर से ऋतु वर्णन करने में हमको भी अधिक सुविधा थी। उस समय हमारा संकलन भी अधिक क्रमबद्ध होता ; किंतु हिंदी कवियों की प्रचलित परिपाटी के अनुसार हमने बसंत से ही अपने ऋतु वर्णन का आरंभ किया है। साहित्यिक वर्णन की दृष्टि से होली और बसंत में अधिक अंतर नहीं है और ब्रजभाषा कवियों ने इन दोनों का मिला-जुला वर्णन किया भी है, किंतु पृथक् ऋतुओं के अंतर्गत होने के कारण प्रसंग की दृष्टि से वे एक दूसरे से बहुत दूर पड़ गये हैं। पाठकों को इन दोनों का वर्णन साथ–साथ पढ़ने से विशेष आनंद आ सकता है।

समस्त ऋतुओं में बसंत सर्वश्रेष्ठ है। इस ऋतु में प्रकृति अपना नूतन शृंगार करती है, जिसके कारण समस्त भू मंडल प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण हो जाता है। इस आनंददायक ऋतु का कथन समस्त भाषाओं के कवियों ने जी भर कर किया है। ब्रजभाषा कवियों ने भी इसका विविध भाँति से बड़ा

विशद वर्णन किया है। उन्होंने बसंत के अतिरिक्त होली का कथन भी बड़े हर्षोल्लास के साथ किया है। यदि होली और बसंत संबंधी ब्रजभाषा रचनाएँ एकत्रित कर दी जाँय, तब उनकी संख्या अन्य ऋतु संबंधी कविताओं से बहुत अधिक होगी। होली और बसंत के पश्चात् वर्षा विषयक रचनाओं का महत्व है। यदि होली और बसंत विषयक कविताएँ पृथक कर दी जाँय, तब वर्षा संबंधी ब्रजभाषा कविताएँ काव्य-सौन्दर्य और काव्य-परिमाण दोनों दृष्टियों से सर्वश्रेष्ठ ज्ञात होंगी। वर्षा ऋतु है भी बड़ी सुहावनी ऋतु। इस ऋतु में समस्त रस ही नहीं, वरन् समस्त ऋतुओं की भी सामग्री मिलती है। यही कारण है कि ब्रजभाषा कवियों ने इसका बड़ा विशद वर्णन किया है। प्रस्तुत पुस्तक मे भी वर्षा संबंधी रचनाएँ सबसे अधिक परिमाण में संकलित की गयी हैं। वर्षा, बसंत और होली के पश्चात् ब्रजभाषा कवियों का मन शरद वर्णन में अधिक रमा है। इस ऋतु की रात्रि बड़ी मनोरम होती है। निर्मल आकाश, प्रकाशमान चंद्र और उज्ज्वल चंद्रिका के कारण कवियों को इस ऋतु के वर्णन की स्वाभाविक प्रेरणा मिली है। शरद की सुहावनी रात्रि में श्री कृष्ण ने गोपियों के साथ रास-लीला की थी, अतः ब्रजभाषा कवियों ने शरद वर्णन के साथ रास-लीला पर भी सुंदर रचनाएँ की हैं। इन ऋतुओं के अतिरिक्त उन्होंने ग्रीष्म, हेमंत और शिशिर का वर्णन विशेष विस्तार एवं मनोयोग पूर्वक नहीं किया है। फिर भी इन ऋतुओं के वर्णन में काव्य-सौन्दर्य और काव्य-चमत्कार की कमी नहीं है।

ऋतुओं का संबंध प्रकृति से है, अतः उनके कथन में प्राकृतिक छटा का वर्णन होना आवश्यक है। ब्रजभाषा कवियों की ऋतु संबंधी रचनाओं के विषय में कहा जा सकता है कि उनमे प्रकृति-चित्रण और नैसर्गिक वर्णन की अपेक्षा ऋतुओं के उत्तेजक प्रभाव का अधिक कथन किया गया है। ऋतुओं का प्रकृति-चित्रण दो प्रकार से हो सकता है—केवल प्राकृतिक दृश्यों का उल्लेख करने से अथवा प्राकृतिक दृश्यों का मानव-जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसका कथन करने से। प्रथम कार्य चित्रकार का है और द्वितीय कार्य कवि का। यदि काव्य मानव-जीवन का दर्पण है, तब उसमें इस प्रकार का वर्णन होना उचित ही है। ऐसी दशा में ब्रजभाषा कवियों के ऋतु-कथन को भी उचित कहा जा सकता है, किंतु इसके औचित्य का एक दूसरा प्रमुख कारण भी है। बात यह है कि रस-शास्त्रियों ने ऋतुओं को शृंगार रस के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत माना है, इसलिए शृंगार रस की रचनाओं में कवियों को उनके उद्दीपन प्रभाव का वर्णन करना आवश्यक हो गया है। ऋतुओं के उद्दीपन

प्रभाव की सांगोपांग योजना के लिए प्रत्येक ऋतु के अनुकूल विलास-सामग्री का भी विशद रूप से वर्णन किया गया है। इस प्रकार के कथन भक्त और श्रृंगारी दोनों प्रकार के कवियों की रचनाओं में मिलते है, यद्यपि उनके दृष्टि-कोण में मौलिक भेद है। इसे उस युग का प्रभाव भी कहा जा सकता है।

सुख के साथ दुःख और संयोग के साथ वियोग अनिवार्य रूप से लगे हुए हैं। संयोगावस्था में जो वस्तुएँ सुखदायक ज्ञात होती हैं, वे ही वियोगावस्था में दुःखजनक प्रतीत होती हैं। ब्रजभाषा कवियों ने जहाँ ऋतुओं के संयोग-सुख का कथन किया है, वहाँ उन्होंने वियोगावस्था की विरह-व्यथा का भी वर्णन किया है। सुख के दिन बात कहते ही बीत जाते हैं, किंतु दुःख की घड़ियाँ बडी कठिनता से कटती हैं। यही कारण है कि कवियों ने संयोग-सुख की अपेक्षा वियोग-व्यथा का बडा विशद और मार्मिक कथन किया है। यह आश्चर्य की बात है कि उन्होंने अधिकांश में नायिका की मनोव्यथा का कथन किया है किंतु उन्होंने नायक की विरह-वेदना का वर्णन प्रायः नहीं किया। नायिका की वियोग-व्यथा का वर्णन करने के लिए ब्रजभाषा काव्य में 'बारह-मासा' लिखने की भी परिपाटी प्रचलित है। प्रस्तुत पुस्तक में वियोग श्रृंगार की ऐसी मार्मिक रचनाओं का संकलन किया गया है, जिन्हें पढकर कलेजा मुँह को आने लगता है।

इस पुस्तक की रचना के समय अनेक मुद्रित एवं हस्तलिखित काव्य ग्रंथों से ऋतु संबंधी रचनाएँ प्रचुर परिमाण में संगृहीत की गयीं। उनके अतिरिक्त कंठस्थ करने वाले काव्य-रसिकों से भी मैंने बहुत सी कविताएँ लिखी थीं। इस प्रकार एकत्रित कई सहस्र कविताओं में से ६६१ चुनी हुई ऋतु संबंधी रचनाएँ इस पुस्तक में संकलित की गयी है। ऋतु विषयक ब्रजभाषा काव्य का ऐसा सर्वांगपूर्ण संकलन हिंदी साहित्य में कदाचित प्रथम बार प्रकाशित हो रहा है, जिसके लिए मैं उक्त ग्रंथ-कर्त्ताओं एवं काव्य-रसिकों का अनुगृहीत हूँ। भारत के प्रसिद्ध विद्वान महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी ने अपनी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना द्वारा इस पुस्तक का गौरव बढ़ाया है। इसके लिए मैं उनका विशेष रूप से आभारी हूँ।

अग्रवाल भवन, मथुरा
द्वि० आषाढ कृ० ५ सं० २००७

—प्रभुदयाल मीतल



प्रभुदयाल मीतल

जन्म स० १९५९, ज्येष्ठ कृ० १२, मंगलवार



प्रस्तावना



ब्रजभाषा का काव्य-साहित्य इतना विशाल है, कि इसका पूर्ण परिचय देना विशेषज्ञों के लिए भी दु:साध्य है। खड़ी बोली की कविता के विकास और प्रचार के साथ ब्रज-माधुरी के प्रेमियों की संख्या का कम होते जाना खेद की बात है। कारण कि हिंदी क्षेत्र के बाहर के हिंदी पाठकों के लिए ब्रजभाषा कठिन प्रतीत होने लगी है। वे तभी इसका परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकते हैं, जब उन्हें मालूम हो कि ब्रज-वाणी कितने अनमोल रत्नों की खान है। मीतल जी इस दिशा में कितना महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं, इसका एक प्रमाण उनकी यह नवीन रचना "ब्रजभाषा साहित्य का ऋतु-सौन्दर्य" है। छैऔं ऋतुओं के शोभा-वर्णन में हमारे महान् कवियों ने कितना कमाल किया है, इसे आप यहाँ देख सकते हैं।

ऋतु-वर्णन विश्व के दूसरे महान् कवियों की भाँति हमारे देश के कवियों का भी प्रिय विषय रहा है। कालिदास ने तो "ऋतुसंहार" की रचना षड्ऋतु-वर्णन के लिए ही की थी। संस्कृत महाकाव्यों की ऋतुवर्णन-परंपरा को प्राकृत महाकाव्यों में भी अक्षुण्ण रक्खा गया। अपभ्रंश साहित्य हमारे लिए बहुत महत्व रखता है, क्यों कि अपभ्रंश ही हमारी हिंदी भाषा का—ब्रज, मैथिली आदि जिसके ही अंग हैं—आदि स्रोत है। साहित्य में भी हमारे कवियों को अपभ्रंश काव्यों से प्रेरणा मिली है, यद्यपि आगे चलकर वह प्राकृत तथा अपभ्रंश की अपेक्षा संस्कृत से अधिक ली जाने लगी। हमारे छंदों का उद्गम भी यही अपभ्रंश है। इन सब कारणों से हम अपभ्रंश साहित्य की उसी तरह उपेक्षा नहीं कर सकते, जिस तरह भाषा की कुछ कठिनाइयों के कारण हिंदी काव्य-प्रेमी सूर और बिहारी के काव्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। ब्रजभाषा का विशाल साहित्य अब भी अधिकांश हस्त लेखों के रूप में है, यही अवस्था अपभ्रंश के ध्वंसावशिष्ट साहित्य की भी है। यहाँ यह अप्रासंगिक न होगा, यदि ब्रजभाषा की ऋतु संबंधी कविताओं से तुलना करने के लिए यहाँ पर कुछ अपभ्रंश के नमूने दे दिये जाँय। अपभ्रंश की ये कविताएँ हमने अपनी "हिंदी काव्य-धारा" में संकलित की हैं।

बसंत—इस ऋतु का वर्णन करते हुए प्रस्तुत पुस्तक पृष्ठ ७ पर दी हुई "रितु बसंत तरु लसंत कामिनी, भामिनी सब अंग-अंग, रमत फाग री। चर्चरी अति विकट ताल गावत गीतहिं रसाल" आदि विष्णुदास की इस कविता के साथ आठवीं सदी के महाकवि स्वयंभू की पंक्तियाँ देखिए—

पइठु बसंत-राउ आणंदें । कोइल-कलयलु मंगल-सद्दें ॥
अलि-मिहुणेहिं वंदिणेहि पढंतेहि । वरहिण वावणेहिं णच्चंतेहि ॥
कत्थइ चूअ-वणाइ पल्लवियइँ । णव किसलय-फल-फुल्लु ब्भवियइँ ॥
कत्थइ गिरि-सिहरहिं विच्छायइँ । खल-मुँह इव मसि-वण्णइँ जायइँ ॥
कत्थइ माहव-मासहो मेइणि । पिय-विरहेण व सूसइ कामिणि ॥
कत्थइ गिज्जइ-वज्जइ मंदलु । णर-मिहुणेहिं पणच्चिउ गोंदलु ॥
कत्थइ अंगारय-संकासउ । रेहइ तविरु फुल्लु पलासउ ॥
णं दावाणलु आउ गवेसउ । "को मइ दड्ढ ण दड्ढु पएसउ" ॥
ऊसरु ऊसरुतहु अपवित्तउ । अण्णए णव पुप्फवइएच्छित्तउ ॥
कत्थइ भूय-कुसुम-मंजरियउ । णाइ वसत्त वडायउ धरियउ ॥
कत्थइ पवण-हयइ पुण्णायइ । णं जगे उत्थल्लिया पुण्णायइ ॥
कत्थइ अहिणवाइ भमरउलइ । थियइ बसंत-सिरिह णं कुरुलइ ॥

उपर्युक्त पंक्तियों के साथ ही ग्यारहवीं सदी के मुलतानी कवि अब्दुर्रहमान की निम्न पक्तियाँ देखिऐ—

खणु मुणिउ दुसहु जम-कालपासु । वर-कुसुमिहि सोहिउ दस दिसासु ॥
गय णिवउ णिरंतर गयणि चूय । णव मंजरि तत्थ वसंत हूय ॥
जल-रहिय मेह संतविअ काइ । किम कोइल कलरउ सहण जाइ ॥
रमणी-यण रत्थिहि परिभमंति । तूरा-रवि तिहुयण वाहिरंति ॥
चच्चिरिहि गेउ झुणि करिवि तालु । नच्चीयइ अउव्व वसंत-कालु ॥
घण-निविड-हार परिखिल्लरीहिं । रुणझुण-रउ मेहल-किंकिणीहिं ॥

ग्रीष्म—इस ऋतु के वर्णन में केशवदास (पृ० २४) सेनापति (पृ० ६४) 'करन' और (पृ० ८०) के साथ ग्यारहवीं सदी के बब्बर की उक्तियाँ देखिऐ—

तरुण-तरणि तवइ धरणि, पवण वहइ खरा ।
लग्ग णाहि जल वड मरुथल, जण-जिअण-हरा
दिसइ चलइ हिअअ दुलइ, हम इकलि वहू ।
घर णाहि पिअ सुणहि पहिअ ! मण इच्छइ कहू ॥

बब्बर के अतिरिक्त उसके समकालीन अब्दुर्रहमान की पंक्तियाँ देखिऐ—

विसम झाल झलकंत जलंतिय तिव्वयर ।
महियलि वण-तिण-दहण तवंतिय तरणि-कर ॥
जम-जीहइ णं चंचलु णहयलु लहलहइ ।
तेडतडयड घर तिडइ ण तेयह भरु सहइ ॥
अइउन्हउ वोमयलि पहंजणु जं वहइ ।
तं झंखरु विरहिणिहि अंगु फरिसिउ दहइ ॥

वर्षा—इस ऋतु के वर्णन में भुवनेश (पृ० ११६) दिवाकर (पृ० १४०) बेनीप्रवीन तथा दूसरे कवियों की रचनाओं (पृ० १५१ २८१, ५३: २८८, १५१: २६५)के साथ आठवीं सदी के महाकवि स्वयंभू की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

अमर महद्धणु गहिय करे, मेह गइन्दे चडिवि जस-लुद्धउ ।
उप्परि गिंभ-णराहिवहो, पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ ॥
जे पाउस-णरिन्दु गलगज्जिउ, धूली रउ गिमेण विसज्जिउ ।
गपिणु मेह विंदि आलग्गउ, तडि करवालु पहारेहि भग्गउ ॥
ज वि वरम्मुहु चलिउ विसालउ, उट्ठिउ हणा-हणंतु उण्हालउ ।
धग-धग-धग-धगंतु उद्धाइउ, हस-हस-हस-हसंतु संधाइउ ॥
जल-जल-जल-जलंतु पयलंतउ, जालावलि फुलिंग मेल्लंतउ ।
मेह-मेहग्गय-घड विहडतउ, जं उण्हालउ दिट्ठ भिडतउ ॥

दसवीं सदी के फक्कड महाकवि पुष्पदत पावस पर कहते हैं—

मय-उलु तसइ रसइ वरिसइ घणु । पीयलु सामलु विरसइ सुरधणु ॥
महि-णीहरिउ हरिउ बड्ढइ तणु । पवसिय-पियहि पियहि तप्पइ मणु ॥
फुल्ल कलंब-तंबु दीसइ वणु । तिम्मइ तम्मइ मणि जूरइ जणु ॥
तडि तडयडइ पडइ रुंजइ हरि । तरु कडयडइ फुडइ विहडइ गिरि ॥
जलु परियलइ घुलइ घुम्मइ दरि । अइरय सरइ भरइ पूरं सरि ॥
जलु थलु सयलु जलुजि संजायउ । मग्गु अमग्गु ण किंपि वि णायउ ॥

बारहवीं सदी (१०८८—११७२ ई०) के आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने भी पावस पर कविताएँ उद्धृत की हैं—

रेहइ अरुण--कंति धरणी-अलि इंदगोवया ।
पाउस-सिरि नाइ पय जावय--विंदु लग्गया ॥
गहिरु गज्जइ धरइ मय-वारि, विहल-घुलु नहु कमइ ।
गज्जइ घणमाला घणघणाह, नं मयण—निवइणो कुंजरघड ॥

वज्जहि गज्जिर-घण-मद्दल, नच्चहिं नह-यल-अंगणि नव-चंचल विज्जुल ।
गायहिं सिहि इह संगीअउ, पाउस-लच्छिहि करइ जुआणह मण आउल ॥

शरद—सौन्दर्य का वर्णन केशवदास(पृ० १६६,२२६)सेनापति(पृ० १७१) सेवक (पृ० १७३) ने किया है । अब त्रिपुरी के कवि बब्बर का चमत्कार देखिए—

णेत्ताणंदा उग्गो चंदा, धवल-चमर-सम सिय अरविंदा ।
उग्गे तारा तेआ-सारा, विअसु कुसुअ-वण-परिमल-कंदा ॥
भासे कासा सब्बा आसा, महुर-पवण लह-लहिअ करता ।
हंसा सद्दे फुल्ला बंधू, सरअ-समअ सहि ! हिअ अहरंता ॥

अथवा अब्दुर्रहमान की रसवती वाणी में—

गय विहरवि बलाहय गयणिहि । मणहर रिक्ख पलोइय रयणिहि ॥

हुयउ वासु छम्मयलि फणिंदह । फुरिय जुन्ह निसि निम्मल चंदह ।।
सोहइ सलिलु सरिहि सयवत्तिहि । विविह तरंग तरंगिणि जंतिहि ।।
धवलिय धवल संख-संकासिहि । सोहइ सरह तीर संकासिहि ।।
णिम्मल णीर सरिहि पवहंतिहिं । तउ रेहंति विहगम-पंतिहिं ।।
पडिबिबउ दरसिज्जइ विमलहिं । कद्दम भारु पमुक्किकउ सलिलहिं ।।
दितिय णिसि दीवालिय दीवय । णव समिरेह-सरिस करि लीअय ।
मंडिय भुवण तरुण जोडक्खहि । महिलिय दिति सलाइय अक्खिहि ।।

हेमंत—चित्रण में केशवदास (पृ० २०२) के साथ अब्दुर्रहमान को देखिए—

तह कखिरि अणियत्ति, णियंती दिसि पसरु ।
लइ ढुक्कउ कोसिल्लि हिमंतु तुसार भरु ।।
हुइय अणायर सीयल, भुवणिहि पहिय ज़ल ।
ऊसारिय सत्थरहु सयल कंदुट्ट दल ।।
सेरंधिहिं घणसारु ण चंदणु पीसयइ ।
अहरक ओला लंकिहि मयणु समीसियइ ।।
सीहडिहि वज्जियउ घुसिणु तणि लेवियइ ।
चंपएलु मियणाहिण सरिसउ सवियइ ।।

शिशिर—सौन्दर्य के सुंदर वर्णन में केशव (पृ० २२६) सेनापति (पृ० २३२) की सूक्तियों के साथ बब्बर की रचना का चमत्कार देखिए—

जं फुल्लु कमल-वण बहइ लहु पवण, भमइ भमरकुल दिसि-विदिसं ।
झंकार पलइ वण खइ कुहिल गण, विरहिअ हिअ हुअ दर-विरसं ।।
आणदिय जुअजण उलसु उठिअ मण, सरस णलिणि-दल किअ सअणा ।
पलट सिसिररिउ, दिअस दिहर भउ, कुसुम समअ अवतरिअ वणा ।।

अपभ्रंश के इन उद्धरणों से प्रस्तुत पुस्तक के ऋतु-वर्णन की तुलना करने पर मालूम होगा कि स्वयंभू, पुष्पदत, अब्दुर्रहमान और बब्बर के उत्तराधिकारियों ने कविता के ध्वज को नीचे नहीं गिरने दिया ।

एक साधारण कविता–समुच्चय में ऋतु वर्णन पढ़ लेने से पाठकों की तृप्ति नहीं होती थी । मीतल जी ने ब्रजकाव्य–महोदधि से ऋतु वर्णन के इतने अधिक और सुंदर रत्नों को एकत्रित कर साहित्य प्रेमियों का बहुत उपकार किया है । उनके ब्रज साहित्य के गंभीर ज्ञान और उनकी न विश्राम लेने वाली लेखनी से ब्रजभाषा साहित्य के प्रचार और उसे प्रकाश में लाने के लिए अभी बहुत आशा की जा सकती है ।

नैनीताल
२६–६–५०

—राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची



१. बसंत

२. ग्रीष्म

३. वर्षा

४. शरद

५. हेमंत

६. शिशिर

अनुक्रमणिका

———

ऋतु अनुसार पद्य-संख्या



ऋतु	मास		पद्य संख्या
१. बसंत	[चैत्र-वैशाख]	..	१७८
२. ग्रीष्म	[ज्येष्ठ-आषाढ़]	...	४५
३ वर्षा ..	[श्रावण-भाद्रपद]	. .	३१५
४ शरद्	[आश्विन-कार्तिक]	.	१२१
५. हेमंत	[मार्गशीर्ष-पौष]	. ..	८२
६ शिशिर .	[माघ-फाल्गुन]	..	१७०
		कुल जोड़	९६१

बसंत



राशि—

मीन + मेष



मास—

चैत्र + वैशाख



बरनि बसंत सुपुष्प अति, बिरह-बिदारन बीर।
कोकिल कलरव, कलित बन, कोमल सुरभि समीर॥

बसंत-परिचय

बसंत समस्त ऋतुओं में सर्वश्रेष्ठ ऋतु मानी गयी है, इसीलिए इसे ऋतुराज कहा जाता है। शिशिर के घोर संताप से संत्रस्त प्रकृति बसंत ऋतु के आते ही अपना नूतन शृंगार करने लगती है। पल्लव हीन वृक्षों में नयी कोंपलें आने लगती है। शीघ्र ही समस्त बन-उपबन सुंदर नवोत्पन्न पत्र-पुष्पों से लहलहाने लगते हैं। आम के वृक्षों में नये बौर आने लगते हैं। शीतल, मंद, सुगंधित वायु चलने लगती है, जो पुष्प-मकरंद और आम्र-मंजरी से सुवासित होकर चतुर्दिशाओं को सुगंधित कर देती है।

पक्षियों के कलरव और भ्रमरों की गुंजार से समस्त बन-बाग मुखरित हो उठते है। आम्र वृक्षों की डालियों पर जब कोकिलाएँ मत्त होकर कूकने लगती है, तब एक अजीब समाँ बँध जाता है। सरसों के फूलने से खेतों पर पीली चादर सी बिछी हुई ज्ञात होती है। ऐसा मालूम होता है कि बसंत के स्वागत के लिए प्रकृति ने सर्वत्र बसंती वस्त्रों की बिछायत की है। इस आनंददायक ऋतु में प्रकृति आनंद विभोर होकर समस्त जल-थल, भूमि-आकाश और जड-जंगम पर परमानंद बिखेरती फिरती है। इस प्रकार सर्वत्र आनंद ही आनंद छा जाता है।

प्रकृति के प्रत्येक व्यापार का अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव प्राणी मात्र पर पड़ना स्वाभाविक है। सर्वाधिक चेतन एवं संवेदनशील प्राणी होने के कारण मानव-जीवन पर प्रकृति की गति-विधि का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। फलतः बसंत ऋतु के हर्षोल्लास में मानव-मन खिल उठता है। इस भू-मंडल का सभ्य-असभ्य अथवा उन्नत-अवनत प्रत्येक मानव इस ऋतु में स्वभावतः आनंद-मग्न होकर अपने हृदय की आनंद-राशि बिखेरने के लिए उतावला हो जाता है। तब वह नाना प्रकार के उत्सव मना कर अपने आनंदातिरेक को मूर्त रूप देने की चेष्टा करने लगता है।

हमारे देश में अत्यंत प्राचीन काल से इस ऋतु में अनेक उत्सव मनाने का वर्णन मिलता है। इस ऋतु के उत्सवों में मदनोत्सव, बसंतोत्सव, सुबसंतक, अशोकोत्तंसिका आदि विशेष प्रसिद्ध हैं, जिनके मनोरंजक विवरणों से प्राचीन ग्रंथ भरे पड़े हैं। मदनोत्सव फाल्गुन से चैत्र मास तक मनाया जाता था, किंतु चैत्र शुक्ला द्वादशी से पूर्णमासी पर्यंत इस उत्सव का हर्षोल्लास चरम सीमा पर पहुँच

जाता था। त्रयोदशी को सर्वत्र कामदेव की पूजा होती थी। अगणित युवक और युवतियाँ अपने-अपने नगर और ग्राम के उद्यानों में मदनोत्सव मनाते हुए नाना प्रकार की केलि-क्रीडाएँ किया करते थे।

जिस दिन बसंत इस भू-मंडल पर सर्व प्रथम अवतरित होता है, उस दिन 'सुवसंतक' उत्सव मनाया जाता था। इस प्रकार आजकल की बसंत पंचमी का उत्सव प्राचीन काल के 'सुवसंत' का प्रतिनिधि समझना चाहिए। बसंत पंचमी आजकल के हिसाब से शिशिर ऋतु में पड़ती है, किंतु बसंत की धूम-धाम तभी से आरंभ हो जाती है। यद्यपि होलिकोत्सव भी शिशिर ऋतु में होता है, तथापि शिशिर और बसंत के संक्रांति काल में होने के कारण वह भी बसंतोत्सव का ही एक अंग माना गया है। इन उत्सवों में राजा से लेकर रंक तक सभी वर्गों के स्त्री-पुरुष समान उत्साह और उमंग से भाग लेते थे।

इन उत्सवों में भाग लेने वाली स्त्रियाँ लाक्षा रस और कुंकुम के रंग में रँगी हुई हलके लाल रंग की साड़ियाँ पहनती थीं। वे अशोक के लाल फूल और नवोत्पन्न आम्र-मंजरी धारण कर मल्लिका की माला पहनती थीं। उन दिनों बसंत में लाल वस्त्र और लाल पुष्प धारण करने का आम रिवाज था। आजकल इस ऋतु के उत्सवों में लाल छींटे पड़े पीले वस्त्र और सरसों के पीले फूलों का उपयोग किया जाता है। नाना प्रकार के नवीन पुष्पों से मनोरंजन करने के लिए उन दिनों उद्यानों में फूल बीनने का भी बड़ा महत्व था। इसके लिए 'पुष्पावचायिका' के नाम से एक उत्सव ही मनाया जाता था। आजकल भी इस ऋतु में फूलडोल के पुष्पोत्सवों का अधिक महत्व है। प्राचीन काल की तरह वर्तमान काल में भी बसंत ऋतु के अनेक उत्सव मनाये जाते हैं, जो बसंत पंचमी और होलिका से लेकर समस्त चैत्र मास में होते रहते हैं।

बसंत ऋतु के उत्सवों की एक विशेषता यह है कि इनमें काव्य-संगीत और गायन-वादन का विशेष समारोह किया जाता है। इस ऋतु के आनंददायी प्रभाव का यह स्वाभाविक परिणाम है। अति प्राचीन काल से कवियों ने इस ऋतु के अगणित गीत गाये हैं। इसका वर्णन करने पर उनकी वाणी अपूर्व उत्साह और अपरमित उमंग से भर जाती है। ब्रजभाषा कवियों ने इसका और भी सरस वर्णन किया है।

चैत्र

फूली लतिका ललित, तरुन तन फूले तरुवर ।
फूली सरिता सुभग, सरस फूले सब सरवर ।।
फूली कामिनि कामरूप, करि कंतहि पूजहि ।
सुक-सारी कुल केलि, फूलि कोकिल कल कूजहि ।।
कहि 'केसव' ऐसे फूल महँ, सूल न हिए लगाइऐ ।
पिय आप चलन की को कहैं, चित्त न चैत चलाइऐ ।।१।।

**

चंपक चमेलिन के चमन चमतकार,
चमू चंचरीक की चितौत चोरैं चित है ।
चाँदी कौ चबूतरा चहूँघा चमचम करै,
चंदन सो 'गिरिधरदास' चरचित है ।।
चारु चाँद तारे कौ चंदोवा चाँद चाँदनी सो,
चामीकर चोपन पै चंचला चकित है ।
चूनिन की चौकी चढी चंदमुखी चूडामनि,
चाहन सो चैन करे चैत के चरित है ।।२।।

बैशाख

मैन मदमाते मजेदार मनहर महा,
मुनि मनि मंतन के मन के मथन है ।
मनिन कौ महल, महाल मनो मन्मथ कौ,
'गिरिधरदास' तामे मोदमई मन है ।।
मंजु मल्लिकान की महँक मंजरीन की,
मधुप फिरे मत्त मधुमादक मगन है ।
माधव के मास मध्य माधव मयंकमुखी,
मौज करे मिलै मनो मानिनी मदन है ।।३।।

**

'केसवदास' अकास-अवनि बासित सुवास करि ।
बहत पवन गति मंद गात मकरंद बिंद धरि ।।
दिसि-विदिसिन छवि लागि, भाग पूरित पराग वर ।
होत गंध ही अंध, बधिर बौरौ बिदेसि नर ।।
सुनि सुखद सुखद सिख सीख पति, रति सिखई सुख साख मे ।
वर बिरहिनि बधत विसेष करि, काम विसिख बैसाख मे ।।४।।

बसंत



बसंत की बहार

(राग बसंत)

आई बसंत रितु अनूप, सुनहु कंत ! मोरे।
बोलत बन कोकिला, मनो कुहू-कुहू रस ढोरे ॥
फूली बनराय-जाई, कुंद कुसुम धोरे।
मद रस के माते मधुप, फिरत द्वौरे-द्वारे ॥
हम तुम मिल खेलें लाल ! कुंज-भवन कौरे।
'गोविंद' प्रभु नंद-सुवन, खेलें इक ठौरे ॥५॥



(राग मालकोश)

चल बन देख सयानी ! यमुन-तट ठाडौ छैल गुमानी।
फूले कदंब, नाहर पलास द्रुम, त्रिविध पवन सुख-सानी ॥
बहु रंग कुसुम-पराग महक रह्यौ, अलि लपटे गुंजत मृदु बानी।
कीर, कपोत, कोकिला धुनि सुन, रितु बसंत लहैकानी ॥
सुन सखि-वचन, मिल उठी पीय सों, नव निकुंज की रानी।
बीनन चले दोऊ कुसुम कलियन, ब्रज-कुंजन रितु मानी ॥६॥



(राग मालकोश)

फूल्यौ री सघन बन, तामैं कोकिला करत गान।
चलहु वेग वृषभान-नंदिनी ! छाँड़ि कठिन मद मान ॥
नव रितुराज आयौ री नेरे, मिल कीजै मधु-पान।
'सूरदास मदनमोहन' पिय को रिझाइऐ, सुनाइऐ मिल मधुरी तान ॥७॥



(राग सारंग)

देखो लालन ! कुंज-भवन छवि।
लता, कुसुम पल्लव, फल छाए, अति ही निविड, पैठत नाहिन रवि ॥
आसन, बसन, साज फूलन के, फूलन की तहाँ डोरि रही छवि।
'रसिक' प्रीतम सुख बिलसैं निसि-दिन, सो सुख कहा कहै कोऊ कवि ॥८॥

बसंत का राग-रंग

(राग बसंत)

नवल बसंत, नवल वृंदाबन, खेलत नवल गोवरधन-धारी ।
हलधर नवल, नवल ब्रज-बालक, नवल बनी गोकुल की नारी ॥
नवल जमुन-तट, नवल बिमल जल, नौतन मंद सुगंध समीर ।
नवल कुसुम, नव पल्लव-साखा, कूजत नवल मधुर पिक-कीर ॥
नव मृग-मद, नव अरगजा बंदन, नौतन अगर, सु नवल अबीर ।
नव बंदन, नव हरद-कुमकुमा, छिरकत नवल परस्पर नीर ॥
नवल महुवरी बाजै अनुपम, भूपन नौतन चीर ।
नवल रूप 'कृष्णदास' प्रभू के, जस गावत मुनि धीर ॥९॥

★

खेलत बन सरस बसंत लाल । कोकिल कल कूजित रसाल ॥
जमुना के तट फूले तमाल । केतकी-कुंद नौतन प्रबाल ॥
तहाँ बाजत बीन,मृदंग ताल । बिच-बिच मुरली अति ही रसाल ॥
नव सत सजि आईं ब्रज की बाल। सजि भूषन-बसन अँग, तिलक भाल॥
चोबा, चंदन, अबीर हु गुलाल । छिरकत पीय मदन गुपाल ॥
आलिंगन, चुंबन देत गाल । पहरावत उर फूल की माल ॥
इहि बिधि क्रीड़त नृप-कुमार । 'कुंभनदास' बलि-बलि बिहार ॥१०॥

★

रितु बसंत वृंदाबन फूले द्रुम भाँति-भाँति,
सोभा कछु कहि न जात, बोलत पिक-मोर-कीर ।
खेलत गिरिधरन धीर, संग ग्वाल बृंद भीर,
बिहरत मिल जमुना-तीर, बाढी तन मदन-पीर ॥
आईं ब्रज नवल नारि, संग राधिका कुमारि,
नव सत साजे सिंगार, नवल बसन चीर ।
बदन कमल नैन-भाल, छिरकत केसर-गुलाल,
बूका-चोबा रसाल, सोधौ-मृगमद-अबीर ॥
बाजत बीना-उपंग, बाँसुरी-मृदंग-चंग,
मदनभेरि, महुवर, ढप, झाँझ, झालरी, मँजीर ।
निरखत लीला अपार, भूली सुधि-बुधि सँभार,
बलिहारी 'विष्णुदास' देखत ब्रजचंद धीर ॥११॥

(राग बसन)

नव कुंज-कुज कूजित बिहग। मानो बाजत बाजे नृप अनंग ॥
द्रुम फूल रहे मत्र फलन सग। तहँ अति सुबास अरु विविध रंग ॥
तहाँ बाजत झाँझ अरु ताल, चंग। अपवट, आवज, बीना, उपंग ॥
अरु श्री मडल, महुवर, मृदग। बाजहि, गावहि लय मोरि अंग ॥
धीमध धीकट धग ताधिलाग। दोउ माल लेत नृत्यत सुधाग ॥
बूका गुलाल डारन उतग। बलि 'द्वारकेस' छबि जुग त्रिभंग ॥१२॥

★

तेरी नवल तरुनता नव बसंत। नव-नव विलास उपजत अनंत ॥
नव अधर अरुन पल्लव रसाल। फूले बिमल कमल लोचन बिलास ॥
चलि भ्रकुटि भग भृ गन की पाँति। मानो हँसनि-लसन कुसुमनि सु भाँति॥
भई प्रगट अलप रोमावली मोर। स्वाँस सौरभ मलय पवन झकोर ॥
चल फल उरोज सुंदर सु ठान। मृदु मधुर बोल लिऐ कोकिल गान ॥
देखत मोहे ब्रज-कुँवर राय। बाढ्यौ मन मन्मथ चौगुनौ चाय ॥
तोहि मिलि बिलस्यौ चाहत है स्याम। जाहि देखत लज्जित कोटि काम॥
तब चली चरन मथर बिहार। रुन झनन-झनन नूपुर झंकार ॥
सु पुलकित गोकुलपति-कुमार। मिलि भयौ 'गदाधर' सुख अपार ॥१३॥

★

रितु बसंत, तरु लसत कामिनी-
भामिनी सब अग-अंग, रमत फाग री।
चर्चरी अति विकट ताल, गावत गीतहि रसाल,
उरप, तिरप, लास्य, तांडव, लेत लाग री ॥
बदन बूका गुलाल, छिरकत तकि नैन-भाल,
लाल गाल मृगज लेप, अधर दाग री।
गिरिवरधर रसिकराय, मेचक मुदरी लगाय,
कचुकी पर छाप दीनी, चकित नागरी ॥
बाजत रसना मंजीर, कूजत पिक-मोर-कीर,
पवन भीर जमुना तीर, महल-बाग री।
'विष्णुदास' प्रभु प्यारी, मेटत हँसि देत तारी,
काम-कला निपट निपुन प्रेम-आगरी ॥१४॥

बसंतोत्सव

(राग बसंत)

श्री पंचमी परम सुमंगल मदन महोच्छव आज।
बसंत बनाय, चली ब्रज-सुंदरि, लै पूजा कौ साज॥
कनक कलस जलपूर, पढत रति-काम मंत्र रसमूल।
ता पर धरी रसाल मंजरी, आवृत पीन दुकूल॥
चोवा, चंदन, अगर, कुमकुमा, नव केसर, घनसार।
धूप, दीप नाना नीराजन, बिविध भाँति उपहार॥
बाजत ताल, मृदंग, मुरलिका, बीना, पटह, उपंग।
गावत राग बसंत मधुर सुर, उपजत तान-तरंग॥
छिरकत अति अनुराग मुदित गोपीजन मदन गोपाल।
मानो सुभग कनक कदली मध, सोभित तरुन तमाल॥
यह बिधि चली रितुराज बधावन, सकल घोष आनद।
'हरिजीवन' प्रभु गोवरधन-धर, जय-जय गोकुलचंद॥१५॥

★

ये देखो पंचमी रितु बसंत। तहाँ द्रुम अरु बेली सब फलंत॥
तहाँ पठइ ललितादि करि बिचार। नव कुंजन में करिऐ बिहार॥
ले आईं सबै सिंगार साज। हरि दौरि मिले मनो मानराज॥
नव केसर, चोवा, अंगराग। खेलत गुपाल बाढ्यौ ऽनुराग॥
कल कोकिल कल रव सुक-समाज। अलि कूजत पुंज निकुंज गाज॥
रितु-कुंकम लै ठाड़ी निहार। मध्य राजत सरबस बेरि-वारि॥
सखी ताल-मृदंग बजाय-गाय। तहाँ 'द्वारकेस' बलिहारि जाय॥१६॥

★

आजु सुभग दिन बसंत पंचमी, जसुमति करत बधाए।
बिविध सुगंध उबटि के लाला, ताते नीर न्हवाए॥
घर तें निकसि-निकसि ब्रज-सुंदरि, नंद-द्वार पै आई।
अंब-मौर की पुष्प-मंजरी, कनक-कलस भरि लाई॥
चोवा, चंदन और अगरजा, केसरि सुरंग मिलाई।
प्रमुदित छिरकत प्रान पिया को अबीर-गुलाल उड़ाई॥
बाजत ताल, मृदंग, झाँझ, ढप, गावत गीत सुहाए।
तन, मन, धन, न्यौछावरि करिके, आनँद उर न समाए॥
श्री गिरिधरजू! तुम चिरजीवो, भक्तन के सुखदाई॥
श्री बल्लभ-पद-रज-प्रताप तें, 'रसिक' सदा बलि जाई॥१७॥

बसंत का आगमन

फूले गुलाब कियारिन-कोरन, लौनी लवंग-लता उरझाई।
बोले चकोर चहूँ दिसि, कोकिल-भौर-समूहन गुंज सुनाई॥
बंदनवार बँधे तरु-पुंजन, कुंजन फूलन-सेज सोहाई।
आनँद आन भई सब के, सुनि कै रितुराज की आज अवाई॥१८॥

★

चँहकि चकोर उठे, सोर करि भौंर उठे,
बोलि ठौर-ठौर उठे कोकिल सुहावने।
खिलि उठी एकै बार कलिका अपार,
हलि-हलि उठे मारुत सुगंध सरसावने॥
पलक न लागी अनुरागी इन नैननि पै,
पलटि गए धौं कबै तरु मनभावने।
उमगि अनंद अँसुवान लों चहूँघा लाग,
फूलि-फूलि सुमन मरंद बरसावने॥१९॥

★

कूकि उठीं कोकिलान, गूँजि उठी भौंर-भीर,
डोलि उठे सौरभ समीर सरसावने।
फूलि उठीं लतिका लबंगन की लौनी-लौनी,
झूलि उठीं डालियाँ कदंब सुख पावने॥
चँहकि चकोर उठे, कीर कर सोर उठे,
टेर उठीं सारिका बिनोद उपजावने।
चटकि गुलाब उठे, लटकि सरोज-पुंज,
खटकि मराल रितुराज सुनि आवने॥२०॥

★

आयौ रितुराज, फूल्यौ सुमन-समाज,
भयौ अमल अकास, बहै पवन हरै-हरै।
लपटे लतान सों तमालन के जाल, बौरे-
अमित रसाल सो बिसाल मन को हरै॥
कहत 'किसोर' कीर-कोकिला-चकोर, नहीं-
गनैं साँझ-भोर, चारो ओर सोर को करै।
आनँद मगन कैसी लगन लगाई देव,
मंदिरन कुंज-कुंज अलि-पुंज गुंजरै॥२१॥

पाँखुरी लै साजी सेज सेवती की, बेलिन-
चमेलिन हू सरस बितान छवि छाई है।
फैल्यौ चहुँ गहब गुलाबन कौ गंध, धूरि-
धूँधरित सुरभि समीर सुखदाई है॥
चार्यौ ओर कोकिल-चकोर-मोर-सोरन सों,
और छिति-छोरन अनंद अधिकाई है।
आज रितुराज के समागम के काज होत,
धाम-धाम बेलिन के आनँद बधाई है॥२२॥

*

आयौ रितुराज आज देखत बनै री आली!
छायौ महा मोद सो प्रमोद बन भूमि-भूमि।
नाँचत मयूर, मद उमँद मयूरिनि को,
मधुर-मनोज, सुख चाखै मुख चूमि-चूमि॥
'पंडित प्रवीन' मधु लंपट मधुप पुंज,
कुंजन मे मंजरी कौ लेत रस घूमि-घूमि।
हेली! पौन प्रेरित नबेली सी द्रुमन-बेलि,
फैलीं फूल-बेलिन में झूल रही भूमि-भूमि॥२३॥

*

मलय-गिरि-मारुत के मिस विरहाकुलनि,
दिसि-दिसि व्यालन कौ विष बगरायौ री।
ता पर 'किसोर' तैसौ पंचम नवल राग,
कोक की कलान भीनौ कोकिलान गायौ री॥
को न सुनि मोचै मान, लोचै को न मिलन को,
सोचै को न स्याम देखि, नेह सरसायौ री।
आमन के भौर लागे, अंकुरन मौर लागे,
भौर लागे भ्रमन, बसंत अब आयौ री॥२४॥

*

मृदु मंजु रसाल मनोहर मंजरी, मोर-पखा सिर पै लहरैं।
अलबेलि नबेलिन बेलिन मे, नवजीवन जोति छटा छहरैं॥
पिक-भृंग सु गुंज सोई मुरली, सरसो-सुम पीत पटा फहरैं।
रसवंत विनोद अनत भरे, ब्रजराज बसंत हिए विहरैं॥२५॥

बाटिका बिपिन लग्यौ छावन रँगीली छटा,
छिति तें मिसिर कौ कसाला भयौ न्यारौ है ।
कुंजन किलोल सो लगे है कुल पछिन के,
'पूरन' समीरन सुगंध कौ पसारौ है ॥
लागत बसंत नव, संत मन जागौ मैन,
दैन दुख लागौ बिरहीन बरियारौ है ।
सुमन-निकुंजन मे, कुंजन के पुंजन मे,
गुंजत मलिंदन कौ बृंद मतवारौ है ॥२६॥

★

मंजु मलयाचल के पौन के प्रसंगन तें,
लाल-जाल पल्लव लतान लहकै लगे ।
फूलें लगे कमल, गुलाब आबवारे घने,
'शंकर' पराग मे अकास अहकै लगे ॥
बोले लगी कोकिल, अनंत भौंर डोलै लगे,
चोप सो अमोलै मकरंद चहकै लगे ।
नीकौ न अटक, चढ्यौ काम कटक चारो ओर,
चारो ओर चटक सुगंध महकै लगे ॥२७॥

★

हूजै लाज आज गाज काज है कहाँ कौ साज,
आज रितुराज लै समाज ताज धरै चेत ।
'द्विज बलदेव' बन-बाग तौ निहारौ नैक,
बौरे करि डारै, डारै डाक सी अधीर हेत ॥
ह्वै कै काह फेरि वैसे फरस फबे है फेर,
फहरें पताकै फौज फेरौ भख होत खेत ।
चौगुनौ चढ़ाव चाव चहँकि चकोर उठे,
ठौर-ठौर कैलिया कुहूकै करि हूकै देत ॥२८॥

टहडही भोरी मंजु डार मँहकार की पै,
चहचही चुहिल चहूँकित अलीन की।
लहलही लौनो लता लपटी तमालन पै,
कहकही तापै कोकिला की, काकलीन की॥
तहतही कवि 'रसखान' के मिलन हेतु,
बहवही बनिता जे मानस मलीन की।
महमही मंद-मंद मारुत मिलन तैसी,
गहगही खिलनि गुलाब की कलीन की॥२६॥

गौन हद हौन लागे, सुखद सुभौन लागे,
पौन लागे विषद, वियोगनि के हियरान।
सुभग सवाद लै] सु भोजन लगन लागे,
जगन मनोज लागे जोगिन के जियरान॥
कहत 'गुलाल' वन फूलन पलास लागे,
सकल बिलासिन के हिये सुनि हियरान।
दिन अधिकान लागे, रितुपति आन लागे,
भान लागे तपन, सु पात लागे पियरान॥३०॥

छलकत छवि फूलन में गलक। मकरंद आली!
ललकत ललामी रवि, भौर सो लजायौ है।
लहकत समीर त्रिविध, बहकत कोकिला बैन,
चहकत चिरैयाँ, सब आनँद बढ़ायौ है॥
ठनकत किंकिनि-रव, झनकत नूपुर-धुनि,
धधकत मृदंग ताल-रंग सो बजायौ है।
हरषत 'सुरेश' मन झझकत महेस जू कौ,
गमकत नगारे सो बसंत रितु आयौ है॥३१॥

बसंत-स्वागत

जय बसंत रसवंत सकल सुख-सदन सुहावन ।
मुनि-मन-मोहन भुवन तीन जिय-प्रेम गुहावन ॥
जय सुंदर-स्वच्छंद-भाव-मय हिय प्रति परसन ।
जय नंदन-बन-सुरभित-सुखद-समीरन सरसन ॥
जय मधुमाते मधुप भीर को चहुँ दिसि छोरन ।
ललित लतान बितानन में दुति दलहिं बिथोरन ॥
जय अनूप आनंद अमित अति अटल प्रदरसन ।
जय रस-रंग-तरंग बेलि अलबेलिन बरसन ॥
करिवे स्वागत आप हरन-त्रयताप सकल थल ।
जड-जंगम जग-जीव जनौ जाग्यौ जोबन-जल ॥
जो तरु बिथित-वियोग सदाँ दरसन तव चाहत ।
नौचि नौचि कच-पातन अश्रु प्रवाह प्रवाहत ॥
देखहु किमलय नहीं, आँखि अति अरुन भई-तिन ।
रोवत रोवत हाय ! थके, अब टेर सुनो किन ॥
तुम्हरी दिस्सिहि निहारि पुलिक तन, पात हिलावत ।
करसो मानहुँ मिलन तुमहिं निज ओर बुलावत ॥
बौरे नहीं रसाल, बने बौरे तव कारन ।
बलिहारी तव नेह-नियम निठुराई धारन ॥
तुम सौ कठिन कठोर और, जग दूसर दीख न ।
साँचौ किय निज नाम 'पंचसर कौ सर तीखन' ॥
तौ हू मृदुल स्वभाव धारि जो प्रेमिन भावत ।
करनौ वाकी ओर जाहि सो प्रेम लगावत ॥
लखि तुम्हरे पद-कंज रंज सब भूलि-भूलि तन ।
साजि-साजि सँग ललित लहलही लौनी लतिकन ॥
भाँति-भाँति के विटप-पटनि सजि वे ही आवत ।
कोउ फल, कोऊ फूल मुदित मन भेटहि लावत ॥
'जयति' परसपर कहत पसारत आपनि डारन ।
मनहु मत्त मन मिलन मित्र कर कर गर डारन ॥
आवहु आवहु वेगि अहो ! रितुगन के नरपति ।
तरु वृंदनि कौं लखहु आप सोभा की संपति ॥
वह देखो नव कली भली निज मुखहिं निकारति ।
लगि-लगि बात-प्रभात गात अलसात सँभारति ॥

प्रथम समागम-समर जीति मुख मुदित दिखावति ।
लहकि-लहकि जनु स्वाद लैन कौ भाव बतावति ।।
मुखहिं मोरि जमुहाति भरी तन अतन-उमंगन ।
जोम-जुवानी जगे चहत रस-रग-तरंगन ।।
वह देखो अलि पुंज कली-कल-कुंज गुँजारत ।
मानहु मोहन मनहिं मदन कौ मंत्र उचारत ।।
ठौर-ठौर मधु अंध भयौ वह देखो भूमत ।
कबहूँ जा पर वा पर यो सब हीं पर घूमत ।।
मुकलित अंब कदंब-कदंबनि पै कल कूजत ।
'केहू केहू' मोर अलापत आसा पूजत ।।
अवरेखहु निज स्वच्छ छटा जमुना जल कूलन ।
सटकि कज बन सघन घटा नव फूले फूलन ।।
द्रुम-डारिन के बीच चपल-चहचही चुहूकनि ।
कोयल-कीर-कपोत कलित कल कंठ कुहूकनि ।।
देखहु यमुना पुलिन सुभग सोभित रेती-छवि ।
चिलकति झलकति मनहुँ कांति प्रगटी खेती फवि ।।
ललकि हिलोरे खात कलिंदी रस सरसावति ।
नीलांबर तनु धारि कृष्ण मिलिवे जनु धावति ।।
भरे सरोवर स्वच्छ नील जल नलिन रहे खिलि ।
सारस हंस चकोर घोर सब सोर करै मिलि ।।
जुही गंधि सो पुही चुही परिमल सुचि धावति ।
पुहुप धूल धूसरित हीय सब सूल नसावति ।।
हरी घास सों घिरे तुंग टीले नभ चंवत ।
तिन मे मीधी सरल सरग दिसि डगर उलंवत ।।
जब सो बहरै लहरै छहरै तेरी समुदित ।
बिन कारन नहि ज्ञात आप आपहिं सो प्रमुदित ।।
कोऊ सरसो सुमन फूल, जौ सिर सो बाँधत ।
गरियारन-गोरिन के सँग कोउ चुलह मचावत ।।
कहु गँवार गंभीर बसंती बसन रँगावत ।
जो तव स्वच्छ स्वरूप सदा सबके मन भावत ।।
ऊधम उमड्यौ परत रँग्यौ जग तव रस रागत ।
गारी-पिचकारी-तारिन सों तेरौ स्वागत ।।३२।।

बसंत का प्रभाव

औरें भाँति कोकिल-चकोर ठौर-ठौर बोले,
औरें भाँति सबद पपीहन के बै गए।
औरें भाँति पल्लव लिए है वृंद-वृंद तरु,
औरे छबि-पुंज कुंज-कुंजन उनै गए॥
औरे भाँति सीतल-सुगंध-मंद डोलै पौन,
'द्विजदेव' देखत न ऐसे पल द्वै गए।
औरे रति, औरें रंग, औरे साज, औरें संग,
औरें बन, औरें छन, औरें मन ह्वै गए॥३३॥

★

औरे भाँति कुंजन मे गुंजरत भौरें-भीर,
औरें ठौर भौरन के बौरन के ह्वै गए।
कहै 'पद्माकर' सु औरें भाँति गलियान,
छलिया छबीले छैल औरें छबि छ्वै गए॥
औरें भाँति बिहँग-समाज मे अवाज होति,
ऐसे रितुराज के न आवत दिन द्वै गए।
औरें रस, औरें रीति, औरें राग, औरें रंग,
औरें तन, औरें मन, औरें बन ह्वै गए॥३४॥

★

सरसो के खेत की बिछायत बसंत बनी,
तामें खडी चाँदनी बसंती रतिकंत की।
सौने के पलंग पर बसन बसंत साज,
सौनजुही मालें हालें हिय हुलसंत की॥
'ग्वालकवि' प्यारौ पुखराजन कौ प्यालौ पूर,
प्यावत प्रिया को, करै बात बिलसंत की।
राग मे बसंत, बाग-बाग बसंत फूल्यौ,
लाग मे बसंत, क्या बहार है बसंत की॥३५॥

बसंत की व्यापकता

कूलन मे, केलिन मे, कछारन मे, कुंजन मे,
क्यारिन मे कलिन-कलीन किलकंत है।
कहै 'पद्माकर' पराग हू मे, पौन हू मे,
पानन मे, पिकन पलासन पगंत है॥
द्वार मे, दिसान मे, दुनी मे, देस-देसन मे,
देखो द्वीप-द्वीपन मे दीपत दिगंत है।
बीथिन मे ब्रज मे, नबेलिन मे, बेलिन मे,
बनन मे, बागन मे, बगरयौ बसंत है॥३६॥

★

तरु पतझारन मे, किसलय डारन मे,
रमित पहारन मे दुनी मे दिगंत है।
त्रिविध समीरन मे, यमुना के तीरन मे,
उडत अबीरन मे झला झलकत है॥
छाय रह्यौ गुंजन मे, अलि पुंज कुंजन मे,
गान मे 'गोपाल' ऐसौ रूप दरसत है।
फूल मे, दुकूल मे, तड़ागन मे, बागन मे,
डगर मे, बगर मे, बगरयौ बसंत है॥३७॥

★

फेरि बन बौरे, मन बौरे से करन लागे,
फेरि मंद सुरभि समीर ह्वै कितंत गौ।
फेरि धीर-नासन पलासन मे लागी आगि,
बहुरि बिरहीन-जूह डरपि इकंत गौ॥
'द्विजदेव' देखि इन भायन धरा तें फेरि,
जानिए कहाँ धौं भाजि, हमंत अंत गौ।
फेरि उर अंतर तें उगरि गयौई ग्यान,
फेरि बन-बागन मे बगरि बसंत गौ॥३८॥

अवनि तें, अंबर ते, द्रुगम दिगंबर तें,
अपर अडंबर तें सखि ! सरसौ पर ।
कोकिला की कूकन तें, हियन की हूकन तें,
अतन भभूकन तें तन तरसौ परै ॥
कहत 'किसोर' कंज-पुंजन तें, कुंजन तें,
मंजु अलि-गुंजन तें, देख दरसौ परै ।
बसन तें, बासन तें, सुमन-सुवासन तें,
बैहर तें, बन तें, बसंत बरसौ परै ॥३६॥

★

तालन पै, ताल पै, तमालन पै, आलन पै,
लाल-माल-बाल पै, रसाल सरसौ परै ।
कहै कवि रामचद' कुंद-कंद-बंदन पै,
चद पै मलिद मतिमंद दरसौ प ॥
केकी केलि केसरि कुरंग केतकी पै कंज,
कारकूत कोकिल कदंब परसौ परै ।
रंग-रंग रागन पै, संग ही परागन पै,
वृंदाबन-बागन बसंत बरसौ परै ॥४०॥

★

कोकिला कलापी कूंजे यमुना के नीर तीर,
बीर रितुराज कौ समाज दरसौ परै ।
भनत 'किसोर' जोर अवनि कदंबन तें,
मजु मंजरीन तें सुगध सरसौ परै ॥
काम व्यथा मेटन को, सुखद समेटन को,
भेंटन को प्रीतम कौ प्रान तरसौ परै ।
अवनि तें, अंबर तें, द्रुगम दिगंबर तें,
बैहर तें, बन तें, बसंत बरसौ परै ॥४१॥

सुमन समुद्र हू ते, सोसमौर फद हू तें,
चारु मुख चंद ते, अनद दरसौ परै ।
पीत पट बसन हू ते, कुद से दसन हू ते,
मद बिहँसन हू ते, रस सरसौ परै ॥
मद रव-तान हू ते, बंसी सुर गान हू तें,
मैन पैन बान ते, पराग परसौ परै ।
भूषन बिसाल हू तें, लाल गुंज माल हू तें,
मौर बनमाल तें बसत बरसौ परै ॥४२॥

★

देस मे, दिसान मे, लतान-द्रुम-बेलिन मे,
कुंजन मे, गुंजन मे रंग दरसानौ है ।
पल्लव मे, पौन मे, पराग हू मे, किसलय मे,
कुसुम-कलीन अलि-गुज हरसानौ है ॥
खेतन मे, क्यारन मे, फूल कचनारन मे,
झारन-पहारन मे मोद सरसानौ है ।
बाग मे, बगर मे, बनाव बन-बीथिन मे,
बेहर मे, बन मे बसंत बरसानौ है ॥४३॥

★

सुर ही के भार मूधे सबद सु कीरन के,
मदिरन त्यागि करैं, अनत कहूँ न गौन ।
'द्विजदेव' त्यों ही मधु-भारन अपारन सों,
नैक झुकि झूमि रहे मौगरे-मरुअदौन ॥
खोलि इन नैननि निहारौ तौ निहारौ कहा,
सुखमा अभूत छाइ रही प्रति भौन-भौन ।
चाँदनी के भारन दिखात उनयौ सौ चंद,
गंध ही के भारन बहत मद-मद पौन ॥४४॥

एकाएक आई कहूँ बैहर बसंत वारी,
संतवारी मंडली मसूसि त्रसिवै लगी ।
कहै 'रतनाकर' दृगनि ब्रज-वासिन कै,
रंगनि की विसद बहार बसिवै लगी ॥
मसकन लागे वर बागे अंग-अगनि पै,
उरज उतंगनि पै चोली चसिवै लगी ।
पुनि ढप-तालनि की आनि बसी प्राननि मे,
ध्याननि मे धमकि धमार धसिवै लगी ॥४५॥

*

वसुधाधर मे, वसुधा धर मे, औ सुधाधर मेल्यौ सुधा मे लसै ।
अलि-वृंदन मे, अलि-वृंदन मे, अलि-वृंदन मे अतिसै सरसै ॥
हिए-हारन मे, हर-हारन मे, हिमि-हारन मे 'रघुराज' लसै ।
व्रजबारन, बारन, बारन, बारन, बारंबार बसंत बसै ॥४६॥

*

फूल रहे बन-बाग दसौ दिसि,
कोकिल-गुंज सो कुंज घनौ रहै ।
बोले मधुव्रत कुंजन मे, अरु-
डोलत पौन सुगंध सनौ रहै ॥
'कवि चंद जू' चैत की चाँदनी मे
चित दंपति कौ रति-रंग ठनौ रहै ।
राधाकृष्ण जू ! रावरे राज्य मे,
बार हू मास बसंत बनौ रहै ॥४७॥

*

गूँजेंगे भौंर पराग भरे बन,
बोलेंगे चातक औ पिक गाइ कै ।
फूलेंगे टेसू कुसुंभ जहाँ लगि,
दौरैगौ काम कमान चढ़ाइ कै ॥
पौन बहैगी सुगंध 'मुबारिक',
लागैगी ही मै सलाक-सी आइ कै ।
मेरो मनायौ न मानैगी भामती,
ए है बसंत, लै जैहै मनाइ कै ॥४८॥

बसंत-संयोग

आयौ बसंत, अनंदित बन, मकरंदित ह्वै के पसारा करै ।
अरु बौरी रसाल प कोयल बैठिकै, धरि धरै न, पुकारा करै ॥
पति-हीन तिया जे हती घर मे, तिनको विरहानल जारा करै ।
पिय प्यारे हमारे मिले सजनी ! वो पपीहा मरयौ झकमारा करै ॥४६॥

*

गावनौ धमार कौ सु लागत सुखद महा,
धावनौ सु मारुत कौ आनँद अनंत कौ ।
चावनौ बढावनौ भौ आलिन कौ गन गुनि,
हिय हुलसावनौ भौ कोकिल भनंत कौ ।
'मनिदेव' भनत कलेस कौ पयावनौ भौ,
अंग उमँगावनौ भौ, देखे पद कंत कौ ।
छावनौ गुलाल कौ सुहावनौ लगत आली !
भावनौ लगत मोहि आवनौ बसंत कौ ॥५०॥

*

लिऐ कर कंचन-थार सबै, सजे तिन मे नव मंगल साज ।
उड़ावहि बीर अबीर गुलाल, विसाल रहे बहु बाजत बाज ॥
जमाए 'किसोर' मनोहर राग, भरी अनुराग सँभार समाज ।
अली अलबेली नवेली चली, ब्रजराजै बसंत बँधावन काज ॥५१॥

*

थोरी सी वैस किसोरी सबै, भरि झोरी अबीर उड़ावती हैं ।
कर ताल दै ढोलक की धधकी, धुनि बाँध धमार बजावती हैं ॥
'सरदार' लिऐ मिथिलेस-कुमारि, उदार ह्वै भाग सरावती हैं ।
मुसिक्याय कै नैन नचाय सबै, रघुनाथै बसंत बँधावती हैं ॥५२॥

*

वृच्छन पै बल्ली चढ़ि चोप, अली-अलिनी मधु पी मुदकारी ।
कोकिल-सारिका-कीर-कपोत, करैं धुनि माधुरी कानन-चारी ॥
फूले सबै बन-बाग-तड़ाग, भरे अनुराग पिया अरु प्यारी ।
चैत मे चारु बिहार करें, दसरत्थ-कुमार बिदेह-कुमारी ॥५३॥

बसंत-वियोग

आयौ बसंत, तमालन तै नव पल्लव की इमि जोति जगी है ।
फूलि पलास रहे जित-ही-तित,पाटल रातेहि रंग रँगी है ।।
मौरि कै आमन सार भई,तिहि ऊपर कोकिल आनि खगी है ।
भागन–भाग बचो बिरही जन बागन–बागन आग लगी है ।।५४।।

★

फेरि वैसें कुंजन मे गुंजरन लागे भौर,
फेरि वैसे कैलिया कुबोलन ररै लगी ।
फेरि वैसे पातन मे पूरि गौ पराग पीत,
फेरि त्यों पलासन मे आगि सी बरै लगी ।।
फेरि वैसे पपिहा पुकारै लगै 'नंदराम',
फेरि वैसे धाम-धाम सौरभ भरै लगी ।
फेरि वैसे ऊधमी बसंत बिस्वासी आयौ,
फेरि वैसे डारन मे डाक-सी परै लगी ।।५५।।

★

आई है बहार बन बेलिन नबेलिन मे,
बहुधा चमेलिन में भौर भीर छाई है ।
छाई है छपाकर–मरीचिका दुरीचिन मे,
तिन हू लखत कै अतन ताप ताई है ।।
ताई है सकल सूझि–बूझि 'जसवंत' मेरी,
जब तें पियारे प्रानप्यारी बिसराई है ।
राई है न नैक कहूँ नव मे कलेरव मे,
कहियो हो कंत ! सो बसंत रितु आई है ।।५६।।

★

मदमाती रसाल की डारन पै,चढ़ी आनंद सो यो बिराजती है ।
कुल जानि की कानि करै न कछू,मन हाथ परायेहि पारती है ।।
कोऊ कैसी करै 'द्विज' तूही कहै,नहि नैकौ दया उर धारती है ।
अरी ! कैलिया कूकि करेजन की,किरचै-किरचै किएं डारती है ।।५७।।

★

जा दिन तें परदेस गए पिय, ता दिन ते तनु ताप सी दौरत ।
आवते बेगि इतै 'नंदरामजू', देखते बाग बसंत समौरत ।।
चंद उदोत न होत उतै, अरबिंद मलिंद के वृंद न भौरत ।
याही अंदेस महा मन मे सखि ! का वा देस नही बन बौरत ।।५८।।

फूलन दै अबै टेसू कदंबन, अंबन बौरन छावन दै री ।
री मधुमत्त मधुव्रत पुंजन, कुंजन सोर मचावन दै री ॥
क्यों सहि है सुकुमारि 'किसोर', अली कल कोकिल गावन दै री ।
आवत ही बनि है घर कंतहि, बीर बसंतहि आवन दै री ॥५९॥

*

संग सखी के गई अलबेली, महा सुख सो बन-बाग विहारन ।
बाढ्यौ वियोग, बिलास गयौ सब, देखत ही वे पलास की डारन ॥
जानि बसंत,औ कंत विदेस,सखी लगी बावरी सी ह्वै पुकारन ।
क्वै चलि है चुरियाँ चलि आउरी,आँगुरियाँ जन लाउ अँगारन ॥६०॥

*

बौरेंगे रसाल बन-बागन विसाल सुनि,
कोयल कुँहूकि दिन-रैनि क्यों अतीतै गौ ।
ह्वैहै जो प्रफुल्ल मल्ली मालती की बल्ली,
अवली अलीन काकलीन कल गीतै गौ ॥
'पंडित प्रवीन' बिन प्रीतम बहैगौ पौन,
कान रति-रंग मे अनंग जंग जीतै गौ ।
बीत गयौ कैसे हू सिसिर-हेमंत आली,
कंत बिन कैसे ये बसंत रितु बीतै गौ ॥६१॥

*

बीर अबीर अभीरन कौ दुख, भाखे बनै न बनै बिन भाखै ।
त्यो 'पद्माकर' मोहन मीत के, पाये सँदेस न आठयें पाखै ॥
आये न आप,न पाती लिखी,मन की मन हीमे रही अभिलाखै ।
मीत के अंत बसंत लग्यौ, अब कौन के आगे बसंत लै राखै ॥६२॥

*

मंद गति मारुत, मदंध भृंग, गुंजरत,
कलि कुसुमावलि,रही है खुलि खिलि कै ।
कहत 'किसोर' रितुराज जानि आगमन,
लागन की कोकिला रसालन पै किलकै ॥
ऐसे मे कहो जू कैसै आनंद न लेती मान,
मानत जमान यो पिया के हिऐ हिल कै ।
कंटकित भई बेलि बल्लभ कलिन मिस,
नव दल मालन तमालन सो मिलि कै ॥६३॥

खाती हरषाती, रम जाती मद् माती हिऐ,
काती सी लगाती टेर बिरही बिघाती की ।
जाती लै किराती, मति आती ना दयाती,
नाँच पाती, ताल गाती, ना पिराती उतपाती की ।।
पानी कैहूँ भाँनी तौ बिसाती जो पोसाती औ,
धराती सियराती जो व्यथाती ताती छाती की ।
न्हाती छन जाती मै नौचाती रोम-पाती,
काढि बानी लै जलाती जीभ कैलिया कुजाती की ।।६४।।

*

कैसी अलिरानै अलि-अवलि अवाजै आजु,
सुमन-समाजै रोज छिन-छिन कूकै ये ।
कहत 'गुलाल' और सालत ये सुख-जाल,
डोलन बिसाल तें न भोगत मरूकै ये ।।
धीर कौं धराती, छाती कौन अबला की,
अब कोक के कला की, कोकिला की सुनि कूकै ये ।
जल-थल-गंजन, सरस रस-भंजन, सु-
मान की प्रभजन, प्रभजन की फूकें ये ।।६५।।

*

फूलि पलास रहे झुकि भूमि कै, भूमि पै फूलन की छवि छाई ।
त्यों गुल्लाल गुलाब खिले, कचनार-अनार दुबार सी लाई ।।
डोलत पौन सो 'गंग' सुगंधित, धीर धरै न करै मन भाई ।
कंत बिना सखि आयौ बसंत, सो कीजै कहा कछु सोइ बताई ।।६६।।

*

धूँधर सी बन, धूमसी धामन, गावन तान लगे नर बोरी ।
बौरी लता, बनिता भई बौरी, सु औधि अध्याय रही अब थोरी ।।
'बेनी' बसंत के आवत ही, बिन कंत अनंत सहै दुख को री ।
ओ री घरै ! हरि आग न जो, पहिलै हौं जरौ, जरिहै फिर होरी।।६७।।

*

जब तें रितुराज-समाज रच्यौ, तब तें अवली अलि की चहकी ।
सरसाय कै सोर रसाल की डारिन, कोकिल कूकै फिरें बहकी ।।
रसिया बन फूले पलास-करील, गुलाब की बास महा महकी ।
बिरही जन के दिल दागवे को, यह आग दसो दिसि तें दहकी ।।६८।।

मधुकर-माल बन-बेलिन के जाल पर,
कोकिल रसाल पर कुहुक अमद की ।
मद पौन सीतल सुबास भई बागन,
बिलास मई 'कालिदास' रासि मकरद की ॥
देखिऐ सयान, बैसाख मे पयान करै,
कान्ह कों दया न होति गोपिन के वृंद की ।
कैसै गेखि जीहै चढि चाँदनी महल पर,
सुधा की चहल, बसुधा की, चारु चंद की ॥६९॥

*

गे जब ते उत नद-लला, तब ते निज हाल न पूछत कोई ।
तान-तरंग तजे तुरतै, 'बलदेव' मिले पर आनँद होई ॥
पाइ बसंत नसंत रहै, मन का बिधि से निज भाव बिगोई ।
माल बिसाल दई हित लाल, भई बिरहाल यही लै सोई ॥७०॥

*

भूरि से कौन लिए बन-बागन, कौने जु आमन की हरयाई ।
कोयल काहै कराहति है, बन कौने चहूँ दिसि धूरि उडाई ॥
कैसी 'नरेस' बयारि बहै यह, कौन धौ कौन सौ माहुर नाई ।
हाय ! कोऊ न तलास करै, ये पलासन कौने दवारि लगाई ॥७१॥

*

कोकिलन खोजिन कौ संग लै अनेक फिरै,
चारो ओर प्यारी, बिरही जन के खोज कौ ।
याते हौ कहति चलु प्यारे सुखदान पास,
तजि कै अयान दूर कै री मान सोज कौ ॥
'मनिदेव' भनत, रसालन के बौरन के भौरन-
ये सोहत धरे हैं महा ओज कौ ।
कयदा बिथा री, रितुनायक लिऐं है पर,
घायक परम दीखै सायक मनोज कौ ॥७२॥

*

छवि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गंध ।
ठौर-ठौर झूमत झपत, भौर-भौर मधु-अंध ॥७३॥

मलय-जगी री, तरु-कोष ते कढी है चढ़ी,
मंजु मकरंद-पुंज पानिप अपार सी।
अलि-विष-बूढी बलि करति कहा है, जापै,
सौरभ की लहरि धरी है खरी धार सी ॥
कहत 'किसोर' चारो ओरन बिषम वेष,
प्रबल प्रचंड पेखि झरमन झार सी।
रहति न रोकी, परै चाहति वियोगिन पै,
बेहर बसंत की तिरीछी तरवार सी ॥७४॥

★

चीर सुरंगी सजै तन मे, कर केसरि लै 'रघुबीर' पै मेलती।
कुल्लह चारु बनौ अति सुंदर, देखि कै सोभा नही पल फेरती ॥
घूँघट-ओट गुलाल की चोट, बचाय कै लालन पै रँग झेलती।
धनि वे बनिता, मनिता जग मे, सजि कंत के संग बसत जो खेलती॥७५॥

★

फूले अनारनि पौडर-डारनि, देखत 'देव' महाउर माँचै।
माधुरी झौरन, आम के बौरन, भौरन के गन मंत्र से बाँचै॥
लागि रही बिरही जन के, कचनारन बीच अचानक आँचै।
साँचै हुँकार पुकारि पिकी कहै, नाँचै बनैगी बसंत की पाँच ॥७६॥

★

फूले पलास भली विधि सो बहु, 'केसवदास' प्रकाशन थोरै।
सेष असेष मुखानल की, जनु ज्वाल विसाल चली दिसि ओरै॥
किसुक श्रीसुक तुंडन की रुचि, रासे रसातल मे चित चोरै॥
चंचुन चाप चहूँ दिसि डोलत, चारु चकोर अँगारन भोरै ॥७७॥

★

आयौ री! बसत कूकि कैलिया पुकारै लगीं,
हम सी गरीबनी कौ गात गारि डारेंगी।
मंद-मंद मारुत सुगंध सरसान लागी,
ज्वाल को जगाइकै जरूर जारि डारेंगी॥
'नंदराम' बागन मे फूलै लगी बेली बन,
करिकै अधीरिनी सुधीर टारि डारेंगी।
ए री! तसवीर तौ दिखाय मोहि मोहन की,
आखिर कदंबन की डारैं मारि डारेंगी ॥७८॥

लोकन सँवारौ, तौ सँवारौ ना बिगारौ कछु,
लोकन सँवारि नर-नारिन सँवारतौ ।
कीन्हौ नर-नारि, तौ न प्रेम कौ प्रचार देतौ,
प्रेम कौ प्रचारौ तौ न मैन कौ प्रचारतौ ॥
मैन कौ प्रचारौ, तौ प्रचारौ ना संयोग देतौ,
कीन्हौ जो संयोग, तौ बियोग ना बिचारतौ ।
'नंदराम' कीन्हौ जो बियोग बिधना तौ भूलि,
बौरे बन-बागन बसंत ना बगारतौ ॥७९॥

★

पीरी तन-मारी सीस पर तें उतारि डारी,
जब तें बसंत रितु आगम जनाई है ।
पीरे-पीरे भूषन करन लागे पीर तन
बिना प्रानप्यारे पियराई उर छाई है ॥
रितु पियराई, सब हू के मन भाई सखि !
हमै पियराई दुखदाई हौन आई है ।
जोई पियराई तन हूक होत मेरी आली !
सोई सौति मालिन ये पियरे फूल लाई है ॥८० ।

★

कोकिल के गन कूकै लगे, तिमि मालती की कलिका बिकसंती ।
फूलि उठी लतिका 'बलदेव जू', लोपै लगी चलि लाज लसंती ॥
कैसे रहैगौ सो धीरज कौ दल, मैन अली घनी घेरी गसंती ।
बेधैं लगे हिय तें बिरहीन के, बौरे बनै बन-बाग बसंती ॥८१॥

★

जालिम जुलुमदार, जाहिर जहान जौन,
डगर-डगर बिष बगरि बगरिगौ ।
कहै 'नंदराम' ब्रज-गाँव की गरीबनिन,
रावरे की चेरिन, पै बैरिन कौ मरिगौ ॥
ऊधौजी ! हवाल कहि दीजो नंदलाल जू सों,
गोकुल की गैल-गैल गजब गुजरिगौ ।
फूलै ना पलास, ये पलास के बसंत मिस,
काढ़ि कै करेजा डार-डारन पै धरिगौ ॥८२॥

भूले–भूले भौर-भौर भाँवरै भरेंगे चहूँ,
फूलि–फूलि किंसुक जके से रहि जाय है।
'द्विजदेव' की सौं वह कूजनि बिसारि, कूर–
कोकिल कलंकी ठौर–ठौर पछिताय है॥
आवत बसंत के, न ऐहै जो पै स्याम तौ पै,
बावरी बलाय सो, हमारे हू उपाय है।
पीहै पहिलै ही ते, हलाहल मँगाय, या–
कलानिधि का एकौ कला चलन न पाइ है॥८३॥

★

प्यारे के वियोग आली! उठी आग वृंदाबन,
जरती सदेह कुंजे, सुंदरी जहाँ–जहाँ।
बौरे कचनार, आँच उठति पलासन तें,
कुसुम करील डीठ, परति जहाँ–जहाँ।
'मसाराम' तिन्हैं भेटि आवत समीर बीर,
तपौ जात तन, ताती लागति तहाँ–तहाँ।
भृंग अंध मारे, बिललात है भँवर कारे,
कोयल हू कोइ लै पुकारती कहाँ–कहाँ॥८४॥

★

सखि! आयौ बसंत, रितून कौ कंत, चहूँ दिसि फूलि रही सरसो।
बर सीतल–मंद–सुगंध समीर, सतावनहार भयौ गर सो॥
अब सुंदर साँवरौ नंदकिसोर, कहै 'हरिचंद' गयौ घर सो।
परसो को बिताय दियौ बरसो, तरसो कब पाँय पिया परसो॥८५॥

★

चर्चित चाँदनी चखन चैन चुऔ परै,
चौधा सौ लग्यौ है चारो ओर चित्त चेत ना।
गुंजन मधुप–वृंद कुंजन मे ठौर–ठौर,
सोर सुनि–सुनि रह्यौ परत निकेत ना॥
'राम' सुनै कूकन करेजौ कसकत आली!
कोकिल को कोऊ मुख मूँदि अब लेत ना।
अंत करै डारत बसंतहि बनाय हाय!
कंतहि बिदेस तें बोलाय कोऊ देत ना॥८६।

आब छिरकाय है गुलाब-कुंद-केवडा कौ,
सेवती समीत बेला मालती पियारी मे ।
जूही-सोनजूही जाय च रक कदब अंब,
चंपा औ चमेली गुल चाँदनी नेवारी मे ॥
'शिवनाथ' बात को बिलोकिबौ न भावै मोहि,
पीव बिन आयौ है बसंत फुलवारी मे ।
भाग चल भीतर, अनार-कचनारो लग ,
आग उठी प्यारी गुल्लाला की कियारी मे ॥८७॥

*

मलयै-समीर-पीर कर लै अधीर मोहि,
नैसुक सुसीर नीर धीरज उधारि लै ।
कहै 'हरिकेस' चंद जारि लै घरीक तू हू,
साँचौ विष कंद चारु चाँदनी पसारि लै ॥
अब ही मिलत मोको नंद के दुलारे प्यारे,
तौलौ तू उतालकारी कोकिल कहारि लै ।
गारि लै गरब, गरबीले तू अनंग किन,
मेरे इन अंगन अनंग बान झारि लै ॥८८॥

*

काम कलाधर के मिस से ये, खास प्रकास बिगारि दियौ है ।
देखहु कै हित सो बल सो, 'बलदेव' हिए बिच बास लियौ है ॥
साजि सुगंध प्रफुल्लित भौ बन, भौरन-भीर अधीर कियौ है ।
नंदकुमार कहाँ मिलि है, कब ते अधरामृत नाहि पियौ है ॥८९॥

*

फूल लाई, फल लाई, नीके-नीके दल लाई,
बौरि लाई, बनि आई धनि, गुन गावै ना ।
'हरिलाल' दोऊ कर जोरि कहौ तोसो बीर,
पीर और हू की जान हियौ हरसावै ना ॥
नेह सरसावै, तू न रंग बरसावै,
मोसो पंचसर पावक की चाँचर मचावै ना ।
चोवा चारु चंदन, अतर दरसावै जनि,
कंत बिन मालिन ! बसंत मोहि भावै ना ॥९०॥

घन–बन–बीथिन ते घर–घर घेरि रहे,
लाल–पीरे लागत न जानि परे कारे से।
गावत समाज, करै आवत नवाज राज,
करी ये निलज्ज छाके छाक मतवारे से।।
'गोकुल' बसंत में वियोगिन के जारिवे को,
होरी सी हिए मे हरषित निरधारे से।
भीजे मकरंद सों पराग लपटाने देखो,
मधुकर डोलत फिरत फगुहारे से ।।६१।।

*

बोलै लगी सारिका, औ कोकिला कलोलै लगी,
डोलि-डोलि सुखद समीर लाग्यौ परसै।
फूले द्रुम पुंजन पै गुंजन मधुप लागे,
मंजु फूल वृंद लागे मकरंद बरसै।।
'सेखर' धमारन की धूम मी मचन लागी,
मैन लाग्यौ नचन, नवेलो नेह सरसै।
कंत बिन कैसे अत धीरज धरौगी आली!
मान–गढ अंतक बसंत लाग्यौ दरसै ।।६२।।

*

को बचि है यह बैरी बसंत ते, आवत यो बन आग लगावत।
बौरति ही करि डार है बौरी, भरे विष बैरी रसाल कहावत।।
ह्वैहै करेजन की किरचै 'कवि देव जू' कोकिल-कूक सुनावत।
बीर की सों बलवीर बिना, उडि जाँयगे प्रान अबीर उडावत ।।६३।।

*

वेई दल–फूल, जिन्है बाढत बिलोक फूल,
सूल से भए है समूल छबि–सारी सौ।
'सेवक' बखानै तेई ठौर–ठौर भौरत है,
भौरन के तौर और ह्वै गये महारी सौ।।
सीतल समीर सोई पीर को करत हाय!
धाय–धाय परत पराग राग धारी सौ।
जाय न कहंत कोई, कीजै कौन तंत राम,
कंत बिन ह्वै गयौ बसंत अंतकारी सौ ।।६४।।

पथिक तुरंत जाइ कतहि जताइ दीजो,
आइगौ बसत उर अमित उछाह लै ।
कहै 'रतनाकर' न चटक गुलाबन की,
कोप कै चढ़त तोप मैन बादसाह लै ॥
कोकिल के कूकनि की तुरही रही है बाजि,
बिरहिनि भाजि कहौ कौन की पनाह लै ।
सीतल समीर पै सवार सरदार गंध,
मद-मद आवत मलिंद की सिपाह लै ॥९५॥

*

कोकिल की कूक सुनि हूक हिय माहि उठै,
लूक से पलास लखि अंग झरसान्यौ है ।
करिहौ कहा धौ धीर धरिहौ कहाँ लौ बीर,
पीरद समीर त्यौ सरीर सरसान्यौ है ॥
पल-पल दूजे पल आवन की आस जियौ,
ताहू पर पत्र आइ बिस बरसान्यौ है ।
अवधि बदी है कल आवन की कंत अरु,
आज आइ ब्रज मे बसंत दरसान्यौ है ॥९६॥

*

गुंजत भृंग निकुंज के पुंज, सरोजन सौरभ की सरसाई ।
प्रानपती के पयान सो 'गंग', सहौ केहि भाँति वियोग दुसाई ॥
बोलत कोकिल बाद हसंत, बसंत के बासर सो न बसाई ।
चैत की चाँदनी के चितए, कहु कैसे कै छोडैगौ काम कसाई ॥९७॥

*

बारिधि बसंत बढ़यौ चाव चढ़यौ आवत है,
बिबस बियोगिनि करेजौ थामि थहरै ।
कहै 'रतनाकर' त्यौ किंसुक-प्रसून-जल,
ज्वाल बड़वानल की हेरि हिऐं हहरै ॥
तुम समुझावति कहा हो समुझौ तौ यह,
धीरज-धरा पै अब कैसैं पग ठहरै ।
भौर चहुँ ओर भ्रमै, एकौ पल नाहिं थम्हैं,
सीतस सुगंध मंद मारुत की लहरै ॥९८॥

बन-बन आग-सी लगाइकै पलास फूले,
सरसो गुलाब गुल्लाला कचनारौ हाय ।
आय गयौ सिर पै चढ़ाय मैन बान निज,
बिरहिन दौरि-दौरि प्रानन सम्हारौ हाय ।।
'हरिचद' कोयल कुहूँकी फेरि बन-बन,
बाजै लाग्यौ युग फेरि काम कौ नगारौ हाय ।
दूर प्रान प्यारौ, काकौ लीजिए सहारौ,
अब आयौ फेरि सिर पै बसत बजमारौ हाय ।।९९।।

*

बिन मधुसूदन के मधु की अवाई भई,
कुटिल कला है मधुकैटभ कुचाल की ।
कहै 'रतनाकर' जुन्हाई चंद्रहास भई,
त्रिबिध बयारि फुफुकारि फनि-जाल की
आनन कौ रंग उडै उडत अबीर संग,
रंग-धार होति अग भार ज्वाल-माल की ।
किरच मुकेस की करद ह्वै करेजै लगै,
दरद-दरेरे देति गरद गुलाल की ।।१००।।

*

कल गु जत कु जत पु ज मालिद, पिऐं मकरंद अनद भरे ।
द्रुम बौरत कैलिया कूकै करै, बहै सौरभ सीरी समीर हरे ।।
बहितंत बसंत कौ भावै नही, 'गुरुदीन' जऊ लसै कत गरे ।
निमि-बासर नींद औ भूख हरी, मुख पीरी परी, दल पीरे परे ।।१०१।।

*

कुंज-कुंज गुंजरत देख अलि-पुंज कूकै,
कूर कैलिया कहा लौ धीर धरिबौ ।
त्रिविध समीर आन तीर सौ लगत हिऐ,
उमँगै गंभीर पीर कैसै दिन भरिबौ ।।
कहै 'शिव कवि' हाय ! प्रगट्यौ बसत समै,
बिन बनमाली आली भो जरूर मरिबौ ।
सेमर अपारन मे, किसुक की डारन मे,
भयौ कचनारन अंगारन कौ फरिबौ ।।१०२।।

बीथिन सघन अति बीचन में बोलें पिक,
तैसौ रह्यौ घेरि बिरहानल इतै-उतै ।
दूजै भई केसरि समान भुव पीत-मई,
पहिरें बसंती चीर सखियाँ जितै-तितै ॥
सीरी सुखदायक समीर लै प्रसून बास,
आवत हमारे हिय वेधत नितै-नितै ।
'बच्चूराम' बावरी भई हौं मैं बिहारी बिन,
देह पीरी-पीरी भई, पीय को चितै-चितै ॥१०३॥

*

बिटप-लता कढी है, चाप-दापसी बढी है,
'सेखर' चढ़ी है अली अबली सुधरि कै ।
सुमन-सुमन जाने, वेई सर ऐंचिताने,
महा बिष साने, जे पराग रहे भरि कै ॥
आहट बिचारयौ, चटकाहट कलीन पारयौ,
मारयौ यह चाहत 'मुबारक' अकरि कै ।
जैहौं जरि मैन आजु, जौहर कै तेही पर,
पावक-सिखा पलास-पल्लव पकरि कै ।१०४॥

*

बौरे रसालन की चढ़ि डारन, कूकत कैलिया मौन गहै ना ।
'ठाकुर' कुंजन पुंजन गुंजत, भौंरन कौ दल चुप्प चहै ना ॥
सीतल मंद सुगंधित 'बीर' समीर लगै तन धीर धरै ना ।
व्याकुल कीन्हो बसंत बनाय कै, जाय कै कंत सों कोऊ कहै ना ॥१०५॥

*

होते जो सुजान तौ न जाते परदेस कहूँ,
ह्वै रहे हैं और मिसि कीरति विहीन के ।
फूल मिसि मानो डार-पातनि पर पेखि रहे,
आनंद अतल होय सोभ उमहीन के ॥
कहै 'मनिदेव' खरे देखि कै पलासन को,
जानि कै कलासन बिलोक बलहीन के ।
बाढ़ि कै सुतेज बान बधिक बसंत बली,
मानो दीने काढ़िकै करेजे विरहीन के ॥१०६॥

कंत बिन बसंत लगै है हाय ! अंतक सौ,
तीर जैसौ त्रिबिध समीर लागै लहकन।
सान लगै साँग सी, हनन घनसार लागै,
खेद लागै खरौ मृग-मद लागै महकन ॥
फाँसी सौ फुलेल लागै, गाँसी सौ गुलाब अरु,
गाज अरगजा लागै, चोबा लागै चहकन।
अंग-अंग आग सम केसर कौ नीर लागै,
चीर लागै बान सौ, अबीर लागै दहकन ॥१०७॥

★

त्रास दैन लागे कै बिलास निजु 'सिव कवि',
आस-पास मे पलास कलिका-खिलन की।
चटकीली चाँदनी करन लाग्यौ चंद-मंद,
बाँधिबे बधून मे बिदेसी गाफिलन की ॥
दई निरदई यह अंतक बसंत आयौ,
अब हम पैसै हू न मोहनै मिलन की।
फूंकै पौन भूंकै, बिरहागि की भभूकै हिय,
प्रान लेत चूकै नहीं कूकै कोकिलन की ॥१०८॥

★

मंजु मल्लिकान के मधुर मकरंद हेत,
छिंद ये मलिंद जित-तित ते फिलै लगे।
जोहि-जोहि चाँदनी मनाये उन मोहि-मोहि,
मानिनी-समूह प्रानपतिन मिलै लगे ॥
कहै 'सिव कवि' कंत बिन यो बसंत बीतै,
त्रिविध समीर डोलि दाहन दिलै लगे।
किंसुक के जाल लाल-लाल बन-बीथिन मे,
फूलन के मिस आली ! आग उगिलै लगे ॥१०९॥

★

आली सुनो, बनमाली-वियोग पलास के पुंजन कौ सुख भागौ।
पात सुखाय रहे बन-बाग, लतान मे स्यामता कौ रँग रागौ ॥
धीर धरै ठहरात न 'माधव', मैन कौ जालिम जोर है जागौ।
भामिनी भौन मे भागि चलो, फिर आग उठैगी, धुवाँ उठ लागौ ॥११०॥

बूझत हौं कहा वाकी दसा, 'भुवनेस जू' बात वृथा कहि जायगी ।
साँची कहौं, पतियाहु नहीं, नहि काँची कछू हमसो कहि जायगी ॥
आस नही बचिवे की अबै, पर प्यारी जऊ रहते रहि जायगी ।
बीस बिसे बन फूले पलासन, देखि अँगारन सो दहि जायगी ॥१११॥

*

लखै सुखदानि पखानन जानि, मयूरन देति भगाय-भगाय ।
मनै कै दियौ पियरे पहिराव को, गाँव मे प्यादे लगाय-लगाय ॥
मुलावती वाके हिए तें हरीहि, कथान मे 'दास' पगाय-पगाय ।
कहा कहिऐ ये पापी पपीहा, व्यथा तन देत जगाय-जगाय ॥११२॥

*

बैरी बसंत के आवन मे, बन बीच दवानल सीघ्र जरैगी ।
योगिन सी बन है बनमाल, वियोगिन 'देव' क्यो धीर धरैगी ॥
ह्वै है करेज कछू कौ कछू , जब बागन कोकिल कूक करैगी ।
फूले पलास के डारन की डरि, बेर डरावन डीठ परैगी ॥११३॥

*

अंब बसंत मे बौरहिगे अरु,' कामिनि चंदन चीर रँगै है ।
डोलेंगे पौन सुगंध 'मुबारक', कुंज-लता सो लता लपटै है ॥
जोगी-जती, तपसी औ सती, इनको बिरहानल आन सतै हैं ।
ताहि छिना सखि ! प्रान तजौ, जो पै कंत बसंत के तंत न ऐहैं ॥११४॥

*

आयौ बसंत अली ! बन तें, अलि के गन डोलत डंक बगारन ।
काम-ध्वजा किसलय उँमगी, बन कोकिल के गन लागे पुकारन ॥
ऐसे मे कैसे बचैगी ' मुबारक ', आज किए हैं सती सिगारन ।
दौरि पलास की डार चिता चढ़ि, भूमि पड़े निरधूम अँगारन ॥११५॥

*

बागन-बागन ह्वै कै पराग लै, ज्यों-ज्यो बहै वो बैहरि भूँकन ।
त्यो-त्यो परी परचंड महा, 'परमेस' उठै बिरहागिन भूकन ॥
कत विदेस बसंत समय, हियरा हहरान लग्यौ अब हूकन ।
नेह भरौ सिगरौ तन जारि कै, कैला कियौ यह कैलिया-कूकन ॥११६॥

बसंत-रूपक

बल्ली कौ बितान, मल्लीदल- कौ बिछौना मजु,
महल निकुंज है, प्रमोद बनराज कौ।
भारी दरबार भरौ, भौंरन की भीर बैठी,
मदन दिवान इतिमाम काम-काज कौ ॥
'पंडित प्रबीन' तजि मानिनी गुमान-गढ़,
हाजिर हजूर सुनि कोकिल अबाज कौ।
चोपदार चातक बिरुद बढि-बढ़ि बोलै,
दौलत-दराज महाराज रितुराज कौ ॥११७॥

*

आयौ रितुराज महाराज महि-मंडल मे,
तिहि की दपट आगें सिसिर-हिमंत कौ।
दुंदुभी धुँकार, ढफ-तालन की झनकार,
मेरे जान घटा है मदन श्रीमंत कौ ॥
'कवि हरिजन' कहै, प्यारी परवीन सुनो,
मोको तौ बचाव है मिलन एक कंत कौ।
पूरन प्रताप, दिन प्रभुता बढ़त आवै,
कोकिला पढ़त आवै बिरद बसंत कौ ॥११८॥

*

मद-मतवारे भारे भौर गन गुंजरत,
मुनि जन देखि गीत गावत उमाह के।
कोकिल नकीब बोल करत कलोल आगें,
पौन हलकारे आली! छूटे चित चाह के ॥
'मोहन सुकवि' जीति सिसिर तगीर कीहे,
बस करि लीहे, देस रहे न निबाह के।
ये जिय जान मान, कर ना गुमान आली!
डेरा परे बागन बसंत बादसाह के ॥११९॥

*

सौंधे समीरन कौ सरदार, मलिदन कौ मनसा फलदायक।
किंचुक-जालन कौ कलपद्रुम, मानिनी बालन हू कौ मनायक ॥
कंत सुहंत अनंत कलीन कौ, दीनन के मन कौ सुखदायक।
साँचौ मनोभवराज कौ साज, सु आवत आज इतै रितुनायक ॥१२०॥

मूर सहकार सीस औरन के तीर करै,
मोरन की बनी बेस--बानै रतिनाह की ।
परिभृत बंदिजन बेहद बिरद बोलै,
झंझा पौन ठाढ़ी लखि बाढी पीर दाह की ॥
कहै 'प्रहलाद कवि' किंसुक त्रिसूल फूल,
सूल उपजावै कहा गति है निबाह की ।
बिरही बचेंगे कैसे, चाह करि अंत हेत,
चढी फौज प्रबल, बसंत पादसाह की ॥१२१॥

*

आयो परवाना पात--डार, छाँह तम्बू--तानि,
कोकिला दिवान चौर तौर पतरावै तुनि ।
छडीदार कैलिया पुकार देहि आठो जाम,
वायु फूल--सेजिया मजेजिया बिछावै चुनि ॥
झडा लाल सेमर, सुगंध हरकारा वर,
बाजत नगारा जो मलिंदगन गावै धुनि ।
सब्द राज होत है 'दिवाकर जू' पछिन्न कौ,
दक्खिन के देस रितुराज आज आवै सुनि ॥१२२॥

*

संग की सहेली रही, पूजत अकेली सिवा,
तीर जमुना के बीर चमक चपाई है ।
हौ तो आई भागत डरत हियरा तें घरै,
तेरे सोच करि मोहि सोचत सवाई है ॥
बचि हैं बियोगी--योगी जन 'सरदार', ऐसी--
कंठ तें कलित कूक कोकिल कढ़ाई है ।
बिपिन--समाज में दराज सी आवाज होति,
आज महाराज रितुराज की अवाई है ॥१२३॥

*

वायु बहारि बुहारि रही, छिति बीथी सुगंधन जाति सिंचाई ।
त्यों मधुमाते मलिंद सबै, जय के करखान रहे कछु गाई ॥
मंगल--पाठ पढें 'द्विजदेव', सबै विधि सो उपमा उपजाई ।
साजि रहे सब साज घने, बन में रितुराज की जानि अवाई ॥१२४॥

आमन के बौरन की ओपी सिर टोपी धर,
कुरता पलासन कौ ललित सुहायौ है ।
तरल तमालन की किरचै—तुपक—तीर,
रजक पराग, सो अधिक छबि छायौ है ॥
गोली से भँवर—भीर बोली भाँति—भाँतिन की,
फूली कलियान में सु रौल ही जमायौ है ।
बीर बिरहीन के करेज रेज करिबे को,
आजु तौ बसंत सो वजीर बनि आयौ है ॥१२५॥

★

मैन महाराज कर दीन्हौ है बहाल हाल,
तेई तरु नाथ कुल दल जैतवार है ।
कोकिल है कनूनगोह, चौधरी चबाई चद्दा,
मौरन विसद्दा केते पैयत न पार है ॥
टेसू कोतवाल जाकौ रूप है कराल,
काजी पौन इसाफ है, सुगंध को अधार है ।
अलि ! मिल बालम, अजौं न तोहि मालुम,
सो आयौ जग जालिम, बसंत फौजदार है ॥१२६॥

★

बस्यौ बन—बीथिन बनाय दरबार,
नव पल्लव गिलिम, औ गुलाबन की गद्दी है ।
कीन्हे कीर-कोकिल नवीन नवसिंदा पात,
झारि दै मिसिल, दफतर कुल रद्दी है ।
बिरहपुरा पै निज अमल लिखाय लायौ,
हरै—हरै चातुरी सो चाँपत चौहद्दी है ।
कीन्है सतलत निज संत औ असंतन पै,
काम छितिकंत कौ बसंत मुतसद्दी है ॥१२७॥

★

आम के मौर धरे तुररा, रितु किंसुक की अलफीन सुहायौ
धूम परागन की कफनी, अलबेलिन सेलिन सौं छबि छायौ ॥
कंज सखा करि किस्ति लिये, अरु कोकिलै-कूक अवाज सुनायौ ।
प्रान की भीख वियोगिनी पै, रितुराज फकीर ह्वै माँगन आयौ ॥१२८॥

फूल फरमान, छाप छपद दुहाई बास,
नूतन गज साज टेसू तबू दै परौ री है।
केकी कारकून, पिक-बानि चिट्ठी आई, जमा-
बिरह बढ़ाई, छबि रैयत मरौरी है॥
सीतल बयारि बादमापि रूप लीनौ है री,
उपज हमारे हरि ध्यान जो धरौ री है।
आयौ है बसंत, ब्रज लायौ है लिखाय शेष,
जोन्ह कौ जलेबदार, काम कौ करौरी है॥१२६॥

*

मलय गुलाबी, हाथ सुमन पियाले आले,
चटक गुलाब चोख चाखत विचारौ सौ।
कहै 'हरिकेस' मोद चारो ओर छायौ जोर,
मधुर अलापै राग-ताल कूक भारौ सौ॥
मुनि-मन बसन लथोरे नेह बौरे बलि,
हेर झकझोरे करै कौरे पिय प्यारौ सौ।
सुरभी कलार कुंज-सदन सु छायौ वाकौ,
मंद-मंद आवत बसंत मतवारौ सौ॥१३०॥

*

माते मकरंद के मलिंद गन गुंजरत,
मंद-मंद सोई मंत्र मोहन सुनायौ है।
कहै 'गिरिधारी' खुली खोपरी कपोतिन की,
तोमरी की तान कोकिलान सुर गायौ है॥
गोली सी निकल रहीं कलियाँ गुलाबन की,
नए-नए आमन की जात उपजायौ है।
राज ब्रजराज जू कों राजी करिबे को आज,
बाजीगर ब्रज मे बसंत बनि आयौ है॥१३१॥

*

खेलत खेल झमेलन मे, रस खेलन खेल बढ्यौ अनमोला।
सोहत है 'गिरधारन' भार, हजारन बारन रूप अतोला॥
एक सखी तहँ रामहिं देखि कै, सीस तें चंदन कौ घट ढोला।
मानहुँ सुद्ध सतोगुन नें, पहिरयौ धरि चाह रजोगुन चोला॥१३२॥

सुरति-समाजन की गूदरी गुही सी मानो,
मोर मुकुट माथे पै सुंदर सुहायौ है।
सेत-सेत फूलन की सोहति विभूति अंग,
सिंघी–धुनि कोकिलान कीरति सुनायौ है॥
प्रेम रस भरौ, धरौ कर मे कमंडल है,
बेलिन की सेली गले चीर दरसायौ है।
माँगि-माँगि मोचन मलिंदन कौ मंत्र पढि,
चेला कामदेव कौ बसंत बनि आयौ है॥१३३॥

*

कलित कमंडल कमल कलिका के करि,
किंसुक कुसुम वर अंबर सुहायौ है।
ठौर–ठौर भौरन की सैनी जयमाल मौर,
सजे हैं रसाल, जटा जूट सो बढ़ायौ है॥
सिष्यन के गीत करि कोकिल-कपोत संग,
पढ़ै हैं उमंग चहूँ ओर सोर छायौ है।
कंत बनमाली कौ पठायौ लाली सौ लसंत,
आली री! बसंत नव संत बनि आयौ है॥१३४॥

*

पीरौ तन पायौ, फूलौ सरसो सुमन सम,
मन मुरझानौ पतझार मनो लाई है।
सीरी स्वाँस त्रिविध समीर सी बहावै सदा,
अँखियाँ बरसि मधु-झरि सी लगाई है॥
'हरिचंद' फूल मन मौन के मसूसन सो,
ताही सो रसाल बाल बदि कै बौराई है।
तेरे बिछुरे तें प्रानकंत कै हिमंत अंत,
तेरी प्रेम–योगिनी बसंत बनि आई है॥१३५॥

*

नैन लाल कुसुम पलास से रहे है फूल,
माल गरै मानो बन झालरि सों लाई है।
भँवर गुजार हरि नाम को उचार तिमि,
कोकिल सो कुहुँकि वियोग–राग गाई है॥

'हरिचंद' तजि पतिभार घर बार सबै,
बौरी बनि दौरी चारु पौन ऐसी धाई है।
तेरे बिछुरे ते प्रान कंत के हिमंत अंत,
तेरी प्रेम-योगिनी बसंत बनि आई है ॥१२६॥

★

लसत कुटज बन, चंपक पलास बन,
फली सब साखा जे हरति जन चित्त है।
स्वेत-पीत-लाल फूल जाल है बिसाल तहाँ,
आछे अलि अच्छर जे काजर के मित्त है॥
'सेनापति' माधव महीना भोर नेम करि,
बैठे द्विज कोकिल करत घोष नित्त है।
कागद रंगीन मे प्रबीन ह्वै बसंत लिखे,
मानों काम चक्कवै के बिक्रम कवित्त है॥१३७॥

★

विकसी बसंत की सुगंध भरी 'सिव कवि'
और ढंग भए बन-कुंज की थलीन के।
कोकिल के कल-कल कल नहिं देत पल,
चारो ओर सोर सखि! सुनिऐ अलीन के॥
ऐसे सम मान प्रानपति सो न कीजिऐ री,
मेटिवे को मान मानिनी की अबलीन के।
देखो रतिराज काज रितुराज कारीगर,
गुरुज बनाए है गुलाब की कलीन के॥१३८॥

★

गावो किन कोकिल, बजावो किन भ्रमर बेनु,
नाँचो किन भूमरि लता गन बने-ठने।
फेंकि-फेंकि मारो किन निज करि पल्लव सो,
ललित लवंग फूल पायन घने-घने॥
फूल माल वारौ किन, सौरभ सँभारौ किन,
ये ही परिचारक समीर सुख सों सने।
बौर धरि बैठौ किन चतुर रसाल आज,
आवत बसंत रितुराज तुम्हे देखने॥१३९॥

कोकिल नकीब, औ पपीहा चोबदार द्वार,
भँवर नफीर, कीरै मंद-मद गायौ है।
गुटक कपोत-गोत ताल मानो तबलन की,
अबलन की जाति भाँति मोरवा नचायौ है॥
तूती ताल देत, भाव भाषत भुजंगी भेद,
चातक उतारै राई-लौन कौ बनायौ है।
मदन महीपति कें 'मनीराम' माघ सुदी-
पंचमी को ब्याहन बसंत रितु आयौ है॥१४०॥

★

बौर मौर किंसुक सुकंकन कलित सौन,
भूषन सुफूल के पराग पट भायौ है।
'ठाकुर' पताकै पता लाल, कंज सिंहासन,
कुंज भेद पालकी गयंद रथ छायौ है॥
पौन है सुढौर बने वृच्छन बराती तौर,
भौर चोपकादि बोल बाजने बनायौ है।
जोहन से मोहन बहार बनरी है संग,
सोहत बसंत बनरा सौ बनि आयौ है॥१४१॥

★

बागन मे चारु चटकाहट गुलाबन की,
ताल देत तालिया तुरै न तुरु तत की।
गुंजत मलिंद वृंद तान सी उपंज पुंज,
कल रव गान कोकिलान किलकंत की॥
'गोकुल' अनेक फूल फूले है रँगे दुकूल,
झूमै आम-बौर हाव-भाव रसवंत की।
लहरे तरुन तरु, छहरै सुगंध मंद,
नाँचत नटी सी आवै बैहर बसंत की॥१४२॥

★

सुंदर सोहै सुगंधित अंग, अभंग अनंग कला ललिता है।
तैसी 'किसोर' सुहात संयोगिन भोगन हू को मनोहरता है॥
संग अली अवली रवि राजित, अंग रसीली बसीकरता है।
कोमलता युत बौर बसंत की बैहर, कै बनिता, कै लता है॥१४३॥

डार द्रुम पालनौ, बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झँगूला सोहै, तन छबि भारी दै ।
पवन झुलावै, केकी-कीर बतरावै 'देव',
कोकिल हलावै, हुलसावै करतारी दै ॥
पूरित पराग सो उतारौ करै राई-नोन,
कंज-कली नायिका लतानि सिर सारी दै ।
मदन महीप जू कौ बालक बसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै ॥१४४॥

★

बासित बयारी उतै, स्वाँसा की सुगंध इतै,
अधरन लाली इत, उतै तरुवंत की ।
इत अरबिंदन पै छटा ज्यौं मलिंदन की,
अगन पै इतै केस-कालिमा अनंत की ॥
कोकिल कलाप उत, मधुर अलाप इत,
टेसू उतै, सारी इतै सूही छबिवंत की ।
'पूरन' बिलोको चलि, कैसी लाल कानन मे-
होड सी लगी है, षोड़सी की औ बसंत की ॥१४५॥

★

बैस की निकाई, सोई रितु सुखदाई, तामे--
तरुनाई उलहत मदन मैमंत है ।
अंग-अग रंग भरे दल-फल-फूल राजैं,
सौरभ सरस मधुराई कौ न अंत है ॥
मोहन मधुप क्यो न लट्टू ह्वै सुभाय भट्टू,
प्रीति कौ तिलक भाल धरै भागवंत है ।
सोभित सुजान 'घनआनँद' सुहाग सींच्यौ,
तेरे तन-बन सदा बसन बसंत है ॥१४६॥

★

डोलि रहे बिकसे तरु एकै, सु एकै रहे है नवाइ कै सीसहि ।
त्यों 'द्विजदेव' मरंद के व्याज सों, एकै अनँद के आँसूँ बरीसहिं ॥
कौन कहै उपमा तिनकी, जे लहे री सबै बिधि संपति दीसहिं ।
तैसई ह्वै अनुराग भरे, कर पल्लव जोरि कै एकै असीसहिं ॥१४७॥

पीरौ फूल चंपक कौ सोभियत कर्नफूल,
तैसौ ही दुकूल अति सरस सुहायौ है।
पीरौ है लहँगा, कुच-कंचुकी सोहात पीरी,
पीरौ है सरीर मानो केसरि लगायौ है॥
मोतिन की माल गर सोहत बन-माल पीरी,
पीरौ पोखराज नग जटित जरायौ है।
कचन की भूमि, ता मे धरै पग झूमि-झूमि,
देखो ब्रजचंद जू बसत बन आयौ है॥१४८॥

*

नील पट तन पर घन से घुमाय राखे,
दंतन की चमक छटा से बिछुरति हौं।
हरिन के किरन जमाय राखौ जुगुनू सी,
कोकिला पपीहा पिकबानी सो भरति हौं॥
कीच अँसुवान की मचाय 'कवि देव' कहै,
बालम विदेस कों पधारवौ हरति हौं।
इंद्र कौ धनुष साज बेसर कसति आज,
रहु रे बसंत ! तोहि पावस करति हौं॥१४९॥

*

मदन महीप कौ समंत बलवंत दिसि—
विदिसनि बीरा लै बसंत उठि धाये है।
करत न बारन अबारन प्रताप जाकौ,
'सकर' बखानौ त्यो अजब गुन गाये है॥
फिरत दोहाई भौर-झौरन के ब्याजन कू,
ललकारे कोकिल की कूकनि गनाये है।
फूले ये पलास के न फूल काढ़ि-काढ़ि मानो,
नेजे मे वियोगी के करेजे लटकाये है॥१५०॥

*

मिलि माधवी आदिक फूल के ब्याज, विनोद लवा बरषायौ करै।
रचि नाँच लतागन तानि वितान, सबै विधि चित्त चुरायौ करै॥
'द्विजदेवजू' देखि अनोखी प्रभा, अलि चारन कीरति गायौ करै।
चिरजीवो बसंत सदा द्विज-देव प्रसूनन की झरि लायौ करै॥१५१॥

बरन-बरन फूले सब उपबन-बन,
सोई चतुरंग संग दल लहियत है।
बंदी जिमि बोलत बिरद बीर कोकिल है,
गुंजत मधुप गान गुन गहियत है॥
आवै आस-पास पुहुपन की सुबास सोई,
सोधे के सुगध माँझ सने रहियत है।
सोभा कौ समाज, 'सेनापति' सुख-साज आज,
आवत बसंत रितुराज कहियत है॥१५२॥

*

लाल-लाल टेसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग-
स्याम रंग भेटि मानौं मसि मे मिलाए है।
तहाँ मधु काज आस बैठे मधुकर-पुंज,
मलय पवन उपबन-बन धाए है॥
'सेनापति' माधव महीना मैं पलास तरु,
देखि-देखि भाउ कविता के मन आए है।
आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानो-
बिरही दहन काम क्वैला परचाए है॥१५३॥

*

धर्यौ है रसाल मौर सरस सिरस रुचि,
ऊँचे सब कुल मिले गनत न अंत है।
सुचि है अवनि बारी भयौ लाज होम तहाँ,
भौंरी देखि होत अलि आनँद अनंत है॥
नीकी अगवानी होत, सुख जनवासौ सब,
सजी तेल ताई चैन मैंन मयमंत है।
'सेनापति' धुनि द्विज साखा उच्चरत देखो,
बनी दुलहिन, बना दूलह बसंत है॥१५४॥

*

बाजी-बाजी बिरियन सीतल गरम बात,
मंद-मंद तुतरात बालक सरूपिया।
जेठ की जलाकी सी सलाका होय आवैं कभूं,
सौरभ सुहावै तरुनापन अनूपिया॥

'ग्वाल कवि' के है अंग थर-थर काँपै कभू,
कभू न बस्याय जू न चाहे भयौ धूपिया।
आनँद के कंद रामचंद हेत आपु मनौ,
आयौ छविवंत ह्वै बसंत बहुरूपिया॥१५५॥

*

गहगहे गिरद गुलाबन के बढावने औ,
किंसुक अंगार मुख माहि परचत है।
मंजुल कुसुम गोली, किसलय प्याले लाल,
मारुत ह्वै चेला भौर ढाल लै पचत है॥
'ग्वाल कवि' कहै कोकिलान की कतारें बहु,
बिपति बिडारै बाँस लहक्यौ चहत है।
राजन के ताज महाराज रघुराज आगे,
आज रितुराज नटराज सौ नँचत है॥१५६॥

*

बाजत मुरज मंजु मारत मरोरदार,
बीन कौ बनाव तुंब वृंद बिबसत है।
ताल की अवाजैं साजै चटक गुलाबन की,
सुंदर सुरगी भौर गुंज सरसत है॥
'ग्वाल कवि' कहै तार ताजे अमराइन के,
साधै सुर कोकिल कुहुक हुलसंत है।
राजे महाराजे रघुबीर जू के आगे चल्यौ,
आयौ बनै बानिक कलावंत बसंत है॥१५७॥

*

बिहरै बिपिन मे बिटप की हलाय डार,
कियौ पतझार जाकी गति है दिगंत लौं।
महँक सुगंध मधु फूलन कपोलन के,
माते मधुकर गुंजरत रसवंत सौ॥
सिह सम सिसिर के सीत को सिसिर करि,
दीनो है भगाय ब्रज बड़े बलवंत ज।
मंद-मंद चलत झरत मकरंद मंद,
मदन मतंग कैधो मारुत बसंत कौ॥१५८॥

फूले है पलास लाल, लहरें निसान सोई,
बौरे है रसाल बरछी सो धार साने की ।
गुजरत मंजुल मलिंद वृंद आस-पास,
मंद गति भासत गयंद है पयाने की ॥
'गोकुल' पराग रज उड़ै पंथ फूलन के,
कोकिला बिरद बर बोले बीर-बाने की ।
मान बलवंत गढ कटा करिवे को अंत,
आयौ न बसंत, सैन मैन मरदाने की ॥१५६॥

*

तारे जहाँ सुभट, नगारे पिक-नाद जहाँ,
पैदल चकोर कोर बाँधे बद बेस की ।
गुजरत भौंर-पुंज, कुंजरत मोर जहाँ,
पौन झकझोर घोर घमक हमेस की ॥
भनत 'कविंद' सर फौज है बसंत आली !,
मिलै तत कंत सो मनोज मान पेस की ।
मानवारी गढ़ी बेगुमान ढाहिवे के लिए,
चढ़ी असवारी है निसाकर नरेस की ॥१६०॥

*

आगै-आगै दौरत वकील गंधबाह ऐसै,
पाछे-पाछे भौरन की भीर भट भोम है ।
बाजै राजै किंकिनी मजीठ कल गाजै जबै,
घूँघट ध्वजा मे मैन सीम धुज सीम है ॥
'कृष्णलाल' सौरभ पै, चंदन पै जाकी जीत,
ऐसौ कौन भूतल में गब्बर गनीम है ।
मदन महीप बाज सदन सु सिरताज,
मदन बहादुर की का पर मुहीम है ॥१६१॥

*

दिसि-दिसि कुसुमित देखिऐ, उपबन-बिपिन समाज !
मनहुँ वियोगिनि कौ कियौ, सर पंजर रितुराज ॥१६२॥

*

फिरि घर को नूतन पथिक, चले चलित चित भागि ।
फूल्यौ देखि पलास-बन, समुहैं समुझि दवागि ॥१६३॥

विविध

ऊधौ ! ये सूधौ सौ सदेसौ कहि दीजो जाय,
स्याम सो सितावी तुम बिन सरसंत है ।
कोप पुरहूत के बचाई वारि-धारन तें,
तिन पै कलंकी चंद बिष बरसंत है ॥
'ग्वाल कवि' सीतल समीर जे सुखद ही, ते-
बेधत निसंक, तीर-पीर सरसंत है ।
जेइ विपनागिन तें बरत बचाई तिन्है,
पारि विरहागिन मे, बारत बसत है ॥१६४॥

वाह-वाह ! आप कों, बिहारीलाल प्यार भरे,
बाला विरहागि तची, अब न तचैगी वह ।
बानी कोकिला की विष-धार सी पचायौ करी,
अब लौं पची सो पची, अब न पचैगी वह ॥
'ग्वाल कवि' केते उपचारन सच्याई करौ,
अब लौं सची सो सची, अब न सचैगी वह ।
आयौ पंचबान लै बसंत बजमारौ बीर,
अब लौं बची सो बची, अब न बचैगी वह ॥१६५॥

*

फूलि उठौ वृंदाबन, भूलि उठे खग-मृग,
सूलि उठै उर विरहागि बगराई है ।
गुंजरै करत अलि-पुंज कुंज-कुंज, धुनि-
मंजु पिक-पुंज, नूत मंजरी सुहाई है ॥
बाल-बनमाल-फूलमाल विकसंत, विह-
संत मुखी ब्रज मे बसंत रितु आई है ।
नंद के नँदन ब्रजचंद कौ बदन देखै,
सदन-सदन 'देव' मदन-दुहाई है ॥१६६॥

*

कछु और उपाय करै जनि री !, इतने दुख क्यो सुख सो भरिबी ।
फिर अंतक सौ बिन कंत बसंत के, आवत जीवित ही जरिबी ॥
बन बौरत बौरी ह्वै जाउँगी 'देव', सुनै धुनि कोकिल की डरबी ।
जब डोलि है औरै अबीर भरी, सु हहा ! कहि बीर, कहा करिबी ॥१६७॥

भानु-तनया की अति तरल तरंग ताकि,
होत तेज अतुल प्रताप पल चार में।
बैठे सुर सग मे सु अंग मे बसंती बास
वैसेई बिछौना जर्द जरद नजार मे॥
'ग्वाल कवि' कोकिल कलित कल रव राजै,
विविध समीर सुख सरस अपार मे।
किसुक कुसुम औ अनार-कचनार चारु,
फैल-फैल फूलत बसंत की बहार में॥१६८॥

*

अवनि-अकास-अंबु-अनिल-अनल आभा,
औरें भाँति भई जो मनोज महिमंत की।
कर जनि मान या दिसानि ह्वै गई है मद,
मति छ्वै गई है सब जानु जग-जंत की॥
कहत 'किसोर' जार जरब कुजोगिन को,
भोगिन को भावती वियोगिन के अंत की।
उलही उमंगन ते लखि लसि रही तैसी,
लहलही लौद्न पै लहर बसंत की॥१६९॥

*

हौरे हौरें डोलती सुगंध सनी डारन तें,
औरै-औरै फूलन पै दुगुन फवी है फाब।
चौथतें चकोरन सो, भूले भए भौरन सों,
चारयौ ओर चंपन पै चौगुनौ चढ़ौ है आब॥
'द्विजदेव' की सौं दुति देखत भुलानों चित्त,
दस गुनी दीपति सों गहव गछे गुलाब।
सौ गुने समीर ह्वै, सहस गुने तीर भए,
लाख गुनी चाँदनी, करोर गुनौ महताब॥१७०॥

*

बीत गई सिगरी रजनी, चहुँ ओर तें फैल गई नभ लाली।
कोक-वियोग मिट्यौ परि पूर, उदै भयौ सूर महा छबिसाली॥
बोलि उठे बन-बागन में, अनुरागन सों चहुँघा चटकाली।
सुंदर स्वच्छ सुगंध सने, मकरंद झरै अरविंद तें आली॥१७१॥

केतकि, असोक, नव चंपक, बकुल-कुल,
कौन धौं वियोगिनी को ऐसौ बिकराल है।
'सेनापति' साँवरे की सूरत की, सुरति की,
सुरति कराय करि डारत बिहाल है॥
दच्छिन-पवन एती ताहू की द्वन जऊ,
सूनौ है भवन परदेस प्यारौ लाल है।
लाल है प्रबाल फूले देखत बिसाल, जऊ-
फूले और साल पै रसाल उर-साल है। १७२॥

*

सरस सुधारी राज-मंदिर मे फुलवारी,
मोर करैं सोर, गान कोकिल बिराव के।
'सेनापति' सुखद समीर है सुगध-मद,
हरत सुरत-स्रम-सीकर सुभाव के॥
प्यारौ अनुकूल, कोहू करत करन-फूल,
कोहू सीसफूल, पाँवडेऊ मृदु पाँव के।
चैत मे प्रभात, साथ प्यारी अलसात, लाल-
जात मुसकात, फूल बीनत गुलाब के॥१७३।

*

तरु नीके फूले विविध, देखि भए मयमंत।
परे बिरह बस काम के, लागे सरस बसंत॥
लागे सरस बसंत, सघन उपबन बन राजत।
कोकिल के कल गीत, मधुर 'सेनापति' साजत॥
तजे सकुच के भाउ, भाउ तजि मान मनी के।
सुर-नर-मुनि सुख सग, रंग राचैं तरुनी के॥१७४।

*

दच्छिन धीर समीर पुनि, कोकिल कल कूजत।
कुसुमित साल रसाल जुत, जो बन सोभावंत॥
जोबन सोभावंत, कंत-कामिनि मनोज बस।
'सेनापति' मधु मास, देखि बिलसत प्रमोद रस॥
दरस हेत तिय लिखति, पीय सियरावहु अच्छिन।
हरहु हीय संताप, आइ हिलि-मिलि सुख दच्छिन॥१७५॥

मलय समीर सुभ सौरभ धरन धीर,
सरवर-नीर जन मज्जन के काज के।
मधुकर-पुंज पुनि मंजुल करत गुंज,
सुधरत कुंज सम सदन समाज के॥
व्याकुल बियोगी, जोग कै सकै न जोगी, तहाँ-
बिहरत भोगी 'सेनापति' सुख-साज के।
सघन सु तरु लसत, बोलें पिक-कुल सत,
देखो हिय हुलसत, आए रितुराज के॥१७६॥

*

गुंजरन लागी भौर-भीरें केलि-कुंजन मे,
कैलिया के मुख तें कुहूकन कढ़ै लगी।
'द्विजदेव' तैसे कछु गहब गुलाबन ते,
चहकि चहूँधा चटफाहट बढ़ै लगी॥
लागौ सरसावन मनोज निज ओज रति,
बिरही सतावन की बतियाँ गढ़ै लगी।
हौन लागी प्रीति-रीति बहुरि नई सी,
नव नेह उनई सी, मति मोह सो मढ़ै लगी॥१७७॥

*

वैसे ही बिदेस के जवैया रहे गौन तजि,
मौन तजि वैसें मंजु कोकिल कलाप भौ।
'द्विजदेव' वैसे ही मलिंदन कों मोद कर,
मल्लिका-मरुअ-माधवीन सो मिलाप भौ॥
वैसे ही सँजोगी जुरि जोवन लगे हैं कंज,
वैसे ही वियोगिन के वृंद कों बिलाप भौ।
वैसे ही बहुरि मोह-बान बरसन लागे,
वैसे ही सगुन फेरि मनसिज-चाप भौ॥१७८॥

— ग्रीष्म —



राशि—

वृषभ + मिथुन



मास—

ज्येष्ठ + आषाढ़



ताते सरल समीर मुख, सूखे सरिता-ताल।
जीव अचल, जल-थल विकल, ग्रीष्म सफल रसाल॥

ग्रीष्म–परिचय



ग्रीष्म ऋतु के आते ही प्रकृति की बसंत कालीन सरस कमनीयता सहसा नीरस कुरूपता में परिवर्तित होने लगती है। कोकिलों की कूक, भ्रमरों की गुंजार और पक्षियों की विविध बोलियाँ कठिनता से सुनायी देती है। मंद सुगंधित शीतल वायु के स्थान पर उष्ण लूह और धूल धूसरित आँधियों की भरमार हो जाती है। इस ऋतु मे प्रकृति अपना मनोहर रूप छोड कर रौद्र रूप धारण करती है, और अपनी विकरालता से अखिल ब्रह्मांड के चराचर को व्याकुल कर देती है।

ऊषा काल के मनोरम वायु मंडल का प्रभाव बहुत थोडी देर तक रहता है, और दिन निकलते ही सूर्य की तप्त किरणें प्राणी मात्र को संतप्त करने लगती है। दोपहर होते-होते प्रचंड मार्तंड भयंकर आग उगलने लगता है जिसके कारण समस्त भू मंडल जलती हुई भट्टी के समान उष्ण हो जाता है। उस समय प्राणी मात्र अपने धंधों को छोड़ कर शीतल स्थानों में चले जाते है, किंतु वहाँ पर भी उनको कठिनता से चैन मिलता है।

पथिक जन रास्ता चलना बंद कर किसी घनघोर वृक्ष की छाया मे विश्राम करने लगते है। ऊँची अट्टालिकाओं और विशाल भवनों के निवासी अपने भव्य निवास स्थानों का मोह छोडकर क्षणिक सुख-प्राप्ति की आशा से साधारण तहखानों की शरण लेते हैं। उस समय शीतल जल और पंखा ही जीवन-धारण करने के साधन बन जाते हैं। समृद्ध जन खस की टट्टी, कपूर मिश्रित अंगराग तथा तपन-निवारक अन्य साधनों का उपयोग करते हैं। इस ऋतु में प्रत्येक व्यक्ति पल-पल में लगने वाली प्यास से पागल सा हो जाता है। जन साधारण शीतल जल से और समृद्ध जन सुगंधित शर्बतो से बार-बार अपनी प्यास बुझाने को बाध्य होते हैं।

इस ऋतु में तन ढकने के साधारण वस्त्र भी असह्य हो जाते हैं। सारा शरीर पसीने से चिपचिपाने लगता है। बार-बार स्नान करने पर भी तृप्ति नहीं होती है और हर दम पानी में बैठे रहने को ही जी चाहता है। झुंड के झुंड नर-नारी सर-सरिताओं में जल-क्रीडा करने को जाते हैं, किंतु वहाँ पर भी जल का अकाल दिखलायी देता है।

ग्रीष्म की तपन से लहलहाती हुई लतिकाएँ सूखने लगती हैं, विकसित फूल–फल झुलसने लगते हैं, हरे-भरे बनोपबन उजडने लगते है, कूप–ताल–सरोवर–नद–नदी आदि समस्त जलाशय जल–विहीन होने लगते हैं। समस्त चराचर जगत् में त्राहि–त्राहि मच जाती है। जल–थल और नभ के समस्त प्राणी व्याकुल हो जाते हैं।

जब अंधड–आँधी धूल का भयकर तूफान उठाती हुई, मार्ग के वृक्षो को उखाड़ती हुई, कृषकों के घरों को ढाती हुई और उनके छप्पर उडाती हुई चलती है, तब समस्त भू–मडल पर धूल का साम्राज्य छा जाता है। उस समय भूमि-आसमान सभी धूल–धूसरित होजाते हैं।

यद्यपि यह ऋतु केलि–क्रीडा और सुखोपयाग के अनुकूल नही है, तथापि ब्रजभाषा के भक्त कवियो ने अपने इष्टदेव की सेवा भावना मे शीतल वातावरण उत्पन्न करने वाली सामग्री की व्यवस्था कर इस ऋतु को भी आनददायक बना दिया है। सुगधित पुष्प–माला, शीतल अगराग, गुलाब-केवडा आदि का सुवासित जल, खस की टट्टी, जल–क्रीडा, और बन-विहार के कारण ग्रीष्म का प्रतिकूल वातावरण भी सर्वथा अनुकूल बना दिया गया है। इसी के अनुकरण पर ब्रजभाषा के अन्य कवियो ने विलासी जनों के आनद-विलास के लिए भी इसी प्रकार की प्रचुर सामग्री एकत्रित की है। ग्रीष्म ऋतु के वर्णन की यह विविधता ब्रजभाषा कवियों के काव्य–कौशल की परिचायक है।

ज्येष्ठ

एक भूत मे होत, भूत भज पंचभूत भ्रम ।
अनिल-अंबु-आकास, अवनि-ह्वै जाति आगि सम ॥
पंथ थकित मद मुकित, सुखित सर सिधुर जोवत ।
काकोदर करि कोस, उदरतर केहरि सोवत ॥
पिय प्रबल जीव इहि बिधि अबल, सकल विकल जलथल रहत ।
तजि 'केसबदास' उदास मग, जेठ मास जेठहिं कहत ॥ १ ॥

**

जगहै जराऊ जामे जरे है जवाहिरात,
जगमग जोति जाकी जग लो जगति है ।
जामे जदु जानि जान प्यारी जातरूप ऐसी,
जगमुख जाल ऐसी जोन्ह सी जगति है ॥
'गिरिधरदास' जोर जबर जवानी कौहै, जोहि
जोहि जलजाहू जीय मे जकति है ।
जगत के जीयन के जीय सो जुराये जीय,
जोय जोषिता की जेठ जरनि जरति है ॥ २ ॥

आषाढ़

आनन अमल उड़ अधिप अधिक आछी,
अंबुज सी अद्भुत आभा ईछननि मे ।
अमय अमोल, ओज-आगर अनूप अति,
अमल उरोज अहैं ईस उन्नतनि में ॥
आछे अवलोके तें अनंग अंग ना उमादि,
आवती न 'गिरिधरदास' आदरनि मे ।
अबला अनोखी ऐसी ईस सो उमंग सजै,
आयौ है अषाढ़, ओढ़ै आनंद अवनि मे ॥ ३ ॥

**

पवन चक्र परचंड चलत, चहुँ ओर चपल गति ।
भवन भामिनी तजत, भ्रमत मानहुँ तिनकी मति ॥
संन्यासी इहि मास होत, इक आसन बासी ।
पुरुषन की को कहै, भए पच्छियौ निवासी ॥
इहि समय सेज सोवन लियौ, श्रीहिं साथ श्रीनाथ हू ।
कहि 'केसबदास' असाढ़ चल, मैं न सुन्यौ श्रुति गाथ हू ॥ ४ ॥

ग्रीष्म



ग्रीष्म–बिहार

(राग सारग)

आज वृंदाविपिन कुंज अद्भुत नई।
परम सीतल सुखद स्याम सोभित तहाँ,
माधुरी मधुर और पीत फूलन छई॥
विविध कदली खंभ, झूमका झुक रहे,
मधुप गुंजार, सुर कोकिला धुनि ठई।
तहाँ राजत श्री वृषभान की लाडिली,
मनो हो घनस्याम ढिग उलही सोभा नई॥
तरनि–तनया–तीर धीर समीर जहाँ,
सुनत ब्रजबधू अति होय हरषित भई।
'नंददास' निनाथ और छिवि को कहै,
निरखि सोभा नैन पंगु गति ह्वै गई॥ ५॥

(राम सारग)

भले ही मेरे आए हो पिय!, ठीक दुपहरी की बिरियाँ।
सुभ दिन, सुभ नछत्र, सुभ महूरत, सुभ पल–छिन, सुभ घरियाँ॥
भयौ है आनद-कंद, मिट्यौ बिरह दुख-द्वंद,
चंदन घिस अंग लेपत, और पाँयन परियाँ।
'तानसेन' के प्रभु दया कीनी मो पर, सूखी बेल कीनी हरियाँ॥६॥

(राग सारग)

सीतल सदन मे सीतल भोजन भयौ,
सीतल बातन करत आई सब सखियाँ।
छीर के गुलाब–नीर, पीरे–पीरे पानन बीरी,
आरोगौ नाथ! सीरी होत छतियाँ॥
जल गुलाब घोर लाई अरगजा–चंदन,
मन अभिलाष यह अंग लपटावनौ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवरधन–धर,
कीजै सुख सनेह, मै बीजना दुरावनौ॥ ७॥

(राग सारंग)

तपन लाग्यौ घाम, ररत अति धूप भैया, कहूँ छाँह सीतल किन देखो ।
भोजन कूँ भई अबार, लागी है भूख भारी, मेरी ओर तुम पेखो ॥
बर की छैयाँ, दुपहर की बिरियाँ गैयाँ सिमिट सब ही जहँ आवै ।
'नंददास' प्रभु कहत सखन सो, यही ठौर मेरे जीय भावै ॥८॥

(राग सारंग)

जेठ मास, तपत घाम, ऐसे मे कहाँ सिधारे स्याम !
ऐसी कौन चतुर नारि जाकौ बीरा लीनो है ।
नैक धौ कृपा कीजै, हम हू को सुख दीजै,
फेरि वाकें जाओ, जाकौ नेह नवीनौ है ॥
बाँह पकरि लै गई, सैया पर दिए बिठार,
अरगजा-चंदन लगाइ, हियौ सीतल कीनौ है ।
'रसिक' प्रीतम कंठ लगाइ, रस मे रस मिलाइ,
अरस-परस केलि करत, प्रीतम बस कीनौ है ॥६॥

(राग विहाग)

रुचिर चित्रसारी सघन कुंज मे मध्य कुसुम-रावटी राजै ।
चंदन के रूख चहुँ ओर छवि छाय रहे,
फूलन के अभूषन-बसन, फूलन सिंगार सब साजै ॥
सीयरे तहखाने मे त्रिविध समीर सीरी,
चदन के बाग मध चंदन-महल छाजै ।
'नंददास' प्रिया-प्रियतम नवल जोरि,
बिधना रची बनाय, श्री ब्रजराज बिराजै ॥१०॥

(राग विहाग)

बैठे ब्रजराज कुँवर, प्यारी संग जमुना-तीर,
सीतल बयारि सखी, मंद-मंद आवै ।
अति उदार वैजयंती, स्याम अंग सोभा देत,
भुज परस्पर कंठ मेलि बिहँसि गावै ॥
झीने पट दिपत देह, प्रीतम सों अति सनेह,
गौर-स्याम अभिराम कोटिक काम लजावै ।
'सूरदास मदनमोहन' मोहनी से बने दोउ,
रहसि-रहसि अंग अरगजा लगावै ॥ ११॥

(राग ललित)

आजु प्रभात लता-मंदिर मे, सुख बरसत अति हरष युगल वर ।
गौर-स्याम अभिराम रंग भरे, लटक-लटक पग धरत अवनि पर ॥
कुच कुमकुम रंजित माला बनी, सुरति नाथ श्री स्याम रसिक वर ।
पिया प्रेम के अंक अलंकृत, चित्रित चतुर सिरोमनि निज कर ॥
दंपति अति अनुराग मुदित, कलि गान करत, मन हरत परस्पर ।
'हित हरवंस' प्रसंस परायन, गावत अलि सुर देत मधुर तर ॥१२॥

(राग केदारौ)

श्री वृंदावन सघन कुंज, फूले नव दल पुहुप-पुंज,
त्रिविध समीर सीरी मंद-मंद आवै ।
उसीर-महल मध्य रावटी रची बनाय,
बैठी संग प्यारी सो तौ पीय-मन भावै ॥
अद्भुत गुन-रूप-रासि, राजत चहुँ ओर सुबास,
बेनु-विलास मध्य, केदारौ राग गावै ।
मनमथ कोटि कला जे सहचरी सकल समाज,
प्रेम-प्रीति-दरसन 'आसकरन' पावै ॥१३॥

(राग सारंग)

बैठे लाल फूलन के चौवारे ।
कुंतल, बकुल, मालती, चंपा, केतकी, नवल निवारे ॥
जाई, जुही, केवरौ, कूजौ, रायबेलि महँकारे ।
मंद समीर, कीर अति कूजत, मधुपन करत झंकारे ॥
राधारमन रंग भरे क्रीडत, नाँचत मोर अखारे ।
'कुंभनदास' गिरिधर की छवि पर, कोटिक मन्मथ वारे ॥१४॥

(राग सारंग)

चंदन पहरि नाव हरि बैठे, संग वृषभान-दुलारी हो ।
जमुना-पुलिन तहाँ सोभित है, खेलत लाल बिहारी हो ॥
त्रिविध पवन बहति सुखदायक, सीतल मंद सुगंध हो ।
कमल प्रकासित, द्रुम बहु फूले, जहाँ राजत नँद-नंद हो ॥
अक्षय-तृतीया अक्षय-लीला, संग राधिका प्यारी हो ।
करत बिहार संग सब सखियाँ, 'नंददास' बलिहारी हो ॥१५॥

ज्येष्ठ–दुपहरी

सूर आयौ सीस पर, छाया आई पाँइन तर,
पंथी सब झुक रहे, देखि छाँह गहरी ।
धधीजन धव छाँडि रह गी, धूपन के लिएँ,
पसु–पछी जीव–जतु चिरैया चुप रह री ॥
ब्रज के सुकुमार लोग दै–दै किवार सोए,
उपवन की ब्यारि तामै सुख क्यो न लह री ।
'सूर' अलबेली चलि, काहे को डराति बलि,
माह की मध्य राति, जैसे ये जेठ की दुपहरी ॥१६ ।

*

सूर आयौ माथे पर, छाया आई पाँइन तर,
उतर ढरे पथिक डगर देखि छाँह गहरी ।
सोए सुकुमार लोग जोरि कै किवार द्वार,
पवन सीतल घोख मोख भवन भरत गहरी ॥
धधी जन धध छाँडि, जब तपत धूप डरन,
पसु-पंछी जीव-जंतु छिपत तरुन सहरी ।
'नंददास' प्रभु ऐसे मे गवन न कीजै कहुँ,
माह की आधी रात जैसी ये जेठ की दुपहरी ॥१७।

(राग बिहाग)

ऐसी दुपहरी मे कहाँ चली मृग–नैनी,
कोमल कमल सी कुमलानी, चरन उघारी ।
हौ तौ आई फूल, बिनन, सखियन हू सुधि न लई,
हौ तो भई प्यासी लाल, गैल बतावो सुचारी ॥
पानी तो कौ प्याइ देउँ, पादुका पहराइ देउ,
आछी नीकी बैठो, नेंक कदंब की छैयाँ ।
'सूरदास मदनमोहन' भलेजु भले आए अचानक,
जैसी तुम जानत हौ, ऐसी हम नैयाँ ॥१८॥

ग्रीष्म–विदा

(राग बिहाग)

तपत–तपत तन सब ही जरयौ, ग्रीषम रितु दुख भारौ ।
कहा करें, कैसै होइ सजनी ! मिलै कब नंद–दुलारौ ॥
सूखे ताल–तलैया बन के, तपत सूर्य अति भारौ ।
'सूरदास' वरषा रितु आई, करयौ ग्रीष्म म्हौ कारौ ॥१९॥

ग्रीष्म-गरिमा

कँपत चर-अचर सकल लखि याहि, प्रभो परताप ताप के धाम ।
सीत-मद-हरन सरन-प्रद पाहि, तिहारे चरन कमल परनाम ।।
देखि तव दारुन दुपहर दर्स, छांह हू तकत छांह के हेत ।
हियन आकर्षत कित हू हर्ष, लता-बनिता-कविता नहि देत ।।
पसीना पौंछत बारहि बार, पसीजत, तोऊ सारे अंग ।
कलित कुम्हिलात हियौ कौ हार, उडत सब मुख मडल कौ रग ।।
हरति तव ज्वाल रसा-रस आय, सरित सरवर सब सूखे जात ।
बात बस बारि बहत, भय पाय, मनहुँ तिन थर-थर काँपत गात ।।
तपनिसो सुधिबुधि तजि कहुँ जाय, मोर जब पैठत पाँख पसारि ।
दुरत ता नीचे बिषधर आय, बिकल प्राननि कौ मोह बिसारि ।।
घाम के मारे अति घबराय, फिरत मारे चहुँ जीवन काज ।
एक थल अपनी बैर बिहाय, नीर ढिग पीवत मृग-मृगराज ।।
लार टपकति जा की अकुलात, स्वान अति हाँपत जीभ निकारि ।
बिलाई कढि समीप सो जात, तऊ नहि बोलत ताहि निहारि ।।
तरनि कौ तापत तरुन प्रताप, बिबस तरुनी गन तजि सकोच ।
निबारति वसन आपसो आप, नही कुछ अनघेरिन कौ सोच ।।
उत सो इत, इतसो उत जात, निरखि निरसात सुहात न ठाम ।
कृपा तो चिपचिपात सब गात, न पावत छिनक कहूँ बिस्राम ।।
चूम मुख दिना गये द्वै-चार, प्यार करि पावति परम प्रमोद ।
मात सोइ तव बस सकल बिसार, उतारति निज बालक को गोद ।।
राह चलिवौ नहि तनिक सुहाय, मचकि मसका तब मारे देत ।
पथिक पछी पादप तर धाय, लेत सीरक तब आवत चेत ।।
तपत रवि सहस किरन बिकराल, चील्ह चीहरत गगन मडराय ।
भभकि भुव उगिलत दावा ज्वाल, लूअ की लपट झकोरा खाय ।
महिष सूकर गन तालन जाहि, न्हात लोटत अति हिय हरसात ।
कीच सनि मुदित महामन माहि, मनहुँ तन लगि चंदन सरसात ।।
जबै अटकत आपस मे बंस, द्रोह दावानल पटकत आय ।
खटकि चटकत करिबे निज ध्वंस, नसत पल भर मे बैर बिसाय ।।
सदाँ अपनी धुन मे दरसाय, पायके कहूँ जलासय तीर ।
उडति बैठति पुन उडि-उडि जाय, बिकल अति मधु-माखिन की भीर ।।
करति ना कोविल निज कल गान, भ्रमर गुजन सौ सूनी कुज ।
परत पद तर पजरत पाषान, जरत परमत पिपीलिका पुज ।।

ताप बस ह्वै अत्यंत अधीर, कहूँ कुलिलत नहि बछरा गाय।
द्रमन तर पी प्याऊ कौ नीर, फिरत जिय-जरनि तऊ ना जाय॥
रेत सो बाहिर भुरसत पाम, तजत डरपत छिन भर को धाम।
प्रबल धमका की पारत धाम, परै छाती नहि करिबे काम॥
निरुद्यम निस्सहाय अति दीन, निबल सहि सकत न तेरी ज्वाल।
उपासे प्यासे बसन बिहीन, लगत जल प्रान तजत ततकाल॥
मित्र को तपत देखि असहाय, लुकन नीचे तुमसो डरि होय।
हिमालय हिम जब जाति पराय, जगत करुना न तऊ तव जीय॥
यदपि पीवत जन कृत्रिम तोय, प्यास प्रबला तोऊ नहि जाय।
कठ की सीतलता गई खोय, रह्यौ रसना मे रस ना हाय॥
करत छिरकाव न पूरत आस, गरम निकसत धरती सो भाप।
चमेली पटल पुहुप नित पास, तऊ तव अटल रूप सो ताप॥
लगी खस-टटियां छिरकी जात, खिंचत खस पंखा तिनके संग।
नंक नौकर के झोखा खात, घुसत तुम वहाँ बडे बेढंग॥
कबहुँ चंदन घिसि धारत अंग, करत सेवन उसीर करपूर।
बगीचन बागन घोटत भंग, तबहुँ नहि होय शांति भरपूर॥
सेत कारी पीरी अरु लाल, लाइ के तुम आँधी परचंड।
उखारत जर सो वृक्ष बिसाल, गिरावत तिनकौ गर्व अखंड॥
गगन मे गगन रही अति छाय, लखत नहिं नील बरन आकास।
दुरत निकरत पुनि पुनि दुरिजाय, नखत दल करत न प्रबल प्रकास॥
सुधाकर सुधा करनि फैलाइ, करति कछु मटमली सी जोति।
यदपि नैनन को अति सुखदाइ, तऊ मनचीती तृप्ति न होति॥
कछुक जब रजनी होत व्यतीत, अटनि पै लै सितार भिरदंग।
गवावत-गावत सुंदर गीत, भंग तऊ करत सबै तुम रंग॥
स्वदेसी मलमल मल-मल धोय, संदली ताको सुघर रँगाय।
पहरि ताकी धोती तिय कोय, रमत परि तबहुँ न कष्ट नसाय॥
उठें खटिया सो नित परभात, बयारि हू सीरी-सीरी खात।
उमस सो तबहूँ सिर चकरात, सोचिये पढ़न-लिखन फिर बात॥
न भावत असन-बसन बन-बाग, अलप घर-घरनी सों अनुराग।
खुले तव पाइ अनुग्रह भाग, कमायो सेतमेत बैराग॥
प्रफुल्लित सबरे आक-जवास, जरे तन हरे-हरे पटसाज।
तुम्हैं कुसुमांजलि सहित हुलास देत, स्वीकार करो महाराज॥२०॥

ग्रीष्म की प्रचंडता

प्रबल प्रचड चडकर की किरनि देखो,
बहर उदंड नव खड घुमिलत है।
अवनि कराही, कैसौ तल रतनाकर सो,
'नैन कवि', ज्वाला की लहर उछिलत है।।
ग्रीषम की ज्वाल-जाल कठिन कराल यह,
काल-व्यालमुख हू की देह पिघलत है।
लूका भयौ आसमान, भूधर भभूका भयौ,
भभकि-भभकि भूमि दावा उगिलत है।।२१।।

*

घोरि घनसारन सो, सखिन कचूर चूर,
लीपे तहखाने सुख दीने है दुदंड की।
तामें खसखाने बने ऊजरे बिताने,
सुर-भौन के समाने जे निदाने ठाने ठंड की।।
बहत गुलाब के सुगंध सो समीर सने,
परत फुही है जल जंत्रन के तंड की।
बिसद उसीरन के फोर परदान प्यारे,
तऊ आन बेधती मरीचें मारतंड की।।२२।।

*

'सेनापति' तपन तपत उतपति तैसौ,
छायौ रति-पति, तातै बिरह बरतु है।
लुवन की लपटै, ते चहूँ ओर झपटै, पै-
ओढ़ि सलिल परै न चित चैन उपजतु है।।
गगन गरद धूंधि, दसौ दिसा रही रूंधि,
मानौ नभ भार की भसम बरसतु है।
बरनि बताई, छिति व्योम की तताई, जेठ-
आयौ आततार्इ पुट-पाक सौ करतु है।।२३।।

*

नाहिन ये पावक प्रबल, लुऐं चलति चहुँ पास।
मानौ बिरह बसंत के ग्रीषम लेत उसास।।२४।।

*

कह लाने एकत रहत, अहि-मयूर, मृग-बाघ।
जगत तपोबन सौ कियौ, दीरघदाघ निदाघ।।२५।।

जीवन को त्रास कर, ज्वाला कौ प्रकास कर,
भोर ही तें भासकर आसमान छायौ है।
धमका धमक धूप, सूखत तलाब-कूप,
पौन कौ न गौन, भौन आग मे तचायौ है॥
तकि-थकि रहे जकि, सकल बिहाल हाल,
ग्रीषम अचर-चर-खचर सतायौ है।
मेरे जान काहू बृष-भान जगमोचन को,
तीसरौ त्रिलोचन कौ लोचन खुलायौ है॥२६॥

*

बृष कौ तरनि तेज सहसौ करनि तपै,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
तचत धरनि, जग जरत भुरनि, सीरी—
छाँह को पकरि पथी पंछी बिरमत है॥
'सेनापति' नैक दुपहरी ढरकत होत,
धमका बिषम जो न पात खरकत है।
मेरे जान पौन सीरे ठौर कौ पकरि कौनौ,
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है॥२७॥

*

उछरि-उछरि भेकी झपटैं उरग हू पै,
उरग पग केकिन की लपटै लहकि है।
केकिन के सुरति हिए की ना कछू है भए,
एकी करि-केहरि न बोलत बहकि है॥
कहै 'कवि ब्रह्म' बारि हेरत हिरन फिरै,
बैहर बहित बड़े जोर सो जहकि है।
तरनि के ताबनि तवा-सी भई भूमि रही,
दस हू दिसान मे दबारि-सी दहकि है॥२८॥

*

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन माँह।
देखि दुपहरी जेठ की, छाँह जु चाहति छाँह॥२९॥

*

ग्रीषम रितु की दुपहरी, चली बाल बन कुंज।
अंग-लपट तीच्छन लुएँ, मलय पवन के पुंज॥३०॥

तपै इत जेठ, जग जात है जरनि जर्‍यौ,
ताप की तरनि मानो मरनि करत है ।
इतहि असाढ, उत नूतन सघन घन,
सीतल समीर हिऐं धीरज धरत है ॥
आधे अंग ज्वालन के जाल बिकराल, आधे-
सीतल समीर हिय हीतल भरत है ।
'सेनापति' ग्रीपम तपत रितु भीषम है,
मानो बडवानल सो बारिध बरत है ॥ ३० ॥

*

तपत प्रचंड मारतंड महि मडल मे,
ग्रीषम की तीखन तपन आर-पार है
'गिरिधरदास' कॉच कीच सौ बहन लाग्यौ,
भयौ नद-नदी नीर अदहन-धार है ॥
झपट चहूँघन तें, लपट लपेटी लूह,
शेष कैसी फूँक, पौन झूकन की झार है ।
ताबा सी अटारी तपी, आवा सी अवनि महा,
दावा से महल, औ पजाबा से पहार है ॥३१॥

*

जैसे बिना जीरन सो जल की जिकिर जीभ,
जर्‍यौ जात जगत, जलाकन के जोर तें ।
कूप-सर-सरिता सुखाय सिकतामै भए,
धाई धूरि धौरन धराधर के छोर तें ॥
'बेनी कवि' कहत अनातप चहत सब
अगिन सो आतप प्रकास चहुँ ओर तें ।
तबा सौ तपत धरा मडल अखडल, औ--
मारतंड मडल दवा सौ होत भोर तें ॥ ३२ ॥

*

चलै लूक पवन लुकारी जनु सबत के,
मानो भालु जुरे देह, मुख जुरे बाघ के ।
मारतड तेज तें बिकल भए जल--थल,
रावटी उसीर राजा जानें, निसि माघ के ॥

पिऐं पिऐं करत जहान रहै रातौ--दिन,
सरिता--तलाब आब पी-पी पोषे दाघ के ।
भनत 'दिवाकर' अनल तें अधिक आँच,
काँच चुऐ काँकरी दुपहरी निदाघ के ॥२४॥

*

सीना बीच ह्वै कर पसीना की बहत धार,
जीना भयौ जुलुम न बैन हू सो धरमी ।
'सेवक' भनत पौन--पानी तें कढति आग,
दाग जैहै परसि, न होति कबौ नरमी ॥
खसखाने रसखाने गए ह्वै अतसखाने,
कसखाने बैठि कहो पूजै हौस हरमी ।
ईषम सी ह्वै रही, नदीषम परति भूरि,
भीषम भई है गाढ, ग्रीषम की गरमी ॥२५॥

*

'सेनापति' ऊँचे दिनकर के चलति लूवैं,
नद--नदी कूवें कोपि डारत सुखाइ कै ।
चलत पवन, मुरझात उपवन--बन,
लाग्यौ है तवन, डार्यौ भूतलौ तचाय कै ॥
भीषम तपत रितु, ग्रीषम सकुचि तातें,
सीरक छिपी है तहखानन में जाइ कै ।
मानौ सीत काल सीत-लता के जमाइबे को,
राख्यौ है बिरंचि बीज धरा मे धराइ कै ॥२६॥

*

नदिन में, नारन में, नारंगी--अनारन मे,
नवल निवारन मे तौर बदले गये ।
'नंदराम' ग्रीषम गुमा मे, गरमी मे, गैल--
गहब गुलाबन सों अंग मसले गये ॥
ऊसर के अंगन मे, नीर--नदी रंगन मे,
तरल तरंगन मे, हरिन छले गये ।
हेमगिरि--मंदर मे, हिमगिरि--कंदर मे,
अंदर के अंदर में बंदर चले गये ॥२७।

प्रात नृप न्हात करि असन बसन गात,
पैधि सभा जात, जौजो बासर सुहात है ।
पीछे अलसाने, प्यारी सग सुख साने,
विहरत खसखाने, जब धाम नियरात है ॥
लागे है कपाट 'सेनापति' रंग-मदिर के,
परदा परे, न खरकत कहूँ पात है ।
कोई न भनक, है कै चनक-मनक रही,
जेठ की दुपहरी कि मानो अधरात है ॥३८॥

*

ग्रीषम की गजब धुकी है धूप धाम-धाम,
गरमी झुकी हैं जाम-जाम अति तापिनी ।
भीजे खस-बीजन झुलैं है ना सुखात स्वेद,
गात न सुहात बात, दावा सी डरापिनी ॥
'ग्वाल कवि' कहै कोरे कुभन ते, कूपन ते,
लै-लै जलधार, बार-बार मुख थापिनी ।
जब पियौ, तब पियौ, अब पियौ फेर अब,
पीवत हू पीवत बुझै न प्यास पापिनी ॥३९॥

*

पूरन प्रचंड मारतंड की मयूखें मंड
जारें ब्रह्मंड, अड डारे पंख-धरिऐ ।
लूएँ तन छूएँ, विन धूएँ की अगिन जैसी,
चूएँ स्वेद-बूद, बुंद धारें अनुसरिऐ ॥
'ग्वाल कवि' जेठी जेठ मास की जलाकन मे,
प्यास की सलाकन ते ऐसी चित अरिऐ ।
कुंड पिये, कूप पिये, सर पिये, नद पिये,
सिधु पिये, हिम पिये, पीयवौई करिऐ ॥४०॥

*

पवन परम ताती लगत, सहि नहि सकत सरीर ।
बरषत रवि सहसौ किरनि, अवनि तपनि के तीर ॥
अवनि तपनि के तीर, नीर मज्जन सीतल तन ।
'सेनापति' रति करति, नारि धरि मुकता-भूषन ॥
भूषन, मंदिर, बास, सकल सूखत सरिता गन ।
पात-पात मुरझात जात बेली-बन-उपबन ॥४१॥

ग्रीष्म-विलास

चदन चहल चित्र महल 'हृदयेस' मोहै,
रस बतियान सो प्रमोद सखियान मे।
खासे खस फरस फुहारे फुही फैलि-फैलि,
फैल भर सीतल समीर छतियान मे॥
गोरे गात सोहै गरे गजरा चमेलिन के,
पोहै बर सुघर सहेली अति स्यान मे।
गोद लै उरोज कर परस गुलाब जल,
छिरकत लाडिलौ लली की अँखियान मे॥४२॥

★

ग्रीषम निदाघ समै बैठे बन दोऊ जहॉ,
बाग मे बहत बहती लहर रहट की।
लहलही माधवी लतान सो लपट रही,
हीतल को सीतल सोहाई छाँह बट की॥
प्यारी के बदन स्वेद-सीकर निहारि लाल,
प्यारौ प्यार करत बयारि पीत पट की।
पत्र बीच कढे कहूँ रवि की मरीचें तहॉ,
लटकि छबीली छॉह छावत मुकुट की॥४३॥

★

सीतल महल महा, सीतल पटीर पंक,
सीतल कै लीपि भीत, छीत-छात दहरे।
सीतल सलिल भरे, सीतल विमल कुंड,
सीतल अमल जल-जंत्र-धारा छहरे॥
सीतल बिछौनन पै, सीतल बिछाई सेज,
सीतल दुकूल पैन्हि पौढ़े है दुपहरे।
'देव' दोऊ सीतल अलिंगनन लेत-देत,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरें॥४४॥

★

लीन्हे लली ललितादिक संग, उमंग सो श्री वृषभानु-दुलारी।
मालती-कुंद-निवारौ-गुलाब सु फूल रही चहुँघा फुलवारी॥
हेम के छूटे फुहारे 'हठी', मघवा मध मेघ महा सरकारी।
हौज में चोज सो मौज भरी, बलि बैठी बिलोकत राधिका प्यारी॥४५॥

भरियत गहरें गुलाब हद हौदन,
सु धरियत रजत फुहारे तदबीर के।
ढरियत ढारन सुढारन गहर नीर,
दरियत घनसार सरद गँभीर के॥
करियत तर अतरन सो बिछौना 'कवि सोभ',
जे उघरियत बातायन नद–तीर के।
चंदन पलँग अरबिंदन की सेज पर,
सुंदरि सिधारी आज मदिर उसीर के॥४६॥

*

द्वार दर परदे पराए मालती के नीके,
छूटत फुहारे भरे री गुलाब नीर के।
चंदन चहल मची चौक मे चौहद्दी चारु,
चलत झकोरे जोरै सीतल ममीर के॥
लाल बलबीर' दासी लै–लै जुही चौर ढोरे,
रूप को निहारे छल प्रेम रनधीर के।
जीवन–अधार सुकुमार सार आज दोऊ,
राजत बिहारी–प्यारी मदिर उसीर के॥४७॥

*

चारो ओर द्वार परे परदे उसीरन के,
छूटत फुहारे नीर सीरे चित चाव के।
सखी चौर ढोरे, फूल अगन अतर बोरे,
सौरभ झकोरें साज मदन उछाव के॥
'लाल बलबीर' दासी खासी करबीन लै–लै,
गावे राग-रागिनी रसीले हाव-भाव के।
दाव कै त्रिलोक की निकाई सुखदाई आज
राजत बिहारी–प्यारी मंदिर गुलाब के॥४८॥

*

कमल बिछाए, वर बिमल बितान छाए,
छबि भरे छज्जे दरबज्जे महराब के।
घने घनसार के सँवारे सखि हौज तामे,
छूटत फुहारे भारे केसरि के आब के॥

सौंधी सेज सुमन सिंगार अंगराग होत,
राग-रंग भारे सुर सरस हिताब के।
चंदन की खौर, बेदी बंदन बनाय बैठे,
राधिका-गोविंद आज मंदिर गुलाब के ॥४६॥

*

अतर पुतायौ, बने खासे खसखाने, तामे-
छीटे चहूँ ओरन उसीरन के आब के।
कंजन बिछौना जामे गुंजे अलिछौना 'हठी',
स्रौनन के तौना सोहै सुरन रबाब के॥
छूटत फुहारे, कासमीर रंग भारे,
बँधे है कतारे मघा मेघ झरदाब के।
देखो ब्रजचंद जग-बंद, चंद मंद होत,
चंदन चहल राधे महल गुलाब के ५०॥

*

प्रेम सरसानी, जस गावैं वेद-बानी, चौर—
ढारे रमारानी, रतिरानी सी टहल में।
कंजन सँभारी सेज, मंजुल करन बेस,
चाँदनी बरन चारु चंदन चहल मे॥
छूटत फुहारे हिमवारे 'हठी' चारो ओर,
छिरकौ गुलाब आब ग्रीपम कहल मे।
भेंटी गुजरैटी अहिरैटी कान्ह भानु-बेटी,
अतर लपेटी लेटी सीतल महल मे ॥५१॥

*

खासे-खासे खुले खसखाने खुसबोईदार,
आस-पास छूटत फुहारे बड़े फाब के।
'गिरिधारी' फरस सँवारे तहाँ फूलन के,
परे दर परदा दरीचिन मे दाब के॥
चंदन बिछाय सुख सोए स्यामा-स्याम तामे,
ग्रीषम मे उषम, हैरानी आबताब के।
गहब गुलफ, गुलगुली गलसुई चारु,
गिलिम गलीचे तर अतर गुलाब के ॥५२॥

आई चलि चंदमुखी चाँदनी महल 'सोभ',
चमकत बादला बसन बितरन सो ।
चाँदी की फुहारन तें फैलत फुही है फूल,
सेज पर दंपति छकत रस-रन सो ॥
बाजैं बीन-बाद, कल हसन अबाद किए,
नूपुर-निनाद वे धरन उतरन सो ।
सर भए सौतिन के सतर मनोरथ री,
तर भए पथ के गुलाब अतरन सो ॥५३॥

★

सुमन सुगंध सुचि सुरभी समीर सेत,
सीतल समाज साज सकल बनाए है ।
नहर-नदी के तट खूब खसखाने जाने,
खिरकी झरोखा खोलि खासदान लाए है ॥
तर करि अतर तमोल तान तामदान,
भान कौ समान सो प्रमान कै डुराए है ।
'द्विज बलदेव' कहै बरफ बिछाय वर,
बारिकै फुहारे औ बितान बेलिताए है ॥५४॥

★

ग्रीषम प्रचंड घाम चंडकर मंडल तें,
घुमड्यौ है 'देव' भूमि मंडल अखंड धार ।
भौन तें निकुंज भौन, लहलही डारन ह्वै,
दुलही सिधारी उलही ज्यो लहलही डार ॥
नूतन महल, नूत पल्लवन छ्वै छ्वै से,
दलवनि सुखावत पवन उपबन सार ।
तनक-तनक मनि-नूपुरु कनक पाई,
आइ गई झनक-भनक झनकारवार ॥ ५५ ॥

★

ग्रीषम समीर तोषी तीर सी लगत अंग,
भूमि महि-मंडल मे तपन तपी रहै ।
असन-बसन पान पानी सुखदानी वस्तु,
तमकै घनेरी सबै यदपि ढपी रहै ॥

व्याकुल कुरंग दौरें बन मे चहूँ दिसान,
मीन अकुलात जोपै नीर मे खरी रहै।
'रसिकबिहारी' संग लीने निज प्रीतम को,
खूब खसखानन मे नवला छपी रहै ॥ ५६ ॥

*

चंदन चहल चोबा चाँदनी चँदेवा चारु,
घनौ घनसार घेरि सीचे महबूबी के।
अतर उसीर सीर, सौरभ गुलाब नीर,
गजब गुजारै अंग अजब अजूबी के॥
'फेरन' फबत फैलि फूलन फरस तामे,
फूल सी फबी है बाल सुदर सु खूबी क।
बिसद बिताने ताने, तामे तहखान बीच,
बैठी खसखाने मे खजाने खोलि खूबी के ॥५७॥

*

माधौ धाम तची भूमि तैसी काम धाम धूम,
प्यारे बनवारी जू! न जैऐ बन-बारी मै।
उबटि कपूर चारु चरचि कै चंदन सो,
छूटत फुहारे सुख सेजन सँभारी मै॥
'भूधर सुकवि' कहूँ रवि सों न हेरयौ लाल,
प्यारी अंग-संग रंग रीझि-रीझि वारी मै।
बसो दोपहर रतिखाने-त्रालाखाने बीच,
भोर होत भौन मे, अथौत फूलवारी मै ॥५८॥

*

चंदन महल मध्य चंद्रक चहल चारु,
चाँदनी सी चिकै चंद चाँदनी सुहाई है।
तर अतरन बीर विजन-बयार नीर,
नहर बिमल बारि चौगृद चलाई है॥
रजत फुहारन की परत फुही है तहाँ,
'परमानद' गुलाबन की गिलम बिछाई है।
ग्रीषम-गरम कर पावै क्यों प्रवेस तहाँ,
जहाँ महाराज ब्रजराज की अवाई है ॥५९॥

फटिक-सिलानि-रचे राजत अनूप हौज,
मौज सौ फुहारे फबै आठहूँ पहल मे।
कहै 'रतनाकर' बिछाइ तिन पास सेज,
सुखद अँगेजि कै सुगंध की चहल मे॥
छात छिति छिरकी कपूर चोवा चंदन सौ,
सीत छिपी आनि जहाँ ग्रीषम दहल मे।
अंग-अंग अमित उमंग की तरंग भरे,
दोऊ सुख लहत उसीर के महल मे॥ ६०॥

*

टटकी उसीरनि की टाटी चहूँ ओर लगी,
सराबोर सुखद सुगंध बहतोल मे।
कहै 'रतनाकर' त्यो फहरै गुलाब-वारे,
फबत फुहारे मनि-हौजनि अमोल मे॥
घसि घनसार चारु चंदन कौ पंक तासौं,
घेरि राखिबे को सीत समर-कलोल मे।
प्यारौ रचै प्यारी के उरोज माहि मक्र-व्यूह,
चक्र-व्यूह प्यारी रचै प्यारे के कपोल मे॥ ६१॥

*

ग्वाल बाल गहकि गुपाल के जुरे है इत,
उत ब्रज-बाल राधिका की चलि आवै है।
कहै 'रतनाकर' करत जल-केलि सबै,
तन मन जीवन की तपनि सिरावैं है॥
कर पिचकीनि हचकीनि सो हथेरिनि की,
छीटै चहुँ कोद छाइ मोद उपजावैं है।
मंजु मुख मोरि मुलकावति दृगंचल को,
अंचल कै ओट चोट चंचल चलावै है॥ ६२॥

*

ग्रीषम बिहार-भौन साँवरे के ढिग गौन,
सर-क्रीडा सोभित सहेली लिऐं संग की।
होत चलि केलिन के विविध विधान तहाँ,
बाढी है ललक उर आनँद-उमंग की॥

ता समै भई जो सोभा, बरनी न जात मोपै,
दमकि उठी है दुति दूनी अंग-अंग की ।
'नागरी' वे कैसी लगे तरुनी तरगनि मे,
पानी पर पावक ज्यो फिरत फिरंग की ।६३॥

*

दोऊ अनुराग भरे आए रंग-भौन भाग,
मघवा-सची को लावि लागत सहल है।
बैठे एक आसन पै एकै संग, एकै रंग,
चल्यौ ना परत अग कोमल कहल है ॥
एकन लै अतर लगायौ 'देव' दुहुन कैं,
छिरक्यौ गुलाब, कीने बिजन बहल है ।
लैकै करबीन परबीन अलियाँ अलाप,
मंजु सुर-पुंजन सो गुंजत महल है ॥६४॥

*

पाय रितु ग्रीषम बिछायत बनाय, वेष—
कोमल कमल निरमल दल टकि-टकि ।
इंदीवर कलित ललित मकरंदै रची,
छूटत फुहारे नीर सौरभित सकि-सकि ॥
'ग्वाल कवि' मुदित बिराजत उसीरखाने,
छाजत सुरा में सुधा-सुषमा को छकि-छकि ।
होत छवि नीकी वृषभान-नंदिनी की, सोह-
भानु-नंदिनी की, ते तरंगन को तकि-तकि ॥६५॥

*

सूरज-सुता के तेज तरल तरंग ताकि,
पुंज देवता के घिरें ताके चहुँ कोय के।
ग्रीषम-बहारैं, बेस छूटत फुहारै-धारैं,
फैलत हजारैं हैं गुलाब स्वच्छ तोय के ॥
'ग्वाल कवि' चंदन कपूर-चूर चुनियत,
चौरस चमेली चंदवदनी समोय के।
खास खसखाने, खासे खूब खिलवतखाने,
खुलि गे खजाने खाने-खाने खुसबोय के ॥६६॥

सीतल भवन अरु पवन सु सीतल ही,
　　सीतल महीतल अनद अधिकावै है ।
सीतल सरित-तीर नीर अति सीतल त्यो,
　　सैन नवलान हू की सीतल सुहावै है ॥
'रसिक बिहारी' चारु हार मृदु फूलन के,
　　सरस सुगंध चाह अमित बढ़ावै है ।
सीतल घनेरे, तहखानन दुरे हैं तऊ
　　ग्रीष्म की ताप तन तपनि जनावै है ॥६७॥

*

जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने, तल-
　　ताख तहखाने के सुधारि झारियत है ।
होत है मरम्मति विविध जल-जत्रन की,
　　ऊँचे-ऊँचे अटा तें सुधा सुधारियत है ॥
'सेनापति' अतर-गुलाब-अरगजा साजि,
　　सार तार हार मौल लै-लै धारियत है ।
ग्रीषम के बासर बराइवे कौ सीरे सब,
　　राज-भोग काज साज यौं सँभारियत है ॥६८॥

*

सुंदर बिराजै राज-मंदिर सरस, ताके-
　　बीच सुख दैनी, सैनी सीरक उसीर की ।
उछरै सलिल, जल-जंत्र ह्वै विमल उठै,
　　सीतल सुगंध मंद लहर समीर की ॥
भीने है गुलाब तन सने है अरगजा सों,
　　छिरकी पटीर नीर टाटी नीर-तीर की ।
ऐसें बिहरत दिन ग्रीषम के बितवत,
　　'सेनापति' दपति मया तैं रघुबीर की ॥६९॥

*

रितु ग्रीषम की प्रति बासर 'केसव', खेलत है जमुना-जल में ।
इत गोप-सुता, उहि पार गोपाल, बिराजत गोपन के गल में ॥
अति बूढ़ति हैं गति मीनन की, मिलि जाय उठें अपने थल मे ।
इहि भाँति मनोरथ पूरि दोउ जन, दूर रहैं छवि सो छल मे ॥७०॥

ग्रीष्म–विलास के साधन

ग्रीषम न त्रास, जाके पास ये बिलास होय,
खस के मवास पै गुलाब उछर्यौ करै ।
बिही के मुरब्बे डब्बे चाँदी के बरक भरे,
पेठे-पाक केवरे मे बरफ पर्यौ करै ॥
'ग्वाल कवि' चंदन चहल मे कपूर पूर,
चंदन अतर तर बसन खस्यौ करै ।
कंजमुखी, कंजनैनी, कंज के बिछौनन पै,
कजन की पंखी कर–कंज सो कर्यौ करै ॥७१॥

★

ग्रीषम की पीर के बिदीर के सुनो ये साज,
तरु–गिरि तीर के, सुछाया मे गँभीर के ।
सीतल समीर के सुगंधी गौन धीर के जे,
सीर के करैया प्यासे पूरित पटीर के ॥
'ग्वाल कवि' गोरी दृग-तीर के, तुसीर के सु,
मोद मिले जैसें अकसीर के, खमीर के ।
आबखोरे छीर के, जमाये बर्फ चीर के,
सु बंगले उसीर के, भिजे गुलाब-नीर के ॥७२॥

★

बरफ–सिलान की बिछायत बनाय करि,
सेज संदली पै कंज–दल पाटियतु है ।
गालिब गुलाब जल–जाल के फुहारे छूटे,
खूब खसखाने पर गुलाब छाँटियतु है ॥
'ग्वाल कवि' सुंदर सुराही फेरि, सोरा मे–
ओरा कौ बनाय रस, प्यास डारियतु है ।
हिमकर-आननी हिवाला सी हिए तें लाय,
ग्रीषम की ज्वाला के कसाला काटियतु है ॥७३॥

★

झाँपै झुकी झपटै, झरोखन की झाँझरी की,
झोंकन खुलै न कहूँ, खसखस की टाटी सो ।
आँगन के ऊपर अँगूरन की लाई लता,
छिरकै छबीली छीर–छीटन की छाटी सो ॥

आयौ रितु ग्रीषम गरूर 'जगमोहन जू',
बगरि बगारयौ बार बेलिन की बाटी सो ।
अगर-उसीर-नीर सौरभ समीर सीरे,
सुखद सँवारै सेज सीतल की पाटी सो ॥ ७४ ॥

*

फहरै फुहार-नीर, नहर नदी सी बहै,
छहरै छबीन छाम छीटन की छाटी है ।
कहै 'पद्माकर' त्यो जेठ की जलाकै तहाँ,
पावै क्यो प्रवेस वेस बेलिन की बाटी है ॥
बारहूदरीन बीच चार हू तरफ तैसी,
बरफ बिछाई ता पै सीतल सु पाटी है ।
गजक अंगूर की, अंगूर सो उचौहै कुच,
आसव अंगूर कौ, अगूर ही की टाटी है ॥ ७५ ॥

*

धौर हर धौल धूप थाप हू धसै न जामे,
चहुँघा दुआर के सुगंध सार साला से ।
मनि-दीप माला, मनि-भूषन बलित बाला,
खासे परयंक वासे सुमननि माला से ॥
व्यंजन उसीर नीर मलयज समोए ह्वै,
परसत समीर है सरस सीत काला से ।
जिन हेतु विरची विरंचि हैम-साला ऐसी,
व्यथित न होत ते निदाघ-जात ज्वाला से ॥ ७६ ॥

*

अंबर अतर-तर, चद्रक चहल तन,
चंद्रमुखी चदन महल मन-साला से ।
खासे खसखाने, तहखाने, तरताने तने,
ऊजरे बिताने छुऐं, लागत है पाला से ॥
'दत्त' कहै ग्रीषम-गरम की भरम कौन,
जिनके गुलाब-आब हौज भरे ताला से ।
झाला से झरत झर, झापन सी बारा बाँधि,
धारा बाँधि छूटत फुहारा मेघ-माला से ॥ ७७ ॥

चौक मे चटक चाँदनी मे चारु सेज साजु,
नारन के ऊपर सेवारन बिछाय दै।
चंदन की चहल चमेली के अतर घोरि,
घने घनसारन चहूँघा छिरकाय दै॥
कहै 'नदराम' तैसे बोरि कै सुगधन सों,
हौरै-हौरै बेगि-बेगि बीजना डोलाय दै।
गहगहे गहव गुलाबन के गुंजि गुहि,
गजरा गरे गरू गुलाब गलकाय दै॥ ७८॥

★

गाढ़े गंध-सारन घनेरे घनसार आली,
घोरि-घोरि आज मेरे बगर बगारि दै।
त्यो ही तहखानन मे, खासे खसखानन मे,
अतर गुलाब के फुहारन फुहारि दै॥
बेली के बिछौना पै सुधारि साधि एला पान,
आछे मृग-मद सो अमोद उदगारि दै।
जौलौ 'जगमोहन' बिराजै इत बीर, तौलौ-
बाहर सो बैठि बलि व्यंजना सँवारि दै॥ ७६॥

★

आवाँ सी अवधि, धुंधी धूप रूप धूमकेतु,
आँधी अंध कूप डारै लोचन अनैसे कै।
जमक जलाकन की, नाकन की लोहू चलै,
व्याकुल जगत सांझ पावै जैसे-तैसे कै॥
लोकपति लूक से उलूक से लुकत 'बेनी',
कुंज छाया जहाँ-तहाँ छाइ रही ऐसे कै।
कोठरी तखाने, खसखाने जलखाने बिन,
ग्रीषम के बासर व्यतीत होय कैसे कै॥ ८०॥

★

अमल अटारी, चित्रसारी वारी रावटी मे,
बारहै दुवारी मे केवारी गंधसार की।
कामानल छाय रह्यौ चाँदनी बिछौना पर,
छबि छबि रही छीर-सागर कुमार की॥

'श्रीपति' गुलाब वारे छूटत फुहारे प्यारे,
लपटें चलत तर-अलर बयार की।
भूपन निवारी, घनसार भीजि सारी झारि,
तऊ न बुझानी नैक ग्रीषम के झार की ॥८१॥

*

ग्रीष्म-वियोग

विकल सकल जल-थलन के जीव होत,
जेठ की जलाकनि मे पुहुमी तपति है।
सरित-सरोवर रसाल जलहीन भए,
सूखे तरु पसु हू पखेरुन बिपति है॥
ग्रीषम-तपनि, दूजै बिरह-तपनि बाढ़ी,
ता पै ये लपटि झपटि लपटति है।
सीरे उपचारन ते जारत अनग अग,
पिय बिन मान याकौ कैसे कै रहति है ॥८२॥

*

बरबरात बैहर प्रचंड खड मंडल पै,
धरधरात धूपन की दुति पीन अरफरात।
झरझरात पवन के झोक आऐं अरअरात,
खरखरात पात-पात वृच्छन ते चरचरात॥
भरभरात भामिनि भवन माँझ बैठी जाय,
हरबरात हाय-हाय! पीय-पीय! बरबरात।
कहै 'बच्चूराम' छिन-छिनक मे चुरमुरात,
जल बिन मीन जैसै, सेज हू पै फरफरात ॥८३॥

*

ग्रीषम तपत परचंड नव खड मध्य,
लहू भरे लाले लाले, लूइन लुकारे है।
तीर कैसे तीच्छन उसीर सरसात आली,
मानो आज बरसत अंगन अँगारे है॥
ऊबि-ऊबि आवै साँस ज्यों-ज्यो अध ऊरध,
उसाँसै उपसाऐं कैसौ पूरन पनारे है।
सूखे सर-सरिता, अपार 'जगमोहन जू',
दिन बिपरीते, रीते नदी-नद-नारे है ॥८४॥

ग्रीषम मे भीषम है तपत सहस-कर,
बापी--ताल-नारे नदी-नद सूखि जात है।
झंझापौन झरपि-झरपि झकझोरि झोरि,
धूरिधार धूसरे दिगत ना दिखात है॥
'श्रीपति' सुकवि कहै, आली ! बनमाली बिन,
खाली जग मोहि कैसे बासर बिहात है।
तावा से अजिर लग, लावा सौ तचत घर,
भयौ गिरि आवा सौ, पजावा सौ धुँवात है॥८५॥

*

धुंधरे दिगत भए, बिगत बसंत आली,
ग्रीषम विषम दिन काहू ना सुहात है।
तैसे ही प्रचंड मारतंड नवौ खंडन मे,
बलित बवंडर बहत चारो वात है॥
सूखे से लगत द्रुम, रूखे-भूखे सलिल से,
भंजन भयावन महाबन झुरात है।
आवा सौ जगत भयौ, तावा सी तपति भूमि,
दावा भए भूधर, पजावा से धुँवात है॥८६॥

*

प्रीतम न आए, जाय कुबिजा-गृह छाए ऊधौ !
पाती लै आए, यहाँ ग्रीषम की हूक है।
पवन झहराने, धूल लागीं फहराने,
अब कामसर ताने हिए बेधत अचूक है॥
सूर की चमक, दूजै घाम की घमक,
तीजै लूह की रमक ते उठत तन बूक है।
कहै 'बच्चूराम' चोली-चीर न सुहाय अब,
बिना मिले स्याम के कलेजा टूक-टूक है॥८७॥

*

रुकौ नदी-नदनि निकास नीर पूरन कौ,
सरन को तपन समान नीर सर कौ।
तीनै तौ तनून पात पूरित प्रकासनि सो,
सकती न तैस करि ताकि नारी-नर कौ॥

प्यारे परदेस को 'दिनेस' कत दीसौ दिन,
दौरे तपी दरनि तकै न तरु तर कौ।
दिसि-दिसि देसन मे दारुन दरेर कै-कै,
पूरौ परिपूरन प्रताप दिनकर कौ ॥८८॥

*

विविध

तावरी तपन ताप ज्वाला सो न बिरहीन,
छीन ह्वै रही हैं आपनौई एक भाव री।
भावरी सजन मध्य जासो सब राजी रहै,
नैक लूह लपट सो घट ना जराव री॥
रावरी न मानी है सनेह नेह मेरौ कह्यौ,
देह मे प्रवेस बारि बाती को लगाव री।
गाव री, बजाव री, सु बदी! मन भाव री,
पै एरी बीर ग्रीषम! तू मोहि न सतावरी ॥८९॥

*

सीरे तहखाने, तामै खासे खसखाने, सौंधे-
अतर-गुलाब की बयारे रपटति है।
'भूधर' सुधारे हौज, छूटत फुहारे भारे,
बारे तापदानन मे धूम दपटति है॥
ऐसे समय गौन कहो कैसे कै बनैगौ प्यारे!
सुधा के तरंग प्यारौ अंग लपटति है।
चंदन-किवार घनसार कै पगार दई,
तऊ आनि ग्रीषम की झार झपटति है ॥९०॥

*

छायौ रितु ग्रीषम कौ भीषम प्रचड ताप,
जाकी छाप सब छिति-मडल सही लगी।
कहै 'रतनाकर' बयारि-बारि सीरे कहूँ-
पैऐ नैक, एक रहै अहक यही लगी॥
करबट लै-लै बरबट ही बिताई रात,
पलक लगाए हू न पलक रही लगी।
अब ही सिरान्यौ ना संताप कल ही कौ, फेर-
ताप सो तपाकर के तपन मही लगी ॥९१॥

मेष-वृष तरनि तचाइन के त्रासन तें,
सीतलाई सबै तहखानन मे ढली है ।
तजि तहखाने गई सर, सर तजि कंज,
कंज तजि चंदन-कपूर पूर पली है ।।
'ग्वाल कवि' ह्वाँ तें चंद मे ह्वै चाँदनी मे गई,
चाँदनी तें सोरा मिले जल माँहि रली है ।
सोरा जल हू तें धसी ओरा, फिर ओरा तजि,
बोराबोर ह्वै करि हिमाचल मे गली है ।।६२।।

*

ग्रीष्म—रूपक

चंड कर झारत झकोरत सरोष पौन,
तोरत तमालगन गयंद दिन भारौ सौ ।
धर्म के धरनि गिरि, तमकै प्रताप जाकौ,
देखत मजेज रेज जगत निहारौ सौ ।।
तरु छीन छाया, सर सूखत समुद्र, बन—
'करन' विचारि देखो आतप अँगारौ सौ ।
छावत गगन धूर, धावत धँधात आवै,
चोप चढौ ग्रीषम गयंद मतवारौ सौ ।।६३।।

*

पतित द्विजन कौ है देत सु मनै सुखाय,
लगै अति कानन मे, बात ताप मे बली ।
मित्र वृष कौ है, जहाँ भारी दुखकारी बनौ,
बोलै दृग राते बिन काल बृथा ही छली ।।
जीवन जलावति है, लावति है अगिन मनो,
'दीनदयाल' सारस न मिलै जल की थली ।
देत नाहि बसन सु बसन उतारि बिन,
कैधौं यह ग्रीषम, कै घोर खल-मंडली ।।६४।।

*

देह तची बिरहानल सो, अति ऊरध स्वाँसहि पौन बढ़ाई ।
मुक्त बलाकन की अबली, 'बलदेव' कहै सुखमा सरसाई ।।
स्याम घटा सम कारी लटै, दुति दामिनी त्यो बर दंतन पाई ।
भीषम बुंद गिरै दृग सो, रितु ग्रीषम मे बरषा रितु आई ।।६५।।

— वर्षा —



राशि—

कर्क + सिंह



मास—

श्रावण-भाद्रपद



वर्षा हंस-पयान, बक-दादुर-चातक-मोर ।
केतकि पुष्प-कदंब-जल, सौदामिनि घनघोर ॥

ऋ० ११

पावस-परिचय



वर्षा ऋतु सबसे अधिक मनोरम और सुहावनी ऋतु होती है, इसीलिए कवियों ने इसका अत्यत विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। ग्रीष्म ऋतु की प्रचड तपन से संतप्त चराचर जगत् के लिए वर्षा ऋतु वरदान के रूप मे आती है, इसीलिए इसका इतना अधिक महत्त्व माना गया है।

ज्येष्ठ मास की धधकती धूप और लपलपाती लूओं ने ही समस्त जन समुदाय को सन्त्रस्त कर दिया था, किंतु आषाढ मास की ऊमस और बडी गर्मी ने तो गज़ब ही ढा दिया! सब लोग पसीने-पसीने होकर अकुलाने लगे और वर्षा ऋतु के आगमन की बडी उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करने लगे। आखिर बडी प्रतीक्षा के पश्चात् क्षितिज में एक ओर कुछ बादल उठते हुए दिखलायी दिये। सब लोग बडे चाव से उनकी ओर देखने लगे। देखते ही देखते नभ मडल में मेघ-मालाएँ घिर आयी। शीतल पवन मद गति से चलने लगी। जहाँ-तहाँ मयूर गण उच्च स्वर से कूकते हुए वर्षा ऋतु के आगमन को सूचना देने लगे। लोगों के कुम्हलाए हुए मन इस आशा से खिल उठे कि अब घनघोर वर्षा होने से ग्रीष्म जनित कष्टों से मुक्ति मिलेगी, किंतु उनकी यह आशा शीघ्र ही निराशा मे परिणत हो गयी! उमड़-घुमड़ कर आये हुए बादल न मालूम नभ मंडल में कहाँ विलीन हो गये—घन घोर वर्षा तो क्या, कुछ बूँदे भी नही पड़ी!

किंतु लोगों को इस प्रकार की निराशा में अधिक दिनों मे तक नहीं रहना पड़ा। आकाश मडल में फिर बादल घिरने लगे। ठडी-ठडी हवाएँ चलने लगीं। पहले छोटी-छोटी फुहारे आयीं, फिर एक जोर का पानी पड गया, किंतु ग्रीष्म ऋतु की धधकती धरती पर पावस की यह प्रथम वर्षा जलते हुए तवे पर कुछ बूँदों के समान विलीन हो गयी! किंतु अब ग्रीष्म की दु:खदायी रात्रि का अत और पावस के सुखद प्रभात का प्रारंभ हो चुका था। इसलिए बार-बार वर्षा होने से भूमि की प्यास बुझ गयो और अब यत्र-तत्र बहता हुआ जल खार-खड्ड, पोखर, कूप, ताल, सर-सरिताओं मे एकत्रित होने लगा।

प्रति दिन मेघ-मालाएँ नभ मडल में छाने लगीं। प्रबल वायु के झोंके उनको रुई के पहलों की तरह इधर से उधर उड़ाने लगे। कभी

बादल भूमि को छूते हुए दिखलायी देते, तो कभी वे आकाश में बहुत ऊँचे उडते हुए ज्ञात होते थे। कभी छोटी-छोटी बूँदें पडने लगती, तो कभी गर्जन-तर्जन के साथ धूँआधार पानी पडने लगता था। कभी काल-काले बादलो के घटाटोप के कारण इतना सघन अधकार छा जाता कि दिन में भी रात्रि का धोखा होने लगता था। बादलों के घनघोर घटाटोप मे बिजली की चमक-दमक एक अद्भुत दृश्य उपस्थित करती थी। बादलो की गड़गडाहट और बिजली की चमचमाहट से ऐसा मालूम होता था कि आकाश रूपी रग भूमि मे नगाड़ों की ताल पर कदम उठाती हुई कोई चचला नर्तकी घूम-घूम कर नृत्य कर रही है!

बादलों की गरज, बिजली की चकाचोध और वर्षा की झडी में मोर शोर मचाने लगे, पपीहा पीऊ-पीऊ और कोयल कुहू-कुहू की मधुर ध्वनि से चारो ओर रस बरसाने लगे, झिल्ली गण झनझनाने लगे और मेढ़क टर्राने लगे। इस प्रकार वर्षा ऋतु ने सदल-बल समस्त पृथ्वी पर अपना अधिकार कर लिया। चारो ओर हरियाली ही हरियाली दिखलायी देने लगी। बन-उपबन, बाग, बगीचे सब पर नयी बहार आने लगी। लता-द्रुम-बल्लरी से परिपूर्ण बन श्री की अपूर्व शोभा हो गयी।

रात-दिन की घनघोर वर्षा के कारण नदी-नालों में पानी का उफान सा आ गया। वर्ष के आठ महीनों में सूखी पड़ी रहने वाली छोटी-छोटी नदियाँ भी जल से भरपूर होकर अपने किनारों के वृक्षो को गिराती हुई बहने लगीं। जब छोटे नद-नालों की यह दशा है, तब बडी-नदियों का क्या कहना है! वे किनारों को तोड़ती हुई चारों ओर फैलने लगीं और मार्ग की वस्तियों को बहाती हुई बाढ के रूप मे अपार वेग से बहने लगीं।

पावस ऋतु के आते ही प्रेमी-प्रेमिकाओं की दुनियाँ मे भी हलचल मच जाती है। यह ऋतु जहाँ सयोगी युग्मों को सुख प्रदान करती है, वहाँ वियोगियों की व्यथा का कारण बनती है। व्रजभाषा कवियों ने सयोगियों के स्वर्गीय सुख और वियोगियो की विरह-वेदना का बडा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

श्रावण

'केसव' सरिता सकल, मिलत सागर मन मोहै ।
ललित लता लपटाति, तरुन तन तरुवर सोहै ॥
रुचि चपला मिलि मेघ, चपल चमकत चहुँओरन ।
मनभावन कहँ भेटे, भूमि कूजत मिसि मोरन ॥
इहि रीति रमन रमनीन सों, रमन लगै मनभावनै ।
पिय गमन करन की को कहै, गमन न सुनियत सावनै ॥१॥

**

सोना से सरीर पै सिगारन सुभग सजि,
सेज साजि-साजि स्याम-संगम-सुखन मे ।
सुदरी सिरोमनि सोहागिनि सलौनी सुचि,
स्यामा सुकुमारि सौहै सीसा के सदन मे ॥
सीस सीस-सुमन सुहायौ 'गिरिधरदास',
सूर मरसात, ज्यो सकारे सरपन मे ।
सिधु-सुता, सैल-सुता, सारदा, सची सी सुचि,
सावन मे सरसै सरस सखियन में ॥२॥

भाद्रपद

नभ नीर देत, नील नीरद नगेस कैसे,
नाद कर सुनि नाक नाग करै नति है ।
नदी-नद-नारे-नीरनिधि नीर पूरे नये,
नलिन नसाए त्यो निदाघता नसति है ॥
'गिरिधरदास' नग नाह नीय नग धरे,
नाग अति नाचें, नेह नदी निकरति है ।
नभ मास नागर को नागरी निरखि ऐसै,
नवल निकुंज मे निपुन निरतति है ॥३॥

**

घोरत घन चहुँओर, घोष निर्घोषनि मंडहि ।
धाराधर धर धरनि, मुसल धारन जल छंडहि ॥
झिल्ली गन झनकार, पवन झुकि-झुकि झकझोरत ।
बाघ-सिंह गुंजरत, पुंज कुंजर तरु तोरत ॥
निसिदिन विशेष निहि सेष मिटि, जात सुओली ओडिऐ ।
देसहि पियूष परदेस विष, भादौ भौन न छोडिऐ ॥४॥

वर्षा



वर्षा–बहार

(राग मलार)

सोभा माई, अब देखन की बहार ।
गोवर्धन पर्वत के ऊपर, मोरन की पतबार ॥
ठाडे लाल पीत पट ओढ़ै, मुरली मधुर रसाल ।
मोर–चन्द्रिका माथे सोहै, और गुंजन के हार ॥
घन गरजत अरु दामिनि दमकत, नैही-नैही परत फुहार ।
'सूरदास' प्रभु तऊ न अघैहै, अँखियाँ होइ लख चार ॥५॥



ब्रज पै स्याम घटा जुरि आई ।
नैसिय दामिनि चहुँ दिसि कोधत, लेत तरग सुहाई ॥
सघन छाँह, कोकिला कूजत, चलत पवन सुखदाई ।
गुंजत अलिगन सघन कुंज मे, सौरभ की अधिकाई ॥
विकसित स्वेत पाँत बगुलन की, जलधर सीतलताई ।
नव नागर गिरिधरन छबीलौ, 'कृष्णदास' बलि जाई ॥६॥



बादर भरन चले है पानी ।
स्याम घटा चहुँ ओर ते आवत, देखि सबै रति मानी ॥
दादुर-मोर-कोकिला कलरव, करत कोलाहल भारी ।
इन्द्र-धनुष, बग-पाँति, स्याम-छवि लागत है सुखकारी ॥
कदम वृक्ष अवलब स्यामघन, सखा-मडली संग ।
बाजत बेनु अरु अमिय सुधा-सुर, गरजत गगन मृदग ॥
रितु आई, मनभाई सबै जिय, करत केलि अति भारी ।
गिरिवर-धर की या छवि ऊपर, 'परमानद' बलिहारी ॥७॥



जहाँ-तहाँ बोलत मोर सुहाए ।
सावन रमन भवन वृंदाबन, घोर–घोर घन आए ।
नैन्ही–नैन्ही बूंदन बरषन लागे, ब्रज मडल पै छाए ॥
'नंददास' प्रभु संग सखा लिऐं, कुंजन मुरली बजाए ॥८॥

(राग मलार)

आज कछु कुंजन मे बरषा सी ।
दल बादर मे देखि सखी री, चमकत है चपला सी ॥
नैन्ही-नन्ही बूँदन बरषन लागी, पवन चलत सुख-रासी ।
मद-मद गरजन सुनियत है, नाँचत मोर कला सी ॥
इंद्र-धनुष बग-पंगति देखियत, भूली मृग-माला सी ।
चद-बधू छवि छाय रही है, गिरि पै स्याम घटा सी ॥
उमँगत है, कछु हँसि-कपत है, बोलत है कोकिला सी ।
'ब्यासदास' चातक की रटना, रस पीवत भई प्यासी ॥९॥

*

देखो माई, नई बरषा रितु आई ।
उमँगि घटा चहुँ दिसि ते जुरि-जुरि, बिजुरी-चमक सुहाई ॥
दादुर-मोर-पपैया बोलत, कोयल सब्द सुहाई ।
निसि-दिन रहत सदा प्रीतम सँग, निरखत नैन अघाई ॥
धन जमुना, धन पुलिन मनोहर, वायु बहत सुखदाई ।
'सूरदास' प्रभु की छवि ऊपर, नैनन नीर बहाई ॥१०॥

*

वर्षा-विहार

(राग मलार)

कदंब तर ठाडे है पिय-प्यारी ।
मोहन के सिर मुकुट बिराजत, इत लहरिया की सारी ॥
मंद-मंद बरषत चहुँ दिसि ते, चमकत बिज्जु-छटा री ।
मुरली बजावत श्री नँदनंदन, गावत राग मल्हारी ॥
लेत तान हरि के संग राधा, रंग होत अति भारी ।
'श्री विट्ठल गिरिधर' को रिझवत, श्री वृषभान-दुलारी ॥११॥

*

नयौ नेह, नयौ मेह, नये रसमाते दोउ, नवल कान्ह वृषभान-किसोरी ।
नवल पीतांबर, नवल चूनरी, नई-नई बूँदन भीजत गोरी ॥
नव वृंदाबन हरित मनोहर, चातक बोलत मोरा-मोरी ।
नव मुरली जुलाद, मल्हार राग नई, गत स्रवन सुनत आए घन घोरी ॥
नव भूषन, नव मुकुट बिराजत, नई-नई उरप लेत थोरी-थोरी ।
'हित हरिवंस' असीस देत मुख, चिरजीयौ भूतल ये जोरी ॥१२॥

(राग मलार)

कुंज-महल के आँगन मध्य, पीय-प्यारी—
बाँह जोरि, फिरत रंग सो रँगमगे।
अरुन बसन तन, मातिन की माला गरै,
चौहटे सरीर, चीर नीर सो सगबगे॥
छूटे बार भीजन लागे ललित कपोलन सो,
कुंडल किरन नग, भूषन झगमगे।
'नागरीदास' घन बरषत पानी, तामे—
रूप के जहाज मानो डोलत डगमगे। १३॥

★

गरजि-गरजि रिमझिम-रिमझिम बूँदन लाग्यौ बरषन घन।
प्रीतम-प्यारी राजै रग महल, बोलत चातक-मोर,
दामिनी दमक, आवै झूम-झूम बादर अवनी परसन॥
तैसौई सोहै हरियारौ सावन मनभावन,
इंद्र-बधू ठौर-ठौर आनंद उपजावन।
पिय बिहारी प्रिया सँग गावत राग मल्हार,
ललित लता लागीं सुनसुन सरसावन॥१४॥

★

डरत नहिं घन सो रति-रस-माते।
हार्‌यौ बरसि गरजि बहु भाँतिन, टरै न बीर तहाँ ते॥
गिरिवर अटा सुहावन लागत, बन दरसात जहाँ ते।
तहाँई जुगल लपटि रस सोए, नींद भरे अलसाते॥
रस-भीने, आलस सो भीने, भीने जल बरसाते।
औरहु गाढ अलिगन करिकै, सोए सुखद सुहातें॥
भोर भयौ नहि गिनत, सखीगन लखिकै कछु सकुचाते।
'हरीचंद' घन-दामिनि हारी, जीत जुगल इतराते॥१५॥

★

सखी री, बूँद अचानक लागी।
सोवत हुती मदनमद-माती, घन गरज्यौ तब जागी॥
दादुर-मोर-पपैया बोलै, कोयल सब्द सुहागी।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सो, जाय मिली बड़ भागी॥१६॥

(राग मलार)

जब–जब दामिनि कोंवत, तब-तब भामिनि डरात, प्रीतम उर लावत ।
उनमद मेघ-घटा की धुनि सुन, आपन जगात, अरु पियही जगावत ॥
दादुर–मोर–पपीहा बोलत, मदमाती कोयल बन गावत ।
वृज–कुटीर 'व्यास' के प्रभु सँग, श्री राधा रस पावत ॥१७॥

*

घूम–घूम घटा आईं, झूम–झूम लता रही,
भूमि हरियारी लागै सुभग सुहाई ।
तहाँ बैठे पीय-प्यारी, भूषन छवि न्यारी-न्यारी,
मुख की उजियारी मानो चाँदनी सी छाई ॥
तनन–तनन तान लेत, प्यारी कर–ताल देत,
गावत मल्हार राग, अति मनभाई ।
'श्री विट्ठल गिरिवर-धारी' लाल, लखि मोही ब्रजबाल,
रीझ–रीझ रहे दोउ कंठ लपटाई ॥१८॥

*

गहर–गहर गाजै, बदरा-समूह साजै, छहर-छहर मेह बरसै सुघरिया ।
कहर-कहर करे पवन अरु पानी अति, महर–महर करे भूतल महरिया ॥
'बालकृष्ण' ये सुख देखिवे कूँ गावत, मल्हार गहै कदम की डरिया ।
फहर-फहर करै प्यारे कौ पीतांबर, लहर-लहर करै प्यारी कौ लहरिया ।१९।

*

आए माई वरषा के अगवानी ।
दादुर–मोर–पपैया बोले, कुंजन बग–पाँति उड़ानी ॥
घन की गरज सुनि सुधि न रही कछु, बादल देख डरानी ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवरधन–धर लाल भए सुखदानी ॥२०॥

*

स्यामहि देखि नाँचत मुदित मोर ।
ता ऊपर आनद उमँग भर, सुनत मुरलि कल घोर ॥
चहुँ दिसि तें कोकिल कल कूजत, और दादुर की रोर ।
'गोविंद' प्रभु सखा सँग लिए, बिहरत बल–मोहन की जोर ॥२१॥

*

भीजत कुंजन ते दोऊ आवत ।
ज्यों–ज्यों बूँद परत चूनर पै, त्यों–त्यों हरि उर लावत ॥
अति गभीर झीने मेघन की, द्रुम तर छिन बिरमावत ।
जय 'श्रीभट्ट' रसिक रस-लंपट, हिल-मिल हिय सचुपावत ॥२२॥

(राग मलार)

देखो माई, भीजत गिरिवर–धारी ।
मोर मुकट, तन स्याम, पीत पट, घन–दामिनि उनहारी ॥
बडी–बडी बूँद परत धरनी पर, मानो जु महरी आरी ।
सावन मास, सघन तरुवर बन, कोकिल सब्द उचारी ॥
करत विचार, चलें किन सजनी, बरषत है जु फुहारी ।
'सूरदास' प्रभु बानिक ऊपर, तन–मन वारत डारी ॥२३॥

★

लाल माई, भीजत आए गेह ।
हाथ लकुटिया, कामर खोई, खूँदत कीच सनेह ॥
निसि अँधियारी, हाथ नहिं सूझत, पवन झकोरत मेह ।
'सूरदास' दामिनि के दमकै, लखी साँवरी देह ॥२४॥

★

लाल ! मेरी सुरँग चूनरी भीजै ।
लेहु बचाय आप पिय मोको, बूँद परै रंग छीजै ॥
बरषत मेह, रहै नहिं नैकहु, कहा उपाय अब कीजै
हम–तुम कुंज भवन मे चलि है, मान सबै सुख लीजै ॥
ऐसौ समयौ बहोर न ह्वै है, मेरौ कह्यौ पतीजै ।
'श्री विट्ठल गिरिधरन' छबीले, निरखि-निरखि मुख जीजै ॥२५॥

★

देखो माई, भीजत रस भरे दोऊ ।
नदनँदन वृषभान–नंदिनी, होड़ परी है जोऊ ॥
सुरँग चूनरी स्यामा जू की, भीजत है रस भारी ।
गिरिधर पाग–उपरना भीज्यौ, या छवि ऊपर वारी ॥
बातई बात होड भई भारी, ललितादिक समुझावै ।
दोउ मिलि झगरत, मानत नाँही, सखि सब बुंद बचावै ॥
तब मोहन हारे, सिर नायौ, हँसी सकल ब्रजनारी ।
'परमानंद' प्रभु यह विधि क्रीड़त, या सुख की बलिहारी ॥२६॥

★

भीजत कब देखौ इन नैना
स्यामा जू की सुरँग चूनरी, मोहन कौ उपरैना ॥
जुगल किसोर कंज तर ठाडे, जतन कियौ कछु मैं ना ।
उमँगि घटा चहुँ दिसि ते 'श्रीभट', जुरि आई जल-सैना ॥२७॥

(राग मलार)

ये रितु रूसन की नहि प्यारी ।
देखु न, छाय रहे घन झुकि-झुकि, भूमि छई हरियारी ॥
सीरी पवन चलत गरुई है, काम बढ़ावन-हारी ।
बन-उपबन सब भए सुहावन, औरहि छवि कछु धारी ॥
फूली जुही, मालती महँकी, सुनि कोकिल किलकारी ।
लहकि-लहकि लपटी सब बेली, प्रीतम-गल भुज डारी ॥
मगन भए जड जीव सबै जब, तब तू रहति क्यो न्यारी ।
'हरीचद' गर लगु प्रीतम के, गाढ़े भुज भरि नारी ॥२८॥

*

अनत जाइ बरसत, इत गरजत बे काज ।
तुम रस-लोभी मीत स्वारथ के, सुनहु पिया ब्रजराज ॥
दामिनि सी कामिनि अनेक लिएँ, करत फिरत हो राज ।
'हरिचंद' निज प्रेम--पपोहन, तरसावत महाराज ॥२९॥

*

(राग भैरव)

प्रातकाल ब्रज-बाल पनियाँ भरनी चली,
गोरे-गोरे तन सोहै कसुंभी कौ चदरा ।
ताही समै घन आए, घेरि-घेरि नभ छाए,
दामिनि-दमक देखि होत जिय कदरा ॥
बोलत चातक-मोर, सीतल चलै झकोर,
जमुना उमाडि चली, बरसत अदरा ।
'हरीचद' बलिहारी, उठि बैठो गिरिधारी,
सोभा तौ निहारो चलि, कैसे छाए बदरा ॥३०॥

*

(राग केदारौ)

तैसी ये पावस ऋतु आई, तामे झूलत हिंडोरे पिय-प्यारी रस रग-भरे ।
मद-मंद गरजत और दामिनी दमकत,
कोकिल गावत, दादुर सुर देत, नये-नये घन उनये ॥
पिय कौ पिछौरा-पाग, प्रिया की कसुंभी सारी,
मुकुता के आभूषन अग ठये ।
रसिक' प्रीतम की बानिक निरखत, नैनन के सब ताप गये ॥३१॥

झूला

(राग मलार)

हिंडोरे माई, कुसुमन भाँति बनाई।
नवलकिसोर मनोहर मूरति, ढिंग राधा सुखदाई॥
छाय रहे जित-तित ते बादर, बिच दामिनि अधिकाई।
दादुर-मोर-पपीहा बोले, नैन्हीं-नैन्हीं बूँद सुहाई॥
झोटा देत सकल ब्रज-सुंदरि, त्रिविध पवन सुखदाई।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरनलाल की, ये छवि बरनि न जाई॥३२।

*

झूमत अति आनंद भरे।
इत स्यामा, उन लाल लाड़िलौ, बैयाँ कंठ धरे॥
बोलत मोर-कोकिला-अलिकुल, गरजत है घन घोर।
गावत राग मल्हार भामिनी, दामिन सी झकझोर॥
नैन्हीं-नैन्हीं बूँद परत है ऊपर, मंद सुगंध समीर।
फूलन फूलि रह्यौ कानन सब, सुंदर जमुना-तीर॥
रीझ रहे सुर-नर-मुनि के गन, बरषत कुसुमन-माल।
'सूर' सकल सुख कौ येही सुख, निरखत मदनगोपाल॥३३॥

*

हिंडोरे माई झूलत गिरवरधारी।
सावन मास सरस घन बरसत, तैसीय भूमि हरियारी॥
फूले सुभग कुसुम जमुना-तट, पवन बहत सुखकारी।
निरखि-निरखि सुख देत झोटका, श्री वृषभान-दुलारी॥
दादुर-मोर-पपीहा बोलें, कोयल सब्द उच्चारी।
राग मल्हार अलापत भामिनि, पहरें कसुभी सारी॥
बाजत ताल-मृदंग-बाँसुरी, नाँचत दै कर-तारी।
मदनमोहन राधावर ऊपर, 'गोविंद' जन बलिहारी॥३४॥

*

झूलत नवल किसोर-किसोरी।
उत ब्रजभूषन कुँवर रसिक वर, इत वृषभान-नंदिनी गोरी॥
नीलांबर-पीतांबर फरकत, उपमा घन-दामिनि छवि थोरी।
देखि-देखि फूलत ब्रज-सुंदरि, देत झुलाय गहें कर डोरी।
मुदित भई यों स्वर मिल गावत, किलकि-किलकि दै उरज-अँकोरी।
'परमानंद' प्रभु मिल सुख विलसत, इंद्रबधू सिर धुनत झकोरी॥३५॥

(राग मलार)

झूलत नागरि–नागर लाल ।
मंद-मंद सब सखी झुलावत, गावत गीत रसाल ॥
फरहरात पट नील-पीत की अचल [illegible] चाल ।
मनो परस्पर उमगि ध्यान छवि, प्रगट भए तिहि काल ॥
सलसलात अति पिय के सिर पै, लटकत बनी लाल ।
मनो मुकुट बरुहा बिरही भए, बोली बाक बेहाल ॥
मोतिन--माल प्रिया के उर की, पिय तुलसीदल--माल ।
मनो सुरसरी मिलि जमुना-तट, मानो बिहंग मराल ॥
साँवल--गौर परस्पर अति छवि, सोभा बिसद बिसाल ।
निरखि 'गदाधर' कुँवर-कुँवरि-छवि, मनो भयौ रस-जाल ॥३६॥

(कजली)

प्यारी झूलन पधारौ, झुकि आए बदरा ।
ओढ़ो सुरख चूनरि, तापै स्याम चदरा ॥
देख बिजुरी चमकै, बरसै अदरा ।
'हरीचंद' तुम बिन, पिय अति कदरा ॥३७॥

*

(दोहा)

नवल निलय नीरज महा, अंगन अंग रसाल ।
नवल हिंडोरे झूलही, आली री नव लाल ॥३८॥

(राग मलार)

आली री, झूलत है नव लाल नवल हिंडोरना ॥
नवल वृंदा विपिन अवनी, सहज सुखद रसाल ।
ललित लतिका लपटि रही, लहलहै तरु तमाल ॥
फूल--फल--दल विमल झलमल, बरन-बरन बिसाल ।
भयौ सुरभित सकल बन घन, मुदित मधुप रसाल ॥
नवल कुंज-निकुंज प्रति-प्रति रही अति छवि छाय ।
उमडि-उमड़ि सु घाट घट सो, घटा घुमड़ी आय ॥
बकनि-पाँति सु भाँति, दमकत दामिनी दरसाय ।
त्रिविध पवनहि गवन की, मनरमन लेत रमाय ॥
नवल निरमल नीर जमुना, बहत तरल तरंग ।
तहाँ कमल-कुल डहडहे, अग-अग रंग सुरंग ॥

जुग तटी नग जटि सुमन सो, अटी सौरभ संग ।
तीर-तीरन तरुन की, छवि भरी उदित उतंग ।।
नवल चातक-सुक-पिकन की, मधुर धुनि सुनि मद ।
कुहुक कै-कै केकि-केलिन, नृत्य करत सुछद ।।
बजन बाजन विविध आली, सुमिल चाली चद ।
तैसि रमकनि झमकि गति मे, बढत अति आनंद ।।
नवल नीरज-निलय आँगन, रच्यौ रग-हिंडोर ।
तहाँ झूलत फूलि-फूले, उभय नवल किसोर ।।
पुलकि प्रेमानंद मे, सुख बढ्यौ, नाहिन थोर ।
अंग-अंगनि सहचरी छवि भरी, लेत हिलोर ।।
अरुन बरन पाटबरन की, फबि रही फहरानि ।
चपल चख चितवन लसी, मन बसी मृदु मुसकानि ।।
नवल डाडी कर गहै दोउ, झूमि-झुकि रस लेत ।
मृदुल अंग मनोज मोहन, सुरत संग निकेत ।।
चंद्रिका सी चटक मंजुल, मुकट अति सुख देत ।
किरत कबरी कुसुम रंजन, गिरत गुलिक उपेत ।।
नवल केलि-कला कुतूहल, रमत रहसि उमाहि ।
रूख लिएँ दोउ रसिक सन्मुख, सुख न बरन्यौ जाहि ।।
सखि-सहेली-सहचरी छवि निरखि दृग न अघाहिं ।
हितू 'श्री हरिप्रिया' बिलमत, हुलसि हीयन माँहि ।।३९।।

*

वर्षा-रूपक

(राग मलार)

आज अति सोभित है नँदलाल ।
उत गरजत बादर चहुँ दिसि ते, इत मुरली सब्द रसाल ।।
उत राजत कोदंड इंद्र कौ, इत राजत बन-माल ।
उत सोभित दमकत दामिनि, इत पीत बसन गोपाल ।।
उत धुरवा, इत धातु बिचित्र किऐ, बरसत अमृत-धार ।
उत बग-पाँति उडत बादर मे, इत मुकुता फल-हार ।।
उत दादुर स्वर कोकिल कूजत, इत बजत किंकिनी-जाल ।
'गोविंद' प्रभु कौ बानिक निरखत, मोह रही व्रज-बाल ।।४०।।

(राग मलार)

देखो माई, सुंदरता कौ कंद ।
स्याम अंग घन घोरत मुरली, गाजत मंद ही मंद ॥
इंद्र धनुष बनमाल विराजत, गज-मुक्ताहल द्वंद ।
मानो बीच बनी बग-पंगति, केहरि-कामनि कंध ॥
मुकुट,स्याम कच, सिथिल बसन, मानो बादरन छायौ चंद ।
चमकत उर राधा सौदामिनि, चलत पवन दृढ छंद ॥
पीतांबर तन चित्र-विचित्रित अरुन काछिनी फंद ।
पुलकित प्रेम उमँगि-उमँगि मानो नौतन बरषानंद ॥
हित बरषत, फूलत वृंदाबन, तरलित तनय निकंद ।
'सूरजदास' रसिक ललितादिक, हित चातक सखि-वृंद ॥४१॥

★

सखी री, सावन दूल्है आयौ ।
चार मास कौ लग्न लिखायौ, बदरन अंबर छायौ ॥
बिजुरी चमकै, बगुला बराती, कोयल सब्द सुनायौ ।
दादुर-मोर-पपैया बोलें, इंद्र निसान बजायौ ॥
हरी-हरी भुइ पर इंद्र-बधू सी, रंग बिछौना बिछायौ ।
'सूरदास' प्रभु तिहारे मिलन को, सखियन मंगल गायौ ॥४२॥

★

आज छवि स्यामा-स्याम निहारें ॥
बरषत प्रेम लाय झर निसि-दिन, गरजत नेह नियारे ।
मुकुता बग-पंगति, दादुर-धुनि नूपुर-चलनि सुढारे ॥
केकी चित्र पपीहा काँची, त्रिवली चहति सुनारे ।
नाभि सरोवर भरत न उपटै, अंग पुलिक तृन बारे ॥
विकसत पद्म मद मुसकनि कों, निरखहिं नैन सुखारे ।
'रूपरसिक' सब जीवन जिय की, जिन ये रूप निहारे ॥४३॥

★

स्याम घन उमँगि-उमँगि इत आवै ।
क्रीट-मुकुट-कुंडल-पीतांबर, मनु दामिनि दरसावै ॥
मोतिन-माल लसत उर ऊपर, मनु बग-पंक्ति लखावै ।
मुरली-गरजि मनोहर धुनि सुनि, स्रवन मोर सचुपावै ॥
हम पर कृपा करी हरि मानो, नीर-नेह झर लावै ।
'रूप रसिक' ये सोभा निरखत, तन-मन नैन सिरावै ॥४४॥

वर्षा वियोग

(राग मलार)

देखि बदरिया सावन की ।
इकटक ह्वै ठाड़ी मग जोवत, मनमोहन के आवन की ।।
दामिनि दमक, घन गरजन लाग्यौ, मद-मंद बरषावन की ।
तैसैई पीउ-पीउ रटति पपीहा, विरहनि विरह जगावन की ।।
कोकिल-कूक परी स्रवनन मे, बग-पंगति दरसावन की ।
'श्री विट्ठल गिरिधरन' लाल बिन, तन की तपत बढावन की ।।४५।।

★

सखि, ये पावस की रितु आई ।
नैन्ही-नैन्ही बु दन बरषत रिमझिम, पवन चलत पुरवाई ।।
हरित भूमि पै अरुन देखियत, दामिनि अति दरसाई ।
तैसौई चातक रटत, स्रवन सुनि विकल होत अधिकाई ।।
अबई विचार सबै मिलि सजनी, ये निश्चै ठहराई ।
श्री विट्ठल गिरिधरन' लाल को, मिलैं कु ंज-बन जाई ।।४६।।

★

हरि बिनु बरसत आयौ पानी ।
चपला चमकि-चमकि डरपावत, मोहि अकेली जानी ।।
रात अँधेरी, हाथ न सूझै, मै बिरहिनि बिलखानी ।
'हरीचद' पिय बिनु, बरषा मे हाथ मीजि पछितानी ।।४७।।

★

सखी री, घन तौ गरजन लाग्यौ ।
बरषत मेह पवन-फूहिन सो, अपुने मद अनुराग्यौ ।।
बोलत मोर, पपीहा बोलत, नयौ विरह तन जाग्यौ ।
हम बिछुरी बठी भवनन मे, इहै रहति रस-पाग्यौ ।।
ये सुख मानत अपनी रितु सो, हमरौ हियरा दाग्यौ ।
'श्री विट्ठल गिरिधरन' बिन जानै, आवत इतही भाग्यौ ।।४८।।

★

निठुर पपैया बोल्यौ रतियाँ ।
हौ भेचक पर रही सेज पै, सुरत भई वै बतियाँ ।।
राग मल्हार कियौ काहू नें, देह जरति जिहि मतियाँ ।
'कृष्णदास' गिरिधरन मिलन की, नहि भूलत गुन-गतियाँ ।।४९।।

(राग मलार)

ए मा, कारी बदरिया बरसै।
तैसै पीउ-पीउ रटति पपीहा, सुनि-सुनि जियरा तरसै॥
तैसिय चलति पवन पुरवाई, लागत तन अति करसै।
तैसि बेलि लपटानी द्रुम तें, जानत देखि मोहि हरसै॥
'श्री विट्ठल 'गिरिधर' कौ रूप ये, कैसै नैनन दरसै।
ये औसर कैसेहु मिलिवे कौ प्रीतम अँग-अँग तरसै॥५०॥

*

दामिनि दमकत जोबन-माती।
गरजि-गरजि आवत इतही को, डोलत एती माती॥
आपु रहति घन के सँग लागी, पहिलैं उनई बिछुराती।
हम बिछुरी बैठी जु भवन मे, तिनको हू न सुहाती॥
याकौ तेज देखि मेरी सजनी, काँपत है मेरी छाती।
'श्री विट्ठल गिरिधरन' लाल तें, ये नहिं नैक सँकाती॥५१॥

*

बोले माई गोवरधन पै मुरवा।
तैसिय स्यामघन मुरलि बजाई, तैसेइ उठे झुक धुरवा॥
बड़ी-बडी बूँदन बरषन लाग्यौ, पवन चलत अति झुरवा।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलन को, निसि जागत भयौ भुरवा॥५२॥

*

ये रितु आई बरषन, पिय बिन हियरा धरकै।
घन की गरज अरु लरज मोरन की, सुनि-सुनि छतियाँ दरकै॥
कौन भाँति करूँ, कैसै-धीरज धरूँ, पिय-मूरति मेरे हियमे अरकै।
उनकी मिलन रही मेरे मन, रोम-रोम मे भरकै॥
तैसिय घटा अँधियारी, नैसिय रनकारी, तैसौई पपीहा पिउ-पिउ ररकै।
'श्री विट्ठल गिरिधरन' की विरहिनी, निसि-दिन ये विधि करकै॥५३॥

*

बदरिया! तू कत ब्रज पर घोरी।
असलन साल सलावन लागी, बिधिना लिख्यौ बिछोरी॥
रहो जु रहो, जाओ घर अपने, दुख पावत है किसोरी।
'परमानंद' प्रभु सो क्यो जीवै, जाकी बिछुरी जोरी॥५४॥

वर्षा–विनय

जय जग-जीवन जलद ! नवल-कुलहा-उलहावन ।
बिस्व वाटिका विमल बेलि-बन बारि बहावन ॥
जीवन दै बन, बनसपती मे जीवन लावन ।
गरु ग्रीषमपन-दरप दलन, मन मोद मनावन ॥
जय मनभावन, बिपत-नसावन, सुख सरसावन ।
सावन को जग ठेलि केलि जल चहुँ बरसावन ॥
जय घनस्याम ललाम प्रेम-रस उरहि दृढावन ।
फूल भरी बसुधा सिर सारी हरी उढ़ावन ॥
बाँधि मडलाकार पुरंदर कौ धनु पावन ।
तरजि दिखावन गरजि, लरजि मन भय उपजावन ॥
सनकावन गन पवन, जोति जुगनू चमकावन ।
ठनकावन घन सघन, दामिनी-दुति दमकावन ॥
पठई सदा धराधर धावन, कृषी जुतावन ।
घोर घमड सुनावन, बलकर अनल बुतावन ॥
निज सुखमा दरसावन, गावन मनहि लगावन ।
सीर समीर रसावन, अंग उमग जगावन ॥
तापन-सतत सतावन, कृषकन जीय जुरावन ।
अतुलित जोम जतावन, युवजन हीय चुरावन ॥
झर लावन, बुदबुदा उठावन, भुवि लरजावन ।
अगनित अमित अनूप कीट-कुल-बल सरजावन ॥
उमगावन सर-सरित, उमँग उल्लास गुँजावन ।
पपियन प्यास बुझावन, जग की आस पुजावन ॥
जयति ! नबेली अलबेली, झूला झुलवावन ।
मधुर मनोरजन कजरी-धुनि कलित सुनावन ॥
सोक-समूह भुलावन जय ! छिति-छटा सुहावन ।
बादर बलहि बुलावन, पावस परम सुहावन ॥
अद्भुत आभावंत अग अति अमल अखंडत ।
घुमड़ि-घुमड़ि घन घनौ, घूम घिरि घोर घमडत ॥
कारे कजरारे मतवारे धुरवा धावत ।
सुख सरसावत, हिय हरसावत, जल बरसावत ॥

यमुना ढरकि करारनि दै-दै ढका ढहावति ।
प्रेम-पगी रज-रँगी लखहु जनु झूमत आवति ॥
मेह थमत चुहकार चहचही करत चाव चित ।
फर फराय निज परन फिरत पच्छी गन प्रमुदित ॥
धोये धोये पात तरुन के हरसावत मन ।
नैक झकोरत डार झरत अनगिनत अम्बु-कन ॥
सुखद सुरीलौ गामन मे ललना गन गावन ।
भरि उछाह घर सो तिन आवन झूलन जावन ॥
पवन उडत उर के पट कों झटपटहि सँभारन ।
मंजुल लोल कलोलनि बालन विविध मल्हारन ॥
मन-मयूर को करसत, दरसत बरसत बादल ।
तरसत तरुनि नबेलिन बेलिनि फुरत नवल दल ॥
कमल--केतकी-जुही-कुटज केसर प्रिय प्रफुलित ।
कुसुमित कलित कदंब करत बन उपवन सुरभित ॥
कोयल करत किलोल,ललित रूखन चहुँ लखि-लखि ।
मंद-मद चलि मधुप पियत मकरंदहि चखि-चखि ॥
बरन-बरन के बादर सो कहुँ परति फुवार अति ।
भीनी-भीनी गध गहति, वर बहति पवन गति ॥
देखहु मनहि प्रसन्न ललित मृग छौननि आनन ।
डोलनि तिनकी कानन, करि ऊपर को कानन ॥
रज विहीन पतरी लतिकन को देखहु लहकन ।
घूँघट पट सो मुख निकारि चाहत जनु चहकन ॥
झरत द्रुमन सो सुमन सौरभित डारनि हलिहलि ।
मनहुँ देत बनथली तोहि स्वागत पुष्पांजलि ॥
निरखि चहूँ छवि पुंज लगत जनु यह मनभावन ।
कुंज-बिहारी कुंजन सो कढ़ि चाहत आवन ॥
यद्यपि कवियन गाई, पाई ताकी थाह न ।
मन ही मनहि समाई, आई नहि अवगाहन ॥
रह्यौ अछूतौ गुन गन हू सो, जब तव गुन धन ।
कहा हमारौ बूतौ, दखहु जासो गुनि मन ॥
तउ तव सोभा-सुखद, विसद-सुठि पद-मय दरपन ।
करत 'सत्यनारायन' जन तुम्हरे ही अरपन ॥५५॥

वर्षा-वर्णन

मल्लिकान मंजुल मलिंद मतवारे मिले,
मंद-मंद मारुत मुहीम मनसा की है।
कहै 'पद्माकर' त्यों नदन-नदीन नित,
नागरि नवेलिन की नजर नसा की है॥
दौरत दरेरौ देत दादुर सुदुंदे दीह,
दामिनी दमकत दिसान मे दसा की है।
बद्दलनि बुंदनि बिलोको बगुलान बाग,
बंगलान बेलिन बहार बरषा की है॥५३॥

*

बाटिका बिहंगन पै, बारिगा तरंगन पै,
वायु वेग गगन पै बसुधा बगार है।
बाँकी वेनु तानन पै, बंगला बितानन पै,
बेस औंध पानन पै, बीथिन बजार है॥
वृंदाबन-बेलिन पै, बनिता नवेलिन पै,
'ब्रजचद' केलिन पै, बंसीबट मार है।
बारि के कनाकन पै, बद्दलन बाँकन पै,
बिज्जुली बलाकन पै, बरषा बहार है॥५७॥

*

दामिनी दमंकन तें, झिल्ली की झमकन तें,
दादुर असकन तें, उमँगि उई परै।
बादर तें, बन ते, बहार बरही तें, बेस-
बेलिन तें, फूलन ते, फहरि फुही परै॥
जल की जलूस जेब, जोबन जमाजम तें,
जुगुनू जमक हरिया तें दुई परै।
पोहसी पहारन ते, पारावार पारन ते,
पौन तें नवीन रितु पावस चुई परै॥५८॥

*

हहरावत नील पयोदन तें, नभ मे घन घोर घटा घहरावत।
छहरावत बूँद झलाझल, दामिनि भामिन सी नभ मे लहरावत॥
छिटकावत चारु छटा छिति पै, वर दीप्ति दिगंतन मे बगरावत।
झमकावत रिम-झिम रिम-झिम कै, झुकि झूमत लूमत, पावस आवत॥५६॥

बोलत मयूर हम ऐहै ये पहारन मे,
दादुर कहत हम ऐहै खँदरान मे ।
चातक पुकारै पीउ-पीउ द्रुम-डारन मे,
झिल्ली झमकानी पिक प्रेम मदरान मे ॥
'ठाकुर' कहत ऐसी पावस प्रभा मे, दुख-
दैन बिरहीन, आजु आली गदरान मे ।
छम-छम-छम बाजै, छम-छम छेई-छेई,
थेई-थेई चंचला नँचत बदरान मे ॥६०॥

*

झूम-झूम चलत चहूँधा घन घूम-घूम,
लूम-लूम भूमि छ्वै-छ्वै धूम से दिखात है ।
तूल के से पहल, पहल पर उठे आवे,
महल—महल पर सहल सुहात है ॥
'ग्वाल कवि' भनत, परम तम सम के ते,
छम-छम-छम डारे बूँदें दिन-रात है ।
गरज गये हे एक, गरजन लागे देखो,
गरजत आवें एक, गरजत जात है ॥६१॥

*

दिसि-बिदिसनि ते उमडि मढ़ि लीन्हौ नभ,
छेड़ि दीनौ धुरवा जवासे जूथ झरिगे ।
डहडहे भए द्रुम रंचक हवा के गुन,
कहूँ-कहूँ मुरवा पुकारि मोद भरिगे ॥
रहि गये चातक जहाँ के तहाँ देखत ही,
'सोमनाथ' कहै बूँदा-बूँदी हू न करिगे ।
सोर भयौ घोर, चहुँ ओर महि मंडल मे,
आए घन, आए घन आइ कै उघरिगे ॥६२॥

*

सुनि कै धुनि चातक-मोरन की, चहुँ ओरन कोकिल-कूकन सो ।
अनुराग भरे बन-बागन मे, हरि रागत राग अचूकन सो ॥
'कवि देव' घटा उनई जु नई, बन-भूमि भई दल-दूबन सो ।
रँगराती हरी हहराती लता, झुकि जाती समीर के झूकन सो ॥६३॥

बीत गयौ ग्रीषम, बितीत भयौ ताप-दाप,
बार–बार सीतल समीर तरजै लगे ।
पथिक पधारे निज गेह मे सनेह भरे,
हरे–हरे पात चारे तरु लरजै लगे ॥
दमकि दिमाक तें दुरित दुति दामिनी की,
मुदित मयूर मन मौन बरजै लगे ।
घरी–घरी घेरि–घेरि घुमडि घमंड भरे,
घाघ से घनेरे घन घोर गरजै लगे ॥६४॥

*

कोकिल कदंबन की डार पै कुहूकै कल,
कुंजन में बौरन के पुंज दरसै लगे ।
बिसद बलाकन की पाँति भाँति-भाँति चारु,
चाहि चित चातक पियासे तरसै लगे ॥
मंजुल कलापिन की मडली भली है बनी,
सुखद सुसीतल समीर सरसै लगे ।
चारो ओर चपला चमाकै चख चोरि-चोरि,
मद–मद बारिद के वृंद बरसै लगे ॥६५॥

*

प्यारी आउ छात पै, निहारि नये कौतुक ये,
घन की छटा तें खाली नभ मे न ठौर है ।
टेढी, सूधी, गोल औ चखूँटी, बहु कौनवारी,
खाली, लदी, खुली, मुँदी, करे दौरादौर है ॥
'ग्वालकवि' कारी, धौरी, घुमरारी, घहरारी,
धुरवारी, बरसारी, झुकी तौरातौर है ।
ये आईं, वो आईं, ये गईं, वो गई,
और ये आईं, उठी आवत वे और है ॥६६॥

बहु बेग बढ़े गदले जल सो, तट रूखि उखारि गिरावती है ।
करि घोर कुलाहल व्याकुल ह्वै, पल कोर–करारन ढावती है ॥
मरजादहिं छाँड़ि चली कुलटा सम, विभ्रम भौर दिखावती है ।
इतराति उतावरी–बावरी सी, सरिता चढ़ि सिंधु को धावती है ॥६७॥

पावस के प्रथम पयोद की परत बूँद,
औरै ओप उमडि अकास छिति छ्वै रही ।
रंग भयौ बूढनि, अनूढनि अनंग भयौ,
अंग उठि आनँद तरंग दुख ध्वै रही ॥
सूहे साजि सुघर दुकूल सुख-फूलि-फूलि,
चौहरी अटा पै चढी चद-मुखी ज्वै रही ।
धूम सुखमा की, रूम-झूम अलि-पुंजन की,
अंबन की डार ते कदंबन पै ह्वै रही ॥६८॥

*

राजै रस मे री तैसी बरषा समै री चढी,
चंचला नँचै री, चकचौंधा कौंधा बारैं री ।
ब्रती ब्रत हारैं हिए, परत फुहारैं, कछू-
छोरैं, कछू धारैं, जलधर जल-धारैं री ॥
भनत 'कबिंद' कुंज भौन पौन सौरभ सो,
काके न कँपाइ प्रान परहथ पारैं री ।
काम के तुका से, फूल डोलि-डोलि डारैं, मन-
औरै किए डारैं, ए कदंबन की डारैं री ॥६९॥

*

छाई सुभ सुखमा सुहाई रितु पावस की,
पूरब मे पच्छिम मे उत्तर उदीची में ।
कहै 'रतनाकर' कदंब पुलके है बन,
लरजै लवंगलता ललित बगीची मे ॥
अवनि-अकास मे अपूरब मची है धूम,
भूमि से रहे है रुचि सुरस उलीची मे ।
हिरकि रही है इत मोर सों मयूरी, उत-
थिरकि रही है, बिज्जु बादर-दरीची मे ॥७०॥

बरसत घन, गरजत सघन, दामिनि दिपै अकास ।
तपति हरी, सफलौ करी, सब जीवन की आस ॥
सब जीवन की आस, पास नूतन तिन अनगन ।
सोर करत पिक-मोर, रटत चातक बिहंग गन ॥
गगन छिपे रवि-चंद, हरष 'सेनापति', सरसत ।
उमँगि चले नद-नदी, सलिल पूरन सर बरसत ॥७१॥

मान गढ घेरा होत, गरज अरेरा होत,
दादुर दरेरा होत, जेरा होत जाम कौ ।
पिक भटभेरा होत, धकपक हेरा होत,
गरब अरेरा होत, बेरा होत साम कौ ॥
पवन सरेरा होत, धनुष धरेरा होत,
बुंदन गरेरा होत, खेरा होत बाम कौ ।
बीजुरी उजेरा होत, कौंधा चकफेरा होत,
घनन कौ घेरा होत, डेरा होत काम कौ ॥७२॥

★

ग्रीषम बिताय ताय रंग, रग बरसा के,
बरसि–बरसि वारि सरस सोहाए है ।
'द्विज बलदेव' बल बागन बहार वर
बाजत है बाजने, विहंग बन गाये है ॥
विसद बसन्न, बक बिलग–बिलग व्योम,
बेलिन-बितान वनिता अतन ताये है ।
बिज्जुल बिपुल लखि, बरही बोलत बैन,
मैन के बिरादर, ये बादर ह्वै आये है ॥७३॥

★

घन घहरान लागे, अग सहरान लागे,
केकी कहरान लागे, बन के बिलासी जे ।
बोलि–बोलि दादुर दिरादर सो आठों याम,
ग्रीषम को दैन लागे बिरह-बिदा सी जे ॥
'ठाकुर' कहत देखो पावस प्रबल आयौ,
उडत दिखान लागे, बगुला उदासी जे ।
दावे से, दबे से, चहुँ ओरन छये से बीर,
बसि–बसि रहन लागे बदरा बिसासी जे ॥७४॥

★

पिक बोलत, डोलत मारुत है, लतिका द्रुम जानि नये बन ये ।
उलहे महि अकुर मंजु हरे, बगरे तहँ इंद्र–बधू गन ये ॥
अस पाय 'किसोर' समै रस मे, कस होइ न मैन मई मन ये ।
चित चैन चये, मन आन छये, अब देख नये उनए घन ये ॥७५॥

घहरि-घहरि घेरि-घेरि घोर घन आए,
छाए घर-घरन घुमौलै घने घूमि-घूमि ।
डारे जल धारें, जोर जमत जमाति जोरि,
करै ललकारें बार-बार व्योम जूमि-जूमि ॥
'गिरिधरदास' गिरिराज के सिखर सब,
चपल चहूँघा लै रहे है चारु चूमि-चूमि ।
झूलि-झूलि झहरि, झहरि-झरि झेलि-झेलि,
झपकि-झपकि झपि, झुकि-झुकि, झूमि-झूमि ॥७६॥

*

झंझा झकझोरन सो, धूकै चहुँ ओरन सों,
पावस-झकोरन सो, अमी सौ छन्यौ परै ।
तरुनाई तो‌रन सो, हिय की हिलोरन सो,
बिथा-सिंधु बोरन सो, तन हू हन्यौ परै ॥
बोलत मरोरन सो, दादुर पिक-सोरन सो,
हित 'मोतीराम कवि' कैसे कै भन्यौ परै ।
बादर की कोरन सो, जल की घँघोरन सो,
मोरन के सोरन सो, मैन उफन्यौ परै ॥७७॥

*

कूकै लगी कोकिलैं कदंबन पै रातो-दिन,
मोर-पिक सोर हू सुनात चहुँ पास है ।
मंद-मंद गरजि घनेरी घटा घूमि-घूमि,
बहत समीर धीर संयुत सुबास है ॥
जित-तित नारी-नर गावें, सुख पावें अति,
झूलत हिंडोरे लाल बाढ़त हुलास है ।
हिय तरसावन को, काम सरसावन को,
बुंद बरसावन को, सावन सुभास है ॥७८॥

तड़पै तड़िता चहुँ ओरन तें, छिति छाइ समीरन की लहरैं ।
मदमाते महा गिरि स्रृंगन पै, गन मंजु मयूरन के कहरैं ॥
तिनकी करनी बरनी न परै, सो गरूर-गुमानन सों गहरै ।
घन ये नभ मंडल तें छहरैं, घहरै कहुँ जाय, कहूँ ठहरै ॥७९॥

पौन के झकोरन कदंब झहरान लागे,
तुंग फहरान लागे, मेघ मंडलीन के ।
भनत 'कविंद' धरा सारन भरन लागे,
कोस होन लागे बिकसित कंदलीन के ।।
तटज निवासिन को त्रास उपजन लागे,
सपुट खुलन लागे, कुटज-कलीन के ।
नाँच बरहीन के, अदीन स्वर झिल्लिन के,
दीन भए बदन मलीन बिरहीन के ।।८०।।

*

कूकै लगी कोयलै कदंबन पै बैठि फेरि,
धोए-धोए पात हिलि-हिलि सरसै लगे ।
बोलै लगे दादुर, मयूर लगे नाँचै फेरि,
देखिकै संयोगी जन हिय हरषै लगे ।।
हरी भई भूमि, सीरी पवन चलन लागी,
लखि 'हरिचंद' फेरि प्रान तरसै लगे ।
फेरि झूमि-झूमि बरषा की रितु आई घेरि,
बादर निगोरे झुकि-झुकि बरसै लगे ।।८१।।

*

मद मयी कोयल, मगन ह्वै करत कूकै,
जल मयी मही, पग परते न मग मे ।
बिज्जु नाँचै घन मे, बिरह हिय बीच नाँचै,
मीचु नाँचै ब्रज मे, मयूर नाँचै नग मे ।।
'श्रीपति सुकवि' कहै सावन मे आवन-
पथिक लागे, आनंद भयौ है अँग-अँग मे ।
देह छायौ मदन, अछेह तम छिति छायौ,
मेह छायौ गगन, सनेह छायौ जग म ।।८२।।

*

घेरि घटा घन कारी चहूँ दिसि, सोर कठोर रहे कर दादुर ।
बदि छटा छबि छाई हरी-भरी, भुम्मि लतानन की बिछी चादर ।।
आदर सो रहे कूक सिखी, निसि कारी अँध्यारी करै हिय कादर ।
ताल-तमालन जाल बिसाल, रसालन पै उनए घने बादर ।।८३।।

उमडि-उमडि घुमड़त आए घने घोर,
देत है निरादर नगारन की धूम को।
कहत 'किसोर' चारो ओरन तें जोरावरी,
जोरैं देत जुर बिजुरीन वारी घूम को॥
झाँझ कर झझा तैसी झुकि-झुकि झोरै देत,
झालरैं तमालन की झाप-झाप झूमि को।
जलज को जोरै देत, जलद को फोरै देत,
जलन को टोरै देत, बोरै देते भूमि को॥८४॥

*

हरित-हरित हर लेत मन बेली बन,
सघन घटान घन घिरि घहराने है।
बोले चहुँ ओर, कीर-कोकिल, पपीहा-मोर,
कुज-कुज गूजै अलि-पुंज मनमाने है॥
अंकुर बिछाय हित कीन्ही मरकत मनि,
तामै इद्र-बधू जाल लाल सब जाने है।
दिसि-दिसि देखि दुति चाह मनभावन की,
सावन की सब्जी मे सब जी भुलाने है॥८५॥

*

धावन घुँरारे धुरवान की निहारो पिय,
चातक-मयूर-पिक आनँद मगन भौ।
'श्रीपति' हो सावन सोहावन के आवन मे,
बिरह सुभट ते बियोगिनी कौ रन भौ॥
जल मयी धरनि, तिमिर मयी देह दीह,
घन मयी गगन, तड़ित मयी घन भौ।
छवि मयी बन भौ, बिलास मयी तन भौ,
सनेह मयी जन भौ, मदन मयी मन भौ॥८६॥

*

केकी की कूक, पिकी की पुकार, चहूँ दिसि दादुर दुंदि मचायौ।
भूमि हरी, चमकै चपला, अरु स्याम घटा जुरि अंबर छायौ॥
ऐसे में आवन होइ 'लछू', अबला लखि लाल संदेस पठायौ।
बावन कौ पगु भौ बिरहा, सो अहो मनभावन सावन आयौ॥८७॥

घहरात घमड केकी-झलकै, लहरात सुहात बने बन ये ।
उलहे महि अंकुर मंजु हरे, बगरे तहॉ इंद्र-बधू गन ये ॥
अस जानि 'किसोर' समै रस मे, कस हौ इनमे नमई मन ये ।
चित चैन चये, नभ आनि छये, अबै देखु नये उनए घन ये ॥८८॥

*

दुख दूर भयौ अरी ग्रीषम कौ, करिवे पिक-चातक गान लगे ।
चपला चमकै लगी चारो दिसा, निसि मे जुगुनू दरसान लगे ॥
'गिरिधारन' पावस आवत ही, बक-वृंद अकास उडान लगे ।
धुरवा सब ओर दिखान लगे, मुरवान के सोर सुनान लगे ॥८९॥

*

धूम से धुॅधारे, कहूॅ काजर से कारे, ये-
निपट बिकरारे, मोहिं लागत सघन के ।
'श्रीपति' सुहावन, सलिल बरसावन,
सरीर मे लगावन, बियोगिन तियन के ॥
दरजि-दरजि हिय, लरजि-लरजि करि,
अरजि-अरजि प म[illegible]न के
बरजि-बरजि अति, तरजि-तरजि मोपै,
गरजि-गरजि उठै बादर गगन के ॥९०॥

*

झिल्ली गन की झनकार बढी, मदमाते मयूर महा धुनि टेरत ।
देत दोहाई मनोज बहादुर, दादुर दुंदि दिसान दरेरत ॥
ऐसे मे कैसी भई है 'नरायन', नैक इतै न चितै हँसि हेरत ।
बिज्जु-छटा उछटै री पटा सम, देखि अटा तें घटा घन घेरत ॥९१॥

*

चहुॅ ओरन ज्योति जगावै 'किसोर', जगी प्रभा जीवन जूटी परै ।
तेहि तें झरि मानो अगार अनी, अवनी घनी इदु-बधूटी परै ॥
चहुँ नॉचै नटी सी, जराव जटी सी, प्रभा सो पटी सी, न खूटी परै ।
अरी एरी हटापटी बिज्जु छटा, छटी छूटी घटान तें टूटी परै ॥९२॥

*

छिन ही छिन दौर दुरै दरसै, छवि-पुंज 'किसोर' जमासे करै ।
अति दीन बिना पिय जानि जिए, बिरहीन हिए बरमासे करै ॥
अरु देखी भई कबहूॅ थिर ह्वै, घन को हरि की उपमा से करै ।
चहुॅघा तें महा तरपै बिजुरी, तम-तोम मे आजु तमासे करै ॥९३॥

वर्षा–विलास

सीरी–सीरी बही, चहुँ ओर तें बयारि बडी,
घटन बगारि बडौ आसरौ सौ दै रह्यौ ।
याही हेतु छोडिकै नदीन–नद एते दिन,
तेरी आस गहै, तेरी ओर तकतौ रह्यौ ॥
नीरद ! तू आपुनौ विचारि देखु नाम 'सभु'
कहा ऐसे औसर मे ऐसौ हठ लै रह्यौ ।
गरजि–गरजि हुलसायौ हियौ चातक कौ,
बुंदन के समय मे निमुंद मुख कै रह्यौ ॥९४॥

*

मेचक कबच साजि, बाहन बयारि बाजि,
गाढ़े दल गाज रहे दीरघ बदन के ।
'भूषन' भनत समसेर सोई दामिनी है,
हेतु नर कामिनी के मान के कदन के ॥
पैदर बलाका, धुरवान के पताका गहै,
घेरियत चहुँ ओर सूने ही सदन के ।
न करु निरादर, पिया सो मिलि सादर,
ए आए बीर बादर, बहादर मदन के ॥९५॥

*

कैसे चित चोरै, गुन पवन झकोरै, मोर–
अति बरजोरै, सोरै सुखमा बदन के ।
'द्विज बलदेव' वारि बानिक बसन बेस,
बीजुरी लै धाये हैं, बिरादर मदन के ॥
तू ही जस लीजै, दरसाय नेक दीजै,
अधरामृत को पीजै, मोद दाड़िम-रदन के ।
प्रानप्रिय आवन, अनंद अति छावन, ये–
आयौ बीर सावन, सोहावन सदन के ॥९६॥

*

'कवि बेनी' नई उनई है घटा, मुरवा बन बोलत कूकन री ।
छहर बिजुरी छिति मडल छ्वै, लहरै मन मन भभूकन री ॥
पहिरो चुनरी चुनिकै दुलही, सग लाल के झूलिये झूकन री ।
रितु पावस योही बितावती हो, मरि हौ फिरि बावरी हूकन री ॥९७॥

साजै सोर, बादर समाजै जोर चहूँ ओर,
बाजै रितुराज के बधाई के तुतुरवा ।
तैसी मन तीर सी बयार बहै सीरी-सीरी,
मद-मंद बोलै मदमाते बन मुरवा ॥
गवन की तुम्हैं परी, आजु इहिं समै हरी,
हरी-हरी भूमि भई दूब के अँकुरवा ।
बूँदै बरसावन, पिया के परसावन,
सनेह सरसावन, ये साँवन के धुरवा ॥६८॥

*

लाग्यौ ये सावन, सनेह सरसावन,
सलिल बरसावन, पटाधर ठटान को ।
गोरी गाम-गामन, लगी हैं गीत गावन,
हिंडोरौ भूम लावन, उठान छवै अटान को ॥
भनत 'कविंद' बिरही जनन सतावन सो,
देखो चमकावन री, बिज्जुल छटान को ।
प्यारे परौ पाँयन, न लीजै नाम जावन कौ,
देखो आजु आवन सुहावन घटान को ॥६९॥

*

आई रितु पावस, असाढ धराधर बाढ़ि,
ललित कदंबन लतान ललिताई है ।
कहत 'किसोर' जोर दाहन दरप जैसी,
तैसिऐ तड़प तडिता की अति छाई है ॥
छोड़ै को न मान, रति सो बगोड़ै को न आली,
उनई घटा की छिति छबि अति छाई है ।
मेघन की झुकन, झकोरन प्रभंजन की,
झिल्लिन की झनक, झलान की अवाई है ॥१००॥

*

आवते गाढ़ असाढ़ के बादर, मो तन में अति आगि लगावते ।
गावते चाव चढ़े पपिहा, जिन मोसो अनंग सो बैर बधावते ॥
धावते बारि भरे बदरा, 'कवि श्रीपति जू' हियरा डरपावते ।
पावते मोहिं ना जीवते प्रीतम, जो नहि पावस में घर आवते ॥१०१॥

प्यासे पपीहन के कुल पै, जल-जाँचना त्रास भरी करवावत ।
वारि के भार नये उनए, झुकि-भूमि छटा अलबेली दिखावत ॥
बोरि सुधा जल-सों बसुधा-तल, स्रौन मनोहर घोर सुनावत ।
प्यारी अहो, किमि बादल ए, गति मंद महादल बाँधि कै धावत ॥१०२॥

*

नाँचत कलापी जूह संग लै कलापिनि कौ,
झिल्लिन की भीर झनकार कै जमक रही ।
दादुर करत सोर, घोर चहुँ ओरन ते,
देख बक-पाँति बिरहीन को धमक रही ॥
'द्विज कहै' ए री ! कैसौ समय सुहावन है,
मोहन सो मिलि, लखि लतिका लमकि रही ।
छाइ-छाइ मेघ रहे चावन सो व्योम माँहि,
धाइ-धाइ चहुँ ओर चपला चमकि रही ॥१०३॥

*

बादर रेख उठी नभ मे, पुनि फैलि गई अति आतुरताई ।
स्याम तमाल ते भूमि भई, तम पुंज छये तिहि औसर आई ॥
घोर घटा घन धार लगी, अँधियार भयौ, बिजुरी अरराई ।
लाय हिए हरि को 'नंदराम', डराय उठी अबला छितिराई ॥१०४॥

*

भूली किधौ ह्यां की, पीर बाढ़ी है उहाँ की,
भरै नैन झरना की, सुधि आए उर वाकी है ।
चंचला चलाकी, करै नट की कला की,
तैसी दौर बदरा की, औ धुकार धुरवा की है ॥
है न कछु बाकी औधि, आसरौ निसा की,
तामे आई परै डाकी, ये झकोर पुरवा की है ।
टेर पपिहा की करै, सेल समता की डरै,
करै उर झाँकी, ये पुकार मुरवा की है ॥१०५॥

*

झूमि रहे घन घूम घने, तलि बोरत भूमि मनो चहुँघा घिरि ।
है अफसोस न, रोस न वासै, विन हौस लता रही रूखन सो भिरि ॥
'बेनी' पपीहन-मोरन हू हहरानन ढुंढ़ि करैं बहुतै फिरि ।
ज्यो डरपै, तड़पै बिजुरी, परै काहू बियोगिनि पै न कहूँ गिरि ॥१०६॥

छाय रह्यौ तम कारी घटान यों, आपनौ हाथ पसारि लखै को ।
अंग रचे मृग के मद सो, मनि-मरकत भूषन साजि अँकै को ॥
नील निचोलन की छबि छाजति, त्यों भ्रमरावली सोम गहै को ।
सावन की निसि साहस कै, निकसी मनभावन के मिलिबे को ॥१०७॥

*

तीर है न बीर कोऊ, करै न समीर धीर,
बाढौ स्रम नीर, मेरौ रह्यौ न उपाउ रे ।
पंखा है न पास, एक आस तेरे आवन की,
साबन की रैनि मोहिं मरत जियाउ रे ॥
'संगम' मैं खोलि राखी खिरकी तिहारे हेत,
होत हौं अचेत, मेरी तपनि बुझाउ रे ।
जानु जानि मानो कौन, कीजिऐ उताल गौन,
पौन मीत मेरे भौन, मंद-मद आउ रे ॥१०८॥

*

नई नोखी भई हौ कहा तुम हो, उमही रहती मति दीन्ही दई ।
दई कान्ह की बीरी न लेति भटू, तुम्है ये बतियाँ कहो को सिखई ॥
खई मे न बड़ौ भयौ कोऊ कहूँ, छिनही अति ही रिसि पूरि गई ।
गई भार मे नाँहीं, न नाँही करो, लखो कैसी घनेरी घटा उनई ॥१०९॥

*

अंबुज तटान, फैनि फूटत फटान जैसे,
धावत नटान, छबि छाई है छटान की ।
चातक रटान, नदी-नद उपटान, जल-
जंगल बटान, महा मारुत कटान की ॥
भीजत पटान, बुंद चुवत लटान 'पूषी',
तन लपटान, मानो मदन घटान की
पीव के तटान, ओढ़ै कुसुंभी पटान, अरु-
ठाढ़ी है अटान, लेत लहरै घटान की ॥११०॥

*

काहे को रूसत पावस मे, इन बातन तोहि न कोऊ सराहै ।
पौन लगै लहराती लता, तरु-कुंज कदंब मे केकी कराहै ॥
बोल सुहावने चातक के लगै, इंद्र-बधू गन धाई धरा है ।
बोलि पठाइ उतै उनको, उनए नये देखि नये बदरा है ॥१११॥

वर्षा-संयोग

घन घिरि आयौ, बन सघन तिमिर छायौ,
रैन कों डरेंगे लेखि देखि यो दृगन तें।
नंद जू कहत वृषभान-नंदिनी सों,
नंदनंदनहि घरै जाहु लै कै बेगि बन ते ।।
गुरु के बचन पाय, प्रेम की रचन भरे,
चले कुंज तीर तरु देखिकै बिपिन तें।
यमुना के कूल में, रहसि रस केलि मयी,
ऐसे राधा-माधौ बाधा हरहु मेरे मन तें ।।११२।।

*

घने घन घेरि-घेरि, उमडि-घुमडि आए,
ऐसौ तम छायौ, मानो भूमि परसत है।
चपला चमकि चहूँ ओर चारु चोरै चित्त,
तामे बक-पाँतिन के पुंज दरसत है ।।
इतै झरि लागी, उतै अनुरागी भए दोऊ,
कैसे हाव-भावन मे मैन सरसत है।
'सूरज सुकवि' आजु लखे पिय-प्यारी सग,
लाल बंगला मे लाल रंग बरसत है ।।११३।।

*

झूमि-झूमि आये घूमि घने घनस्याम आली,
कूकै काकपाली काम पाली बरसात है।
ऐसे समय कुज-भौन कीरत-किसोरी तौन,
सखिन समूह साथ सुख सरसात है ।।
कहा कहौ तोहि, ताहि देखि आई तैसे भटू,
कौतुक वलोकि 'हठी' हिय हरषात है।
यमुना के तीर, बहै सीतल समीर तहाँ,
बीर! बलबीर जू कौ बलि-बलि जात है ।।११४।।

*

राधा औ माधौ खड़े दोउ भीजत, वा झरि मे झपकै बन माँही ।
'बेनी' गये जुरि बातन मे, सिर पातन के छतना, गल बाँहीं ।।
पामरी प्यारी उढ़ावत,प्यारे को, प्यारौ पितंबर की करै छाँहीं ।
आपुस मे लहा छेह में छोह मे, काहू को भीजिबे की सुधि नाँहीं ।।११५।।

कंचन-अटा पै बैठी जोवत घटा है प्यारी,
बिज्जु की छटा सी सखी सेवत सिहाती है।
लीन्हे कर बीनै एकै गावती प्रवीनै 'हठी',
राग-रागनीन के प्रमान दिखराती है॥
राधा-मुख-चद की मरीचै ब्रजचद ए,
उमड कै प्रचड ह्वै कै ऐसी सरसाती है।
मंड खड मडल को, दाबि कै अखंडल को,
फोर चद-मडल को, छोर कढि जाती है॥११६॥

*

छोटे-छोटे कैसे तृन अंकुरित भूमि नए,
जहाँ-तहाँ फली इद्र-बधू बसुधान मे।
लहकि-लहकि सीरी डोलति बयारि, और-
बोलत मयूर माते ललित लतान मे॥
धुरवा धुकारै, पिक-दादुर पुकारै,
बक बाँधिकै कतारै, उड़ै कारे बदरान मे।
अस भुज डारै, खड़े सरयू किनारै,
'प्रेमसखी' वारि डारै, देखि पावस बितान मे॥११७॥

*

प्यारे ही के काज प्यारी हित काज सारै दुहुँ-
दुहुँन सिगारै, तन नीके चद मट सो।
यमुना के नीर तीर हँसि-हसि बातै करे,
मन अटकायौ कल कोकिला की रट सो॥
एते 'रघुराई' घन-घटा घहराय आई,
बरसन लाग्यौ नैन्ही बूंदन के ठट सो।
जौलो प्यारौ प्यारी को उढ़ायौ चहै पीत पट,
तौलौं प्यारी प्यारौ ढाँप लीन्हो नील पट सो॥११८॥

*

लेहु जू गेह कौ जैवौ कहा, इत आयौ है नेह सो मेह उनैहै।
हौ न तौ इत रैहौ कहाँ, पिय भीजत बूंदन कौन छपैहै॥
'शेखर' ऐसी कहो न तिया, छपिऐ छतियाँ मे भलौ रंग रैहै।
रग तिहारौ रहैगौ लला, पै हमारी तौ चूनरी कौ रंग जैहै॥११९॥

रस रग भरे, दोऊ उज्जल अटा पै खडे,
हरै-हरै हेरत सुहेत हिए पटि उठै ।
दमकि-दमकि जात दामिनी चहूँघा चाह,
चमकि-चमकि चूनरी मे अंग ठटि उठै ॥
कहै 'ऋषिनाथ' मोर-दादुर करत सोर,
जोह-जोह जमकि पपीहा पीउ रटि उठै ।
घुमडि-घुमडि घन घिरि-घिरि आवै मोद,
उमडि-उमडि दोऊ छतियाँ छपटि उठै ॥१२०॥

*

सावन के मास, मनभावन के संग प्यारी,
अटा पर ठाढी भई घटा अँधियारी मे ।
दामिनी के धोखै चकचौंधे दृग 'कविनाथ',
छबिन सो मुरि, दुरै पिय अकवारी मे ॥
कोटि रति वारौं, ऐसी राधा जू के रूप पर,
रंभा रंक कहा, संक सची के निहारी मै ।
पागि रही रस, जागि रही जोति लाजनि मे,
नेह भीजौ देह, मेह भीजौ स्वेत सारी मे ॥१२१॥

बादर पटान कारे सटित सटान जनु,
धावत नटानन ज्यो बिज्जु-सटकान की
अबर झुमटान, ज्यो लपटत भुजटान देय,
विजय-निसान बुद उदित कटान की ॥
भनै 'जगेश्वर' रितु पावस भट जानि यो,
चातक रटान कूक कोयल हटान की ।
नद के तटान, ओढै कुसुंभी पटान ठाढी,
देखत अटान चढ़ी, लहरै घटान की ॥१२२॥

*

भादो की भारी अँध्यारी निसा, झुकि बादर मंद फुही बरसावै ।
लाडिली आपनी ऊँची अटा पै, चढ़ी रस-रीति मलारहि गावै ॥
ता समय मोहन के दृग दूरि ते, आतुर रूप की भीख यो पावै ।
पौन मया करि घूँघट टारै, दया करि दामिनी दीप दिखावै ॥१२३॥

आए असाढ़ घटा लखि कै, चपला चमकै घन बीच समैहै ।
एक ही बार बड़े-बडे बुद, परै छिति पै छहरान मचैहै ॥
भीजत देखि उढ़ाय कै कामरि, लाय गरे हरि मोहि बचैहै ।
ह्वैहै अनद सबै ब्रज मे, जब गोकुलचंद जू गोकुल ऐहै ॥१२४॥

*

झर है, झहरान झकोरन है, दुरहै कहि दादुर दूंदन को ।
बरही करही मिलि सोर महा, भय नैक न दामिनि कूंदन को ॥
ब्रजराज बिचारत भीजैगी राधिका, कुजन कौनन मूँदन को ।
अपने कर तानत कामरी कान्ह, जितै भर जानत बूँदन को ॥१२५॥

*

ऐसी झरी बूँदन मे दूँदन उठायौ काम,
मूदै मुख प्यारी बनी गूदै न बहरि कै ।
कहै 'कवि सिवनाथ' झिल्ली गन गाजत है,
सावन मे बहै रस लहरी छहरि कै ॥
ऊन री सु कज, दुति दूनरी द्रगन बाढ़ी,
झून री कहति खौर दैन री गहरि कै ।
ऊनरी घटा मे गोरी तू न री अटा पै बैठ,
खून री करैगी, लाल चूनरी पहरि कै ॥१२६॥

*

गरजै घन, दौरि रहे लपिटाय, भुजा भरि कै सुख पागी रहै ।
'हरिचद जू' भीजि रहे हिय मे, मिलि पौन चलै मद जागी रहै ॥
नभ दामिनि के दमकै सतराइ, छिपी पिय-अग सुहागी रहै ।
बड़ भागिनि ओई अहै बरसात मे, जे पिय-कठ सो लागी रहै ॥१२७॥

*

ये सावन सोक नसावन है, मनभावन यामै न लाजै भरो ।
यमुना पै चलौ सु सबै मिलि कै, अरु गाय-बजाय के सोक हरौ ॥
इमि भाषत है 'हरिचंद' पिया, अहो लाड़िली ! देर न यामे करो ।
बलि झूलो-झुलाओ, झुको-उझको, ये पावै पतिव्रत तावै धरो ॥१२८॥

*

झर लाग्यौ झरी, उघरै न घरी, नदिआँ उमँगी जल-धारन सो ।
यह भूमि हरी, मन लेत हरी, धुरवा ि"कि जात बयारन सों ॥
लखि बादर, दादुर सोर करें, मिलि कूकत मोर ग्लारन सो ।
हँसि दोऊ मिले गर-बाँह गरे, झुकि झूमे कदंब की डारन सो ॥१२९॥

बहु फूले कदंबन कुंजन मे, अरु भावतौ पौन बहै नित मे ।
बरजै जनि कोऊ मयूरन को, गरनै घन आपने ही मत मे ॥
'सिवलाल' भयौ मन भायौ जितौ, अब और करोगी तितौ नित मे ।
वर साइत मे घर आय गये, बडे भाग भट्ट बरसाइत मे ॥१३०॥

*

गरजै चहूँघा घन घोर, मोर सोर करै,
लरजै लतान वृंद सोभा सरसाई है ।
दामिनी दमाकै, जुरि जुगुनू चमाकै, कहूँ-
कैलिया रमाकै भरी कूकै सुखदाई है ॥
मन अनुरागै, प्रीति रीति उर लागै लखि,
इंद्रभट्टू रागै, बन-बागै छहराई है ।
अरज बिहारी पै हमारी 'भुवनेस' एती,
मिलन के जोग बेश पावस रितु आई है ॥१३१॥

*

बक बीर बधू जुगुनू सुर चाप, सबै सुख के सरसावन मे ।
मुरवा गन, दादुर-चातक-चोर, 'गुलाब' कहै हित जावन मे ॥
वर बापि तड़ागन बान नदी, नद नारन के जल आवन मे ।
घर आवत ही मनभावन के, घन सावन के मनभावन मे ॥१३२॥

*

कूंजन दै कल कोकिल कूक, पपैयन सोर मचावन दै री ।
गावन दै मुरवान अरी, धुरवा नभ मडल छावन दै री ॥
आलिन के गन को बरजै, जिन पावस गीत सुनावन दै री ।
अंक मे जो मनभावन तौ, घन सावन के बरसावन दै री ॥१३३॥

*

काजर से कारे, घन साजिकै सिधारे अब,
देत ये नगारे बरवारे जल धारे है ।
आनँद मचारे, 'बलदेव' हितकारे,
उमँगात नद-नारे, ह्वै किनारे समथारे है ॥
मदन प्रचारे, सुनि झिल्ली झनकारे,
दिन आप हू गारे, नभ तारे ना निहारे है ।
चोर पटवारे, नख अग्र गिरिधारे,
बनमाल उर डारे, ते हमारे रखवारे है ॥१३४॥

कालिंदी कूल कदंब की डारन, कूजत केकिन के गन ऐखै ।
तुंग तरंगित त्यो जमुना तहँ, ता महँ सोर करै बहु भेखै ॥
मदहि मंद सु गाजत हैं घन, राजत बूँद महीन अलेखै ।
'बल्लभ' राधिका-स्याम तहाँ, सुभ स्याम घटान अटा चढि देखै ॥१३५॥

*

घहरारी घने घन घोर घटा, कर सोर उठे बहु मोर अटा ।
घनस्यामै मिली तिय ताही समै, चली दामिनी सी फहरै दुपटा ॥
वाके नैन घने-घने घालै कटाच्छ, भनै 'भुवनेस' सु कौन छटा ।
जनु विस्व फतै करिवे के हितैं, फरकावै मनोभव भूप पटा ॥१३६॥

*

रितु आई सोहाई नई बरषा, बड़ौ मोद मयूरन के हिय कौ ।
हरियाई चहुँ दिसि फैलि रही, अनुराग बढावत है जिय कौ ॥
चढि ऊँचे अटान बिलोकै घटा, कर कंज सो हाथ गहै पिय कौ ।
लखि कंज-कलीन तडागन मे, मुख मंजु मलीन भयौ तिय कौ ॥१३७॥

*

वर्षा-झूलन

होय रही हरी-हरी ब्रज की सकल भूमि,
फूलन के भार झूमि रही द्रुम-डारी है ।
लहरै कलिंद-नंदिनी की नीकी लसै, नभ-
उमडि-घुमडि रही घटा धुरवारी है ॥
प्यारी मनमोहन जू झूलत हिंडोरे जहाँ,
सुरभि समीर धीर चलै सुखकारी है ।
प्रेम बस भीजत फिरत फेर बरषा मे,
बन मे बिहार करै राधिका-बिहारी है ॥१३८॥

*

हरी-हरी भूमि मे हरित तरु झूमि रहे,
हरी-हरी बल्ली बनी बिविध बिधान की ।
कहै 'रतनाकर' त्यो हरित हिंडोरा परयौ,
तापै परी आभा हरी हरित बितान की ॥
ह्वै है हिय हरित, हरै ही चलि हेरो हरि,
तीज हरियाली की प्रभाली सुभ मान की ।
एती हरियाली मे निराली छबि छाइ रही,
बसन गुलाली साजै लाली वृषभान की ॥१३९॥

तीज नीके रोज, सब सजनी गई री उहाँ,
भूलन हिंडोरे ब्रजबाला बीर वर-वर ।
'तोषनिधि' तोलौ उठि धुरवा धरा लौ घूमि,
धाराधर धरनि बरसि परौ धर-धर ।।
मोहि तौ कन्हाई करि कामरी बचाय लीनी,
और सब भीजी, तिन तन होय थर-थर ।
ऐसौ बदनाम यहि गाँउ मौ गरीबिनी कौ,
देखि सूखी चूनरी चवाउ फैलौ घर-घर ।।१४०।।

*

तीर पर तरनि-तनूजा के तमाल तरें,
तीज की तयारी तकि आई तकियान मे ।
कहै 'पद्माकर' सो उमँग उमंगि उठी,
मेहदी सुरग की तरंग नखियान मे ।।
प्रेम-रग-बोरी गोरी नवल किसोरी तहाँ,
भूलत हिंडोरे यो सुहाई सखियान मे ।
काम भूलै उर मे, उरोजन मे दाम भूलै,
स्याम भूलै प्यारी की अन्यारी अँखियान मे ।।१४१।।

*

सावन की तीजै, पिया भीजै वारि-बुंदन सो,
अंग-अंग ओढनी सुरग रंग बोरे की ।
गावत मलारै, धुरवान की धुकारै कहूँ,
भिल्ली भनकारै, भन्न करत भकोरे री ।।
करत बिहार दोऊ अति ही उदार भरे,
'बीर' कहै मंद सोभा पौन के भकोरे की ।
भमक भरी की, त्यो चमक चारु चपला की,
घमक घटा की, तापै रमक हिंडोरे की ।।१४२।।

*

सुचि सावनी तीज, सुहावनी बिज्जु, घने घन हू घहरान लगे ।
बन कै बन 'गोविद' चातक-मोर, मलारन के सुरबान लगे ।।
दुवौ भूलै, भुकै, भमकै, रमकै, हियरा अतिसै उमँगान लगे ।
पट प्रेम-पगे फहरान लगे, नथ के मुकता थहरान लगे ।।१४३।।

दोऊ मखतूल झूल, झूलैं मखतूल-झूला,
　　लेत सुख-मूल, रहैं 'तोप' भरि बरसात ।
छूटि-छूटि अलकैं कपोलन पै छहरात,
　　फहरात अंचल, उरोज ह्वै उघर जात ॥
रहो-रहो, नाहीं-नाहीं, अब ना झुलाओ लाल,
　　बवा की सौं, मेरी ये जुगल जानु थहरात ।
ज्यो ही ज्यों मचत लचकत लचकीलौ लक,
　　संकन मंयकमुखी अकन लपटि जात ॥१४४॥

*

बरसै सघन घन, सावन सुहाई बूँदैं,
　　कुंज मे पवन चलै लहर झकोरे मे ।
कुहकै पपीहा-मोर, दादुर करत सोर,
　　गंजत भँवर, बिज्जु नॅचत सु जोरे मे ॥
'आनँद' कहत सखी चहुँघा चॅवर ढारै,
　　हाथन ललाई मानो लाल रंग बोरे मे ।
लहकि ढरकि जाँय अलकैं कपोलन पै,
　　लचकि-लचकि झूलै मचकि हिंडोरे मे ॥१४५॥

*

रहसि-रहसि, हँसि-हँसि कै हिंडोरे चढी,
　　लेत खरी पैंगै छबि छाजै उकसन मे ।
उडत दुकूल, उघरत भुज-मूल, बढी-
　　सुखमा अतूल, केस-फूलन खसन मे ॥
ओझल ह्वै देखि-देखि भए अनिमेष स्याम,
　　रीझत बिसूरि स्रम-सीकर लसन मे ।
ज्यो-ज्यो लचि-लचि लंक लचकत भाँवती कौ,
　　त्यो-त्यो पिय प्यारौ गहै आँगुरी दसन मे ॥१४६॥

*

झूलत प्रेम सो हेम की डार सी, बार सी पातरी है कटि खीनी ।
दै मचकी लचकावत अगन, रंग मचावत नारि नवीनी ॥
पीय झुलाय दियौ है अचानक, प्यारी महाछबि सो भय भीनी ।
लाल हिंडोरन गोद भरी तिय, मोद भरी अँखियाँ भरि लीनी ॥१४७॥

झूलत हिंडोरे दुहूँ बोरे रस रंग, जिन्है-
जोहत अनंग-रति-सोभा कटि-कटि जात ।
मंजु मचकी सो उचकत कुच-कोरन पै,
ललकि लुभाइ रसिया की डीठि डटि जात ॥
देखत बनै ही, कछु कहत बनै न नैक,
बाल अलबेली जब लाज सो सिमटि जात ।
हट जात घूँघट, लटक लाँबी लट जात,
फट जात कचुकी, लचकि लौनी कटि जात ॥१४८॥

*

फुहू-फुहू बुंद झरै 'बीर' वारि-वाहन तें,
कुहू-कुहू धुनि होत, कीर-कोकिलान की ।
ताही समै स्यामा-स्याम झूलत हिंडोरे बैठ,
वारो छबि कोटिन मैं रति-पंचबान की ॥
कुडल-लटक सोहै, भृकुटी-मटक जोहै,
अटक चटक पट पीत फहरान की ।
झूलन समै की सुधि भूलत न, हूलत री,
उझकन, झुकन, झकोरन भुजान की ॥१४९॥

*

कूकन मयूरन की, धुरवा के धूकन की,
झूकन समीरन की, खसन प्रसून की ।
दुमकन दामिनी की, भामिनी की रमकन,
झमकन नेह की, करोर रति हू न की ॥
'नाथ' की सौ मानन की, झोकै चढि जानन की,
हँसि-हँसि, झुकि-झुकि, तानन दुहून की ।
उडन दुकूलन की, छबि भुज-मूलन की,
काम मन-हूलन की, झूलन दुहून की ॥१५०॥

*

झूलत दंपति नेह रँगे, रस-पुंज निकुंजन हौ बलिहारी ।
रग भरे पिय दीन्ही सखी, कल झूल झकोरिकै रंचक भारी ॥
ढीली भई मोतियान की डोर, सुकोर ह्वै हेरयौ लला-तन प्यारी ।
आली री, लाज भरी बिच घूँघट, कैसी लसी अँखियाँ अनियारी ॥१५१॥

चहुँ दिसि छाई हरियाई सुखदाई जहाँ,
सोहत सुहाई तापै फबनि फुहीन की ।
कहै 'रतनाकर' ब्रजगना उमग भरी,
झूलत हिंडोरे झोरै सुखमा सुरीन की ।।
भाषै चित-चाव कौन, भौन-सुख-भोगिनि कौ,
डहकि डगाए देत मनसा मुनीन की ।
ऊरुन की हचक, सु उचक उरोजन की,
लक की लचक, औ मचक मचकीन की ।।१५२।।

★

घाँघरे की घुमडि, उमड़ि चारु चूनरी की,
पाँयन मलूक मखमल बरजोरे की ।
भृकुटी बिकट, छूटी अलकै कपोलन पै,
बडी-बडी आँखिन मे छबि लाल डोरे की ।।
तरवन तरल जडाऊ जरबीले जोर,
वेद-कन ललित बलित मुख मोरे की ।
भूलत न भामिनी की गावन गुमान भरी,
सावन मे 'श्रीपति' मँचावन हिंडोरे की ।।१५३।।

★

राग भरी भीजी सी हिडोरे झूलै सूहे पट,
प्यारी मुख-चद पै चकोर झगरत है ।
'भूधर सुकवि' बीर कठ माँहि मनि-माल,
बाजूबंद किंकिनी-कनक नग रत है ।।
गहै कर डोरी-जोति जोति जीति लालन सो,
सौरभ मगन भौर-जाल डगरत है ।
कहूँ फूले फूल, कहूँ उडत दुकूल, कहूँ—
उर उघरत, कहूँ बार बगरत है ।।१५४।।

★

घेरि घटान तें आयौ उनै, धुरवान की डोरन लागीं कगारन ।
मोरन के गन सोर करै, चहुँ ओर तें चातक लागे चिकारन ।।
ऐसे समै छवि देखिवे को 'द्विज', तू हू चलै किन दौरि अगारन ।
झूलत हेम-हिंडोरन मे, दोऊ कालिंदी-कूल कदंब की डारन ।।१५५।।

जाके मुख चंद सोहै लागत है मंद चंद,
कुंदन ते सुदर सलौनो जासु गात है।
और छवि छाय रही अगन मे अंगना के,
अंचल ते उघरि उरोज दरसात है॥
कहै 'हनुमान' प्रेम पूरन उघरि परयौ,
छपत न कैसे हू छपाऐ सरसात है।
ज्यो-ज्यो मचकीन को मचाय बाल भूलत है,
त्यो त्यो खरौ भूमै लाल लफि-लफि जात है ॥१५३॥

★

अबली अलीन की अनोखी नवला लै संग,
चोखी रति हू ते राजै आनँद अथोरे पै।
साजै बिन दूषन के भूषन को अगन मे,
और ही अनूप आब आई मुख गोरे पै॥
कहै 'हनुमान' घरहाई के सँकोचन ते,
हेरत न लालै भई सोचन करोरे पै।
हूलै हिय सौति के अतूलै छवि धारि, भूलै–
मन सो पिया की गोद, तन सो हिडोरे पै ॥१५७॥

★

पकरै उरोजन को सकुच नवाय ग्रीव,
नाँही–नाँही कहि–कहि बातै अरती है जे।
हरी–हरी डारन मे परे जहाँ डोरा, तिन्है—
देखि भूलिबे को, अनखाय लरती है जे॥
कहै 'हनुमान' तेई धन्य सुदरीन माँहि,
पहरि लाल सारी हिऐ मोद भरती है जे।
सावन की हेरि घटा बैठी रंग–रावटी मे,
भावन की गोद मे कलोल करती है जे॥१५८॥

★

आई सोहाई नई बरषा रितु, रीझि हमारी कही पिय कीजिऐ।
जैसे ही रग लसे चुनरी पिय, तैसी ही पाग तुहूँ रँग लीजिऐ।
भूला पै भूलहि एक ही संग, 'मुबारक' एतौ कह्यौ पुनि कीजिऐ।
जैसे लसै घनस्याम सो दामिनि, तैसै तुम्हारे हिऐ लगि भीजिऐ।१५९॥

यमुना के तीर, भीर भई है हिंडोरन पै,
दूर ही ते गहगही गति दरसत है।
गान-धुनि मद-मंद आवत है कानन मे,
बीच-बीच बंसी-धुनि प्रान परसत है॥
देखि कारे द्रुमन-लतान मॉझ दामिनी सी,
पट फहरात पीत, सोभा सरसत है।
हा-हा, चलि नागर पै, हिय तरसत आली,
आजु वा कदंब तरे रंग बरसत है॥१६०॥

*

हेरि कै बहार बरषा की बलि बार-बार,
आई बन-बाग बीच मदन मरोरें पै।
आस-पास गावैं मंजु घोष सी सहेली सबै,
मंजुल मलार मन मोहै बरजोरे पै॥
कहै 'हनुमान' ता समान मे सची है कहाँ,
जाके रूप सोहै, रहै रति हू निहोरे पै।
हीरन जटित चारु, चॉदी कौ तखत डारि,
बैठी बाल झूलत है, हेम के हिंडोरे पै॥१६१॥

*

करत अकाम वारि-बाहक विलास तैसै,
बुंद परै बसन कसुंभी रंग बोरे पै।
छन छबि छटा तैसी, घटा घन घहराय,
हीरन के भूषन त्यो सोहै तन गोरे पै॥
'गिरिधरदास' लिऐं गिरिधर लाल संग,
झुकत, झपति जात, थोरे हू झकोरे पै।
हूलत है सूल, सुख सौति उनमूलत है,
फूलत है, झूलत है, हेम के हिंडोरे पै॥१६२॥

*

सघन घटान छबि जोति की छटान बीच,
पिक की रटान जोति जीगन जुई परै।
हार हिए हरित, नदीन-नद भरित,
झरीन-झर झरित, सो धरनि धुई परै॥

ऐसे मे किसोरी गोरी झूलत हिंडोरे, झुकि-
झूकनि झकोरे फैल फूलन फुही परै ।
कीजिऐ दरस नँद-नंद ब्रजचंद प्यारे,
आजु मुख चंद पर चूनरि चुई परै ॥१६३॥

*

नाजुक नवेली अलबेली लै सहेली संग,
आई वर बाग बीच अधिक निहोरे पै ।
हरी-हरी क्यारिन मे डोलै गलबाही दिऐ,
बोलै बैन मधुर, सुभाय भाव भोरे पै ॥
कहै 'हनुमान' ज्योही झूलिवे को कीन्हो मन,
त्योही सान छाई है सुहाइ मुख गोरे पै ।
झूलत हमारै, हिए हूलत है सौतिन के,
फूलत कसीली बाल बैठी जो हिंडोरे पै ॥१६४॥

*

झूलत हिंडोरै, उठै छबि की झकोरै,
मन-माधुरी मे बोर, पौन खान मुसक्यान की ।
जोरै दृग-कोरै, हिए सबके मरोरै, मानो-
सोभा चौर ढोरै, दुति पट-फहरान की ॥
जोबन के जोरै, झूला थामत निहोरै हू न,
चोप दुहूँ ओरै, छुवै फुनगि लतान की ।
'बेनी' हू हिलोरै, फूल छोरै, हार डोरै, लख-
आली तृन तोर, सुधि भूली गान-तान की ॥१६५॥

*

झूलत हिंडोरै प्रिया-प्रीतम यमुन-तीर,
बोलैं पिक-कीर छबि छाजत लतान की ।
बाँधै पाग पचरंग, ओढ़ै चूनरी सुरंग,
कंचुकी दुरंग, बैंदी करै दुति भान की ॥
ब्रज-बधू गावैं, झुकि-झुकि कै झुलावैं, स्यामा-
स्याम को रिझावैं, होत बरषा सुगान की ।
घोर घन गाजै, बग-पाँति हू बिराजै, ताके-
बीच-बीच बाजै, बंसी सुंदर सुजान की ॥१६६॥

वर्षा–विरह

दूर जदुराई, 'सेनापति' सुखदाई देखो,
आई रितु पावस, न पाई प्रेम–पतियाँ ।
धीर जलधर की, सुनत धुनि धरकी, है–
दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ ।।
आई सुधि बर की, हिए मे आन खरकी, 'तू–
मेरी प्रानप्यारी'–ये प्रीतम की बतियाँ ।
बीती औधि आवन की, लाल मनभावन की,
डग भई बावन की, सावन की रतियाँ ।।१६७।।

*

बिन घनस्याम, धाम लागत निकाम, बाम–
आठौ जाम दहत, अतन तन छतियाँ ।
केकी–पिक कूकै, हूकै उठै ये अचूकै अग,
लूकै देत दादुर, बिरह–आग ततियाँ ।।
पतियाँ न आई बीर, छतियाँ जरन लागी,
बतियाँ सोहात नाँही, भूली गति–मतियाँ ।
बीती औधि आवन की, लाल मनभावन की,
डग भई बावन की, सावन की रतियाँ ।।१६८।।

*

दामिनी-दमक, सुरचाप की चमक, स्याम–
घटा की झमक, अति घोर घनघोर ते ।
कोकिला–कलापी कल कूजत है जित-तित,
सीकर ते सीतल समीर की झकोर ते ।।
'सेनापति' आवन कह्यौ है मनभावन, सु–
लाग्यौ तरसावन बिरह–जुर जोर तें ।
आयौ सखी सावन, मदन सरसावन, ल–
ग्यौ है बरसावन, सलिल चहूँ ओर ते ।।१६९।।

बैठ अटा पर औधि बिसूरत, पाय सँदेस न 'श्रीपति' पी के ।
देखत छाती फटै निपटै, उछटै जब बिज्जु–छटा छवि नीके ।।
कोकिल कूकै लगै मन लूकै, उठै हिय हूकै बियोगिन ती के ।
बारि के बाहक, देह के दाहक, आए बलाहक गाहक जी के ।।१७०।।

नीके हो निठुर कंत, मन लै पधारे अंत,
मैन मयमंत, कैसै बासर बराइ हौं ।
आसरौ अवधि कौ, सो अवध्यौ बितीत भई,
दिन दिन पीत भई, रही मुरझाइ हौं ॥
'सेनापति' प्रानपति साँची हौं कहति, एक–
पाइकै तिहारे पाँय, प्रानन को पाइ हौं ।
इकली डरी हौं, घन देखि कै डरी हौं, खाइ–
बिष की डरी हौं, घनस्याम मरि जाइ हौं ॥१७१॥

★

उन एते दिन लाए, सखी अजहूँ न आए,
उनए ते मेह भारी है काजर-पहार से ।
काम के बसीकरन, डारैं अब सीकरन,
तातै ते समीर जे है सीतल तुषार से ॥
'सेनापति' स्याम जू कौ बिरह छहरि रह्यौ,
फूल प्रतिकूल तन डारत पजार से ।
मोर हरषन लागे, घन बरषन लागे,
बिन बर खन, लागे बरष हजार से ॥१७२॥

★

अब आयौ भादौं, मेह बरसै सघन कादौं,
'सेनापति' जादौपति बिना क्यो बिहात है ।
रबि गयौ दबि, छबि अंजन तिमिर भयौ,
भेद निसि-दिन कौ न क्योहू जान्यौ जात है ॥
होति चकाचौंधि जोति चपला के चमके तें,
सूझि न परत पीछे मानो अधरात है ।
काजर तें कारौ, अँधियारौ भारौ गगन मे,
घुमरि-घुमरि घन घोर घहरात है ॥१७३॥

★

सारंग-धुनि सुनि पीय की, सुधि आवत अनुहारि ।
तजि धीरज, बिरहिनि विकल, सबै रहै मनु हारि ॥
सब रहैं मनुहारि, जे न मानै जुवती-जन ।
ते आपुन तें जाइ, धाइ भेंटति प्रीतम-तन ।
मत न मान के चलहि, देखि जलधर चपला रँग ।
'सेनापति' अति मुदित, देखि बासरै निसा रँग ॥१७४॥

पर-काजहिं देह को धारै फिरौ, परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ, सब ही बिधि सज्जनता सरसौ ॥
'घनआनँद' जीवनदायक हौ, कछु मेरियौ पीर हिएँ परसौ ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन, मो अँसुवानहिं लै बरसौ ॥१७५॥

*

'घनआनँद' जीवन मूल सुजान की, कौंधनि हू न कहूँ दरसैं ।
सु न जानिऐ धौं कित छाय रहे, दृग चातक प्रान तपै तरसैं ॥
बिन पावस तो इन्हें थ्यावस हो न, सु क्यों करि ये अब सो परसैं ।
बदरा बरसै रितु मे घिरि कै, नितही अँखियाँ उघरी बरसैं ॥१७६॥

*

सावन आवन हेरि सखी, मनभावन आवन चोप बिसेखी ।
छाए कहूँ 'घनआनँद' जान, सम्हारि की ठौर लै भूल न लेखी ॥
बूँदैं लगैं, सब अंग दगैं, उलटी गति आपने पापन पेखी ।
पौन सो जागत आगि सुनी ही, पै पानी सो लागत आँखिन देखी ॥१७७॥

*

कंत बिन भावत सदन ना सजनि ! मोपै—
बिरह प्रबल मैनमत कोप्यौ बाढ के ।
'श्रीपति' कलोल, बोलैं कोकिल अमोलैं, खोलैं—
गौन गाँठ तोपै गौन राखे आढ़-आढ़ के ॥
हहरि-हहरि हिय, कहरि-कहरि करि,
थहरि-थहरि दिन बीते जिय माढ के ।
लहरि-लहरि बिज्जु, फहरि-फहरि आवै,
घहरि-घहरि उठे बादर असाढ़ के ॥१७८॥

*

हरी है सबै सुधि-बुद्धि हरी, तिय सेज परी, तन चेत न री है ।
नरी है, कहा रति-रूप रती-कन, सौने के साँचे ढरी पुतरी है ॥
तरी है मनोज महानद की, 'नृप संकर' सोभित लाल डरी है ।
डरी है खरी यह पावस में, सखि सोर सुनै लखै भूमि हरी है ॥१७९॥

*

तेरेई वे झमकै लखिकै, जुगुनून की जे तन लूकै लगी ।
घर की सुधि कै दरकी छतियाँ, जब सीरी बयारि की झूकै लगी ॥
भनै 'श्रीपति' आप घटा घहरैं, हहरै हियरा अति ह्वै कै लगी ।
अब कैसे बनाव बनैगो पिया बिन, पापिनी कोकिल कूकै लगीं ॥१८०॥

तेरे डाह दही, बैठ कोठरी के कौने रहीं,
अजहूँ तौ देहि कौल निकसौ तो कौने सो ।
कहै 'मकरंद' कोई पंछी न गहै पंख,
काम सो निहोरौ करि देखौ जौन-तौने सो ॥
तो को मै जराय जरौ,चोप करि ओप करौं,
चुनि-चुनि चुनी-लाल लाखन के लौने सो ।
ए रे ए पपीहा ! जैसै पीय-पीय कहै, तैसे-
आव-आव कहै तो,मढ़ावो चोच सौने सो ॥१८१॥

★

झिल्ली झनकारै, पिक-चातकी पुकारै बन,
मोरन गोहारै, उठै जुगुनू चमकि-चमकि ।
घोर घन कारे, भारें धुरवा धुँधारे, धाम-
धूमन मचावै, नँचै दामिनी दमकि-दमकि ॥
झूँकन बयारि बारि लूकन लगावै अंग,
कूकन भभूकन सो और मो खमकि-खमकि ।
कैसे रहै प्रान, प्रान-प्यारौ 'जसवत' बिन,
छोटी-छोटी बुंदन सो बरसै झमकि-झमकि ॥१८२॥

★

मरज बढ़ावै महा, दुर्जन फरज बाँधै,
काज न करत कछू कारज सो आनै री ।
चरज न जानै, हिय दरज दुरावै हाय,
बरज न सीखै, समय प्रीतम पयानै री ॥
भनै 'रघुराज' अबै अरज सुनै ना नैक,
बिरही परज पर जन अनुमानै री ।
तरज न जानै, और दरज न जानै नैक,
गरज न जानै, मेघ गरजन जानै री ।१८३।

★

भादौं मे कारी बिकरारी रात ह्वै है प्यारी,
जुगुनू-जमाति जोर-जोर धमकावैगी ।
घनन घमड ह्वै कै, बरषा अखंड ह्वै कै,
पवन प्रचंड दुति दामिनी दवावैगी ॥

अरुन बरन ह्वै कै इंद्र-वधू ठौर-ठौर,
'मल्ल कवि' कहै जोर आपनौ जनावैगी ।
पावस समय मे जोपै ऐहै नही कंत, तौपै-
मदन महीपति की फौजै उठि धावैगी ॥१८४॥

★

घुंधरित धूरि धुरवॉन की सु छाई नभ,
जलधर-धारा धरा परसन लागी री ।
'द्विजदेव' हरी-भरी ललित कछारै त्यो,
कदबन की डारै रस बरसन लागी री ॥
काल्हि ही तें देखि बन-बेलिन की बनक,
नवेलिन की मति अति अरसन लागी री ।
बेगि लिखि पाती, वा सँघाती मनमोहन को,
पावस-अवाती ब्रज दरसन लागी री ॥१८५॥

★

बिज्जु की छटा मे, घन घोर की घटा मे,
बक-पॉति की प्रभा मे, कैधौ नैनांन लगाए ना ।
दादुर-कलामे, जोर-सोर सरनामे, पीऊ-
पीऊ पपिहा मे, हामे सोर सरसाए ना ॥
'सकर जू' जामे, नीलमनि सी ललामै भूमि,
सोहै ठाम-ठामै, तामै काम-तेज ताए ना ।
मोर-हरषा मे, नदी-नद-तरषा मे, अज-
हू लौ परसा मे, बरषा मे हरि आए ना ॥१८६॥

★

आढ़-आढ करत असाढ आयौ मेरी आली,
डर सौ लगत देखि तम के जमाक ते ।
'श्रीपति' ये मैन माते [मोरन के बैन सुनि,
परत न चैन बुँदियान के झनाक ते ॥
झिल्ली गन झाँझ झनकारै, न सँभारै नैक,
दादुर दपट बीज तरसै तमाक तें ।
भरकी बिरह-आग, करकी कठिन छाती,
दरकी सजल जलधर की धमाक तें ॥१८७॥

मोरन के मोर, सुनि पिक की पुकार, तैसी–
चातक-चिकार सुनि सूती स्याम यामिनी।
जुगुनू-जमक देखि, झिल्ली की झनक लेखि,
भय सो बिसेष 'सेष' डरै गज–गामिनी॥
झरन झरत नीर, कंपत सरीर एरी
बालम बिदेस धीर धरै कैसे कामिनी।
मारे डारै मदन, मरोरै डारै दादुर ये,
दाबै आवै बादर, दबाए आवै दामिनी॥१८८॥

*

छायौ नभ–मडल घुमडि घन 'श्री कवि जू',
आनँद अथोर चारो ओर उमँगत।
पायौ मद मालती कौ, कुज-कुंज गुंजत है,
भौर दुख–पुज गेह–गेह तें भगत है॥
धायौ देस-देस तें, बिदेसी सब कठ लायौ–
निज–निज ती को, भरौ मोदहि जगत है।
आयौ सखी सावन, सोहावन सही, पै मोहि–
बिन मनभावन भयावन लगत है॥१८९॥

*

तम की जमक, बक-पाँति की चमक, ज्योति–
झीगन झमक, चमकन चपलान की।
बैहर झकोरै, मोरै रोरै चहुँ ओरै सोरै,
प्रेम के हलोर घोरै धुनि धुरवान की॥
रतियाँ जमकि आई, छतियाँ उमँगि आई,
पतियाँ न आई प्यारे 'श्रीपति' सुजान की।
नेह तरजन, बिरहा के सरजन सुनि,
मान मरदन, गरजन बदरान की॥१९०॥

*

पपिहा की पुकार परी है चहूँ, बन मे गन मोरन गावन के।
कहि 'श्रीपति' सागर से उमँगे, तरु तोरत तीर सुहावन के॥
बिरहानल ज्वाल दहै तन को, छिन होत सखी पग बावन के।
दिन गे मनभावन आवन के, घहरान लगे घन सावन के॥१९१॥

घन दरसावन है, बिज्जु तरपावन है,
चहुँ ओर धावन है, बैहर सगाढ़ की ।
मानिनी मनावन है, मोर हरपावन है,
दादुर बोलावन है, अति आढ-आढ़ की ॥
'श्रीपति' सुहावन है, झिल्ली झनकावन है,
बिरही सतावन है, चिंता चित बाढ़ की ।
लगन लगावन है, मदन जगावन है,
चातक कौ गावन है, आवन असाढ की ॥१६२॥

*

कौन परी चूक मोसो, एरी मेरी बीर ! जासो-
कीन्ही मनमोहन ने ऐसी हाय ! घतियाँ ।
छाए परदेस, पायौ कछु ना सदेस, ये ही-
जिय मे अदेस, कबौ भेजत न पतियाँ ॥
काम की सताई, निसि रोय कै बिताई 'लाल',
कैसे कल पाऊँ, पीर होत अति छतियाँ ।
तापै कलपावन को, बिरह बढ़ावन को,
आई दुखदाई फेरि, सावन की रतियाँ ॥१६३॥

*

हुइकै निरसंक, अंक लैकै उरजन लाइ,
निरखि-निरखि नैन, रूप-रस चाखती ।
दीन ह्वैके बोलती तुरत अँसुवन ढारि,
दोऊ कर जोरिकै बिरह-बिथा भाखती ॥
ल्यावती पकरि गुरुजन आगै आँगन लौं,
'संतन' कहत बेगि लाज-नदी नाँघती ।
जो मै सखी जानती, कै सावन बिदेस ह्वैहै,
पाँमन पकरि मनभावन १६४॥

*

आयौ असाढ़ भई अति गाढ, गई सब रैनि पहार सी ढ़ैठा ।
कौन सुनै अरु कासो कहौं, चहुँ ओर ते दामिनी नाखत बाढ़ ॥
भोर ही ते करै कोकिल कूक, 'सिरोमनि' लेत करेजौई काढै ।
कामिनी के हनिवे को मनो, चमकी, झमकी जम की जम-दाढ़ै ॥१६५॥

चंचला चमाकैं चहुँ ओरन तें चाह भरी,
चरजि गई ती फेरि, चरजन लागी री।
कहै 'पद्माकर' लवंगन की लौनी लता,
लरजि गई ती, फेरि लरजन लागी री॥
कैसे धरौ धीर बीर! त्रिविध समीरें तन,
तरजि गईं ती, फेरि तरजन लागी री।
घुमडि घमंड घटा घन की घनेरी अबै,
गरजि गई ती, फेरि गरजन लागी री॥१६६॥

*

सरद-ससी तें अध ससी ह्वै बची हौं, कवि-
'चिंतमनि' तिमि हिम-सिसिर-झमक तें।
मारुत मरूकै बची, बधिक बसंत हू तें,
पावक-प्रचार बची, ग्रीषम-तमक तें॥
आयौ पापी पावस ये, प्रान अकुलान लागे,
भयौ री असान घोर घन के घमक तें।
ताप ते तचौंगी, जो पै अमिय अचौंगी आली!,
अब ना बचौंगी, चपलान की चमक तें॥१६७॥

*

बरसत मेह, नेह सरसत अंग-अंग,
झरसत देह, जैसे जरत जवासौ है।
कहै 'पद्माकर' कलिंदी के कदंबन पै,
मधुपन कीनो आय, महत मवासौ है॥
ऊधौ! ये ऊधम जताय दीजो मोहन को,
ब्रज कौ सुबासौ, भयौ अगिनि-अवा सौ है।
पातकी पपीहा जल-पान कौ न प्यासौ, काहू-
विथित वियोगिन के प्रानन कौ प्यासौ है॥१६८॥

*

कर कागद लैकै वियोगिन नारि, लिखै इमि प्रीतम को पतियाँ।
इहि पावस में परदेस छये, बलिहारी तिहारी सिला-छतियाँ॥
सखियाँ पिय संग हिंडोरै चढीं, बतरावत राग भरी बतियाँ।
अति कारी डरावनी साँपिनी सी, मोहि सालत सावन की रतियाँ॥१६९॥

आई रितु पावस, न आए प्रानप्यारे, याते–
मेघन बरज आली ! गरजन लावै ना ।
दादुर हटकि बकि-बकि कै न फोरै कान,
पिकन पटकि, मोहि सबद सुनावै ना ॥
विरह-विथा तें हौं तो व्याकुल भई हो 'देव',
चपला-चमकि चित चिनगी उडावै ना ।
चातक न गावै, मोर सोर ना मचावैं,
घन घुमडि न छावै, जौलौं लाल घर आवै ना ॥२००॥

*

जल भरें भूमै, मनो भूमै परसत आइ,
दस हू दिसान घूमैं, दामिनी लए-लए ।
धूम धारे धूसर से, धुरवा धुँधारे कारे,
धूरवान धारे धावैं छबि यो छए-छए ॥
'श्रीपति' सुजान कहै घरी-घरी घहरात
तापत अतन तन ताप सो तए-तए ।
लाल बिन कैसे लाज-चादर रहैगी बीर !,
कादर करत मोहि बादर नए-नए ॥२०१॥

*

झमकि-झमकि झूलि, राग की सिखत रीति,
छहरि-छहरि बुंद गिरत अकास तें ।
भनत 'दिवाकर' करत मोर सोर बन,
बिहरै बहूटी बीर ! मेदनी हुलास ते ॥
चातक चवाई चाइ, सुरति बढावै चाव,
चूनरी सुरंग रंग बसी है सुवास तें ।
सावन सिरायौ, मनभावन न आयौ आली,
कादर करत कारे बादर प्रबास तें ॥२०२॥

*

उठ देख री बीर ! अटान-अटा चढ़ि, बिज्जु-छटा छहरान लगी ।
अति सीरी बयार सुगंध सनी, द्रुम-बेलिन पै फहरान लगी ॥
सखि ! औध की आस घरी पै रही, लखिकै छतियाँ थहरान लगी ।
ये कैसी अचानक आन बनी री, घटा घन की घहरान लगी ॥२०३॥

सखियाँ कोउ झूँक ते झूलन के, डरि लागहिं प्रीतम की छतियाँ ।
कोउ डोर धरै कर एक त्यो एक, ते पी की बचावत है घतियाँ ॥
कोउ गाइ मलार रिझाइ रही, अरु कोऊ करैसकी बतियाँ ।
कब पीर निवारि है मो हिय की, पिय ! जात हैं सावन की रतियाँ ॥२०४॥

★

लाग्यौ असाढ़ सबै सुख-साजन, मो जिय मे बिरहा दुख बोई ।
सावन मे सब केलि करे, मै अकेली परी, सग-साथ न कोई ॥
कैसै जियो अब ए सजनी ! रितु पावस मे घनस्याम बिगोई ।
कौन सी चूक परी बिधना, बरसात गई बर साथ न सोई ॥२०५॥

★

भावती जो पिय की बतियाँ, सखि ! सालत हैं उर, सूल सी बोई ।
घोर घटा बिजुरी चमकै, तिसरै पपिहा पिय-पीय रटोई ॥
'भौन' भनै भ्रम भामिनि को, लरजै छतियाँ तन काम बिगोई ।
स्वाँसन स्वाँस उसासत है, बरसात गई, बर साथ न सोई ॥२०६॥

★

सजि सूहे दुकूलन बिज्जु छटा सी, अटान चढ़ी घटा जोवती है ।
रंगराती सुने धुनि मोरन की, मदमाती सयोग सँजोवती है ॥
कहि 'ठाकुर' वे पिय दूर बसै, हम आँसुन ते तन धोवती है ।
धनि वे धनि, पावस को रतियाँ, पति की छतियाँ लगि सोवती है ॥२०७॥

★

धनि वे, जिन प्रेम सने पिय के, उर मे रस-बीजन बोवती है ।
धनि वे, जिन पावस मे पिसिकै, मेहँदी कर-कंज मलोवती है ॥
धनि वे, जिन 'सूरत' साजि सजै, हम लाज के बोझ को ढोवती है ।
धनि वे धनि, सावन की रतियाँ, पति की छतियाँ लगि सोवती है ॥२०८॥

★

धनि वे, जिन पावस की रितु मे, नित प्रीति मे प्रीति सँजोवती है ।
धनि वे, जिन कारी घटा मे अटा बिच, बिज्जु-छटा छबि छोवती हैं ॥
धनि वे, जिन 'रामचरित्र' हिऐं, हिलि हौंसन हरषित होवती हैं ।
धनि वे धनि, पावस की रतियाँ, पति की छतियाँ लगि सोवती है ॥२०९॥

छै है बक-मडली उमडि नभ मडल में,
जुगनू चमक ब्रजनारिन जरैहै री ।
दादुर-मयूर झीने झींगुर मचैहै सोर,
दौरि-दौरि दामिनी दिसान दुख दैहै री ॥
'सुकवि गुलाब' ह्वैहै किरचै करेजन की,
चौकि-चौकि चौचन सो चातक चिचैहै री ।
हंसिनि लै हंस उडि जैहैं रितु पावस में,
ऐहै घन स्याम, घनस्याम जो न ऐहै री ॥२१०॥

*

कारी कूर कोकिल ! कहाँ कौ बैर काढत री,
कूकि-कूकि अब ही करेजौ किन कोरि लै ।
पैढ परे पापी ये कलापी निसि-द्यौस ज्यो ही,
चातक घातक त्यों ही तुहूँ कान फोरि लै ॥
'आनंद के घन' प्रान जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै ।
जौलौ करे आवन, विनोद-बरसावन वे,
तौलौ रे डडारे-बजमारे घन ! घोरि लै ॥२११॥

*

घहरि-घहरि घन सघन चहूँघा घेरि,
छहरि-छहरि बिष बूँद बरसावै ना ।
'द्विजदेव' की सौ, अब चूकि मत दाव अरे,
पातकी पपीहा तू पिया की धुनि गावै ना ॥
फेरि ऐसौ औसर न ऐहै तेरे हाथ ए रे,
मटिक-मटिक मोर सोर तू मचावै ना ।
हौ तौ बिन प्रान, प्रान चहत तज्यौई अब,
कत नभ-चद तू अकास चढ़ि धावै ना ॥२१२॥

*

उमड़े नभ-मंडल-मंडित मेघ, अखडित धारन सो मचि है ।
चमकैगी चहूँ दिसि ते चपला, अबला करि कौन कला बचि है ॥
अकुलाइ मरेगी बलाइ 'समारख', आज उपाइ इहै रचि है ।
पहिलैं अँचवेगी हलाहल को, फिरि केकी-कुलाहल कै नचि है ॥२१३॥

कारी नई उनई घन की घटा, बिज्जु छटा करै आनँद जी कौ ।
सोर भौ ओर चहूँ 'परसाद', मनोहर मोरन की अवली कौ ॥
चारु सुहाव पतान की मोहै, लतान मे सोहै हरौ रग नीकौ ।
है यहि भाँति सुहावन री, पै बिना मनभावन सावन फीकौ ॥२१४॥

*

आयौ असाढ़ सुनो सजनी, रजनी दिन घेरि घटा घन छायौ ।
छायौ विदेसहि 'रामचरित्र', अँदेस लग्यौ है, सँदेस न पायौ ॥
पायौ भलै अपने बस कैधौ, कहूँ कोउ सौतिन सेज लुभायौ ।
भायौ कहा उनके मन माँहि, कि पावस आयौ, पिया नहि आयौ ॥२१५॥

*

सावन की रितु आई सखी, पतियाँ न लिखी अजहूँ मनभावन ।
भावन राग-मलार मे 'भूपति', रंग उमंग सो लागे है गावन ॥
गाँमन मे हरषै सबही, बरषै बर बूँद, घटान की आवन ।
आवन आज भयौ नहिं पीव कौ, जीव को मँन लग्यौ तरसावन ॥२१६॥

*

सावन सोक नसावन है, नहि 'रामचरित्र' मेरे मनभावन ।
भावन मोहि घटा घन की, बन की हरियाली लगी लुक लावन ॥
लावन कोऊ कहै उनकों, उनको कर जोरि कही गुन गावन ।
गाँमन मे सबको सुख है, हमको दुख ही दुख है दरसावन ॥२१७॥

*

घेरि घटा घहराय रही, दरकावत है बिन प्रीतम छाती ।
कामिनियाँ हियरा तरसावत, दामिनियाँ चहुँ ते दरसाती ॥
'रामप्रताप' झकोरत पौन, भई दुखदाइन सावन-राती ।
तापै वियोग बढावत है, वह 'पी' कहि बोलि पपीहरा घाती ॥२१८॥

*

कोकिल की सुनिकै कल कूकन, केकी कुटेकी कुटेक न टेरे ।
बीर बधू फिरकी सी फिरै, 'बिरहानल के मनो बीज बिखेरे ॥
'बान' कहै सखि ! भूमि हरी लखि, होय हरी न, हरी फिर हेरे ।
धावत धूम से बादर देखि, लगे जल मोचन लोचन मेरे ॥२१९॥

भूमि हरी भई, गैलै गई मिटि, नीर-प्रवाह बहा बेबहा है ।
कारी घटान अँधेरौ कियौ, दिन-रैन में भेद कछू न रहा है ॥
'ठाकुर' भौन तें दूसरे भौन लौं, जात बनै न, बिचार महा है ।
कैसें कै आवे, कहा करे बीर, बिदेसी बिचारन दोस कहा है ॥२२०॥

*

भादौ की अँधेरी, धुरवा की लटकेरी, पाक-
सासन करै री, छिन-छिन छोडै बान री ।
बोलत भयान भोगी, वासना तजत योगी,
पति से बिहीन, ना सोहात खान-पान री ॥
भनत 'दिवाकर' करार दरियाब छोडी,
नाव कौ निवाह ना, न साह छोडै रान री ।
पावस प्रबल मेरे पिय को छोडाय दीन्हो,
दोप न बिदेसी, करै कैसै कै पयान री ॥२२१॥

*

उमडे नभ ते छिति मंडल मेघ, घमडि चहूँ दिसि धाय रहे ।
'कवि चंदन' चाव सो चातक-मोर, हरे बन सोर मचाय रहे ॥
पिय पावस मे बिरही बनितान के, आवन हार ते आय रहे ।
केहि कारन हाय बिहाय हमै, हरि जाय विदेस मे छाय रहे ॥२२२॥

*

डोलै पौन परसि-परसि जल बूदन सो,
बोलै मोर-चातक चकित उठि डरि मे ।
कहाँ लौ बराऊँ दईमारे मैन बानन सो,
थकि रही केतिकौ उपाय करि-करि मै ॥
'दत्त कवि' प्यारे मनमोहन न पाऊँ, कहौ-
मन समझाऊँ री, कहाँ लौ धीर धरि मै ।
छाए मेघ मगन, सुहाए नभ मडल मे,
आए मनभावन, न सावन की झरि मे ॥२२३॥

*

जाइ कै द्वारिका बैठि रहे, जु लहै अबला ब्रज की दुख भारी ।
आवत मेघ नये उनए, जुगुनू दरसै, सरसै निसि कारी ॥
कोकिल-कूक करै हिय हूक, उलूक सो बोलत पीक पुकारी ।
आँसू झरै अँखियाँ से तिया, छतियाँ करकै बकै 'हाय बिहारी' ॥२ ४॥

कैधौ मोर सोर तजि गए री अनत भाजि,
फधौ उत दादुर न बोलत नये दई ।
कैधौ पिक-चातक-चकोर काहू मारि डारे,
कैधौ बक-पाँति कहूँ अतरगत ह्वै गई ।।
झीगुर झिगारै नाँहि,कोकिल किलकारै नाँहि,
भनै 'जयसिंह' दसौ दिसि हूँ सो सो गई ।
जारि डारयौ मदन, मरोरि डारे मोर सब,
जूझि गए मेघ, कैधौ दामिनी सती भई ।।२२५।।

*

कैधौ वा विदेस घन घुमडि न छावै चहूँ,
कैधौ वा विदेस कहूँ दामिनी न दरसै ।
कैधौ वा विदेस मोर सोर ना मचाव जोर,
कैधौ वा विदेस बेग बोलिकै न हरसै ।।
कैधौ वा विदेस मे न झीगुर झनक झुंड,
कैधौ वा विदेस मे न जुगुनू-जोति सरसै ।
कैधौ वा विदेस 'रामचरित' ना रसिक कोऊ,
कैधौ वा विदेस घटा घेरिकै न बरसै ।।२२६।।

*

कैधौ वा देस जहाँ प्रीतम पियारे बसै,
घोरै घटा नही, घूमि-घूमि घहरावै है ।
कैधौ चमकत नाँहि चपला चहूँघा तहाँ,
कैधौ न सुरेस कबौ बुंद झर लावै है ।।
कैधौ काम कुटिल न व्यापत करेजै, कैधौ-
कोऊ नहिं मेघ औ मलार राग गावै है ।
कैधौ 'लाल' पावस की रात मे पपीहा पापी,
बार-बार पी-पी कर कूक ना सुनावै है ।।२२७।।

*

कैधो वा देस घन घुमडि न बरसत है,
कैधो 'मकरंद' नदी-नद पथ भरिगे ।
कैधो पिक-चातक चकित चक्रवाक वाक,
मत्त भए दादुर-मधुप-मोर मरिगे ।।

मेरे मन आवत, न आली प्यारे आवत है,
काम कुर निकर मही ते धौं निकरि गे ।
कैधौ पंचसर हर फेरिकै भसम कीन्हौ,
कैधौ पचसर जू के पाँचो सर सरिगे ॥१२८॥

*

कारे-कारे बदरा पवन लै प्रचंड करौ,
घन की धनाक नैक चित्त हू न धरि हौ ।
पापी ये पपीहा के सचान लै कै प्रान लेउँ,
कोकिला के कंठ कारे काटि-काटि डरि हौ ॥
भीगुर भँगार को बोलाइ लेउँ नीलकंठ,
सेष को बोलाइ सबै दादुर सहरि हौ ।
आवन दै सावन रे, मेरे मनभावन को,
रहु रे अषाढ, तेरे हाड़-हाड गरि हौ ॥२२९॥

*

लगी सो लगाई लक खेहनि खराब करौ,
मारि करौ मोरन अहार मारजारे कौ ।
'सुकवि निधान' कान आँगुरिन मूँदि-मूँदि,
सुनि हौ न घोर सोर झिल्ली झनकारे कौ ॥
भेकन की भीर सहसानन मिटाय डारौ,
मेटि डारौ गरब गरूर घन कारे कौ ।
पाऊँ जो पकरि काहू जाल सो जकरि तन,
फीहा-फीहा करौ या पपीहा दई मारे कौ ॥२३०॥

*

पीउ-पीउ कहति, मिलै जो मोहि आज पीउ,
सौने चौंच चातक मढ़ाऊँ अति आदरन ।
कठिन कलापिन के कंठन कटाय डारौ,
देत दुख दारुन चिराय डारौं दादुरन ॥
'मोतीराम' झिल्ली गन मंदिर मुँदाइ डारौं,
बधिक बुलाइ बधौं बन के बिरादरन ।
बिरहा की ज्वालन सो झरहि जराइ डारौं,
स्वाँसन उडाऊँ बैरी बे दरद बादरन ॥२३१॥

आई अषाढ की कारी घटा, घहरान लगे बदरा चहुँ ओर कै ।
दूजै जो कंत बिदेस गए, सुधि पाई न नैक, रही मग हेरि कै ॥
'उमराव' स्वभाव बिहंगकौ है,मृदुबैन कहै जो सखी कहै टेरि कै ।
मौने की चोच मढै हौ तेरी, बलि जैहौ पपीहा,पिया कहु फेरि कै ॥२३२॥

★

पीउ-पीउ रटत पपीहा रितु पावस मे,
दादुर पुकार सो न बची कुल-चादरन ।
कोकिल की बोलन, मयूर मेरु नृत्यन सो,
झिल्ली-झनकार सुनि भयौ जीव कादरन ॥
होतौ यहि काल आली आज जो 'दिवाकर जू'
हाव-भाव करतौ कलोल अति सादरन ।
जाय परदेस को बसत है हमारे साईं,
रोज-रोज बिरह बढावै बैरी बादरन ॥२३३॥

★

जौ लौ उतै जुगनू दरसै, तन-ताप इतै तब लौ दरसै लगी ।
जौ लौ समीर उतै सरसै, 'नंदराम' उसाँस इतै सरसै लगी ॥
जौ लौ जवास झुरी झरसै उत,तौ लौ इतै छतियाँ झुरसै लगी ।
जौ लौ घनेरी घटा बरसै उत, तौ लो इतै अँखियाँ बरसै लगी ॥२३४॥

★

उमड़ि-उमड़ि घन घुमड़ि-घुमड़ि आए,
चचला उठत तामै तरजि-तरजि कै ।
बरही-पपीहा-भेक-पिक खग रोरत है,
धुनि सुनि प्रान उठै लरजि-लरजि कै ॥
कहै 'कविराय' देखि चमक खद्योतन की,
प्रीतम को रही मै तौ बरजि-बरजि कै ।
लागै तन तावन, विना री मनभावन के,
सावन दुवन आयौ गरजि-गरजि कै ॥२३५॥

★

नीर झलान को पोषत पीर, न वारन बुंद बिसारै है बान ये ।
धूम वियोगिनि के घट को घुटि, भूमि पै झूमि रहे धुरवान ये ॥
जो झरते न रहै ये नैन, नदी नद-सिधु भरैंगे निदान ये ।
पी कहि, पी कहि, पापी पपीहरा, पी गए जान, कै पी गए प्रान ये॥२३६॥

गरजि लै, घुमँडि लै सकल महि–मंडल पै,
दंड बिरहीन कौ अदंड अब ऐठै गौ ।
पापी हू पपीहा पीउ दारुन देखाइ दुःख,
मोरन कौ सोर, तन तोरि अंग पैठै गौ ॥
चपला कृपान, बुंद बान सो 'प्रवीन बेनी',
सीतल समीर तन अधिक उमैठै गौ ।
जारी हौ बसंत की, लथारी-मारी ग्रीषम की,
पावस कलकी सीस तेरे चढि बैठै गौ ॥२३७।

★

सावन सुहावन विसेष, नभ धनु लेखि,
याद होत झटपट पीत अभिराम की ।
तकि मृग-पाँती, बिलपाती, अकुलाती अति,
आवत सुरति वह मौलसिरी दाम की ॥
मोर चहुँ ओर देखि, मुकुट–सुरति होत,
चपला–चमक देखि, कुंडल ललाम की ।
ऊधौ ! ब्रज-बाम कैसै धीर धरै सूने धाम,
लखि घन स्याम, सुधि आवै घनस्याम की ॥२३८॥

★

आयौ सखि सावन बिदेस मनभावन जू,
कैसै करि मेरौ चित्त हाय ! धीर धारि है ।
ऐहै कौन झूलन हिंडोरे बैठि सग मेरे,
कौन मनुहारि करि, भुजाएँ कंठ पारि है ॥
'हरिचंद' भीजत बचैहै कौन, भीजि आप,
कौन उर लाय काम–ताप निरवारि है ।
मान समय पग परि कौन समुझैहै हाय,
कौन 'मेरी प्रान प्यारी' कहिकै पुकारि है ॥२३९॥

★

रितु पावस स्याम घटा उनई, लखिकै मन धीर धिरातौ नहीं ।
धुनि दादुर-मोर-पपीहन की, सुनि कै छिन चित्त थिरातौ नहीं ॥
जबतें बिछुरे 'कवि बोधा' हितू, तबतें उर दाह बुझातौ नहीं ।
हम कौन ते पीर कहै जिय की, दिलदार तौ कोऊ दिखातौ नहीं ॥२४०।

सीतल समीर उर तीर सौ लगत है री,
हरी-हरी बेलिन पै पावक पजार दै।
दादुरन दूरि कर, पिकन पकरि दै री,
बागन के बाहर मधुप-मोर मार दै॥
पावस मे पिय बिन बिपति बढावत ये,
सु जीवन जिवैवे के उपाय उपचार दै।
दामिनी दबा कर, तू बादर विदा करे री,
बुदन बरजि कर बगन बिडार दै॥२४१॥

*

लहलही लौनी-लौनी लता लखि-लखि आली,
प्यारे बनमाली बिन देखै हिए लरजै।
व्याकुल वियोगिनी न गेह-गेह औ ये गॉव,
काहू को न जानै, कोऊ हरजै, न मरजै॥
है री पुन्यवत कोऊ ऐसौ 'परसाद', जौन-
सुनत ही मेरी जानि लेय ये अरजैं।
पौन की झकोरन को, झिल्लिन के सोरन को,
घन-घटा घोरन को, मोरन को बरजै॥२४२॥

*

अनल की लूकै फूकै देत बिरहानल को,
तन भहराय, घहराय घन गरजै।
कोकिला की कूकै हूकै होत हिय 'हरीराम'
हाय-हाय एतौ ये पपीहा पापी नरजै॥
हरी भूमि जल भरी, देखि सुधि-बुधि हरी,
हरी परदेस, अरी करी पंच सर जै।
बरही बिदारत है बिरही के उरन को,
दई निरदई कोऊ बरही न बरजै॥२४३॥

*

प्रीतम-गौन, किधौ जिय भौन, कै भारक-भौन भयानक भारौ।
पावस-फूल, कै पावक-सूल, पुरंदर-चाप, कै सुंदर आरौ॥
सीरी बयारिं, किधौं तरवारि है, बारिद-वारि, कै बान बिसारौ।
चातक-बोल, कै चोट चुभै चित, इंद्र-बधू, कै चकोर कौ चारौ॥२४४॥

आई रितु पावस 'प्रताप' घनघोर भारी,
सघन हरी री बन मंडन बढाए री।
कोकिल-कपोत-सुक, चातक-चकोर-मोर,
ठौर-ठौर कूजन मे पंछी सब छाए री॥
जमुना के कूल, औ कदंबन की डारन पै,
चारों ओर घोर सोर मोरन मचाए री।
एरी मेरी बीर! अब कैसे कै मै धीर धरौ,
आए घन स्याम, घनस्याम नहि आए री॥२४५॥

★

स्वेत-स्वेत बकके निसान फहरान लागे,
ऐचि-ऐचि चपल कृपान चमकाए री।
घहर भुसुंडी की अवाज सी करन लागे,
बुंदन के भरनन भीने भरि लाए री॥
भनत 'प्रताप' रतिनायक नरेस जू ने,
धीर-गढ तोरिबे को पावस पठाए री।
ए री मेरी बीर! अब कैसे कै मै धीर धरौ,
आए घन स्याम, घनस्याम नहि आए री॥२४६॥

★

घेरि-घेरि घहरि-घहरि घन आए घोर,
तापै महा मारुत भकोरत भरप सौ।
सुनि-सुनि कूकनि मयूरन की बीर! मै तौ,
राख्यौ निज प्रान यमराजहिं अरप सौ॥
भीत भरी भौन ते कढौ न 'कमलापति' मै,
तऊ बेधै डारै हियौ तडित तरप सौ।
गावन मलार कौ, सुहावन लगै न, मन-
भावन बिना री मोहि सावन सरप सौ॥२४७॥

★

सावन के दुख-दावन ये, घनस्याम बिना घन आन सतावै।
तैसे मिलै तिन्है आनिय मोर, सु जोर कै सोर जरे पै जरावै॥
प्यारे कौ नाम सुनाय सखी, हिए पापी पपीहा ये सूल उठावै।
नेह नवेली मरी अब हौ, दिन दोइक पीय जो और न आवै॥२४८॥

कारे-कारे बादर डरावने लगत अब,
दादुर की धुनि सुनि भूलै दसा तन की ।
बुंद की भकोर झकझोर पुरवाई करै,
हरै मन मोर, सोर चहूँ ओर बन की ॥
हरी हरी लतिका करावै घरी-घरी याद,
इंद्र-वधू लखि लाल गुंज-माल गन की ।
नंद कै कुमार बिन, लागै उर आर ऊधौ,
पपिहा-पुकार, झनकार झींगुरन की ॥२४६॥

★

प्रथमहि पावस कौ आगम बिलोकि 'नाथ',
तड़पि-तड़पि उठै दामिनी अचान की ।
ठौर-ठौर झींगुरन झनकि-झनकि बोलै,
द्रुमन की डोलै, डार पवन ढरान की ॥
मोरन कौ सोर सुनि उठैहै भभकि काम,
कौन चतुराई सुधि करत पयान की ।
घहर घमंडै घेरि-घेरि महि-मंडै, तैसी-
आवत प्रचंडै, ये उमंडै बदरान की ॥२५०॥

★

पौन हहराय बन-बेलि थहराय चारु,
लहराय सौरभ कदंबन की सान तें ।
झिल्ली झननाय, पिक-चातक पुकार उठै,
बिज्जु छहराय, छाय कठिन कृपान तें ॥
कहै 'करनेस' चमकत जुगनू नँघाय,
मेरे मन आई, ऐसी उक्ति अनुमान ते ।
बिरही दुखारे, तिन पर दई मारे, मानो-
मेघ बरसत है अंगारे आसमान ते ॥२५१॥

★

खग जात उड़े बिदिसौ-दिस मे, मग पावत ना जहँ कूक जगी ।
सब आक-जवास झुराय गए, जरि नारि पुकारत पीवपगी ॥
धर माँझ 'गुलाब' अँगार परे, भरि अंबर में चिनगी उमँगी ।
अब धीर धरै उर का विधि री, जलधारन भीतर लाय लगी ॥२५२॥

सजल रहत आप, औरन को देत ताप,
बदलत रूप और बसन बरेजे मे।
ता पर मयूरन के झुंड मतवारे सालै,
मदन मरोरै महा झरनि मजेजे मे॥
'कवि लछिराम' रंग साँवरौ सनेही पाय,
अरजि न मानै हिय हरषि हरेजे मे।
गरजि-गरजि बिरहीन के बिदारै उर,
दरद न आवै, धरै दामिनी करेजे मे॥२५३॥

*

आई रितु पावस, पपीहा बोलै दादुर ये,
छतियाँ दरत तापै बिरह मदी करै।
'दौलत' कहत हाल सुदर सरस बाल,
लाल मनि भूषन बिसालन रदी करै॥
चहुँ ओर चमकत चपलन चौक चारु
देखि-देखि मृगनैनी नैनन नदी करै।
बिरहिन तियन के जीयन के गाहक ये,
नाह बिन नाहक बलाहक बदी करै॥२५४॥

*

साँची कहै रावरे सो भाँवरे लगत माल,
आवै जिहि काल सुधि साँवरे सुजान की।
फूल-भार भरी डार जैसे यम-जार ऊधौ,
कालिदी-कछार सजै धार ज्यो कृपान की॥
चपला-चमक लगै लूक ह्वै अचूक हिए,
कोकिल-कुहूक बरजोर कोरवान की।
कूक मोरवान की करेजा टूक-टूक करै,
लागत है हूक सुनि धुनि धुरवान की॥२५५॥

*

आयौ असाढ़ हहा! अबही ते, चढी चपला अति चापकै तूँदै।
ह्वैहै कहा सजनी! रजनी-दिन, पापी कलापी मचाई है दूँदै॥
स्याम बिना कल नाहि परै, असुँवान रहे भरि आँखनि मूँदै।
ग्रीषम-भान सी स्नेहत सान सी, लागती बान सी बारिद-बूँदै॥२५६॥

सीतल सुगंध मंद-मंद चहै डोलै पौन,
धुरवा धुरारे चहै धावै, चहै धावै ना ।
प्यारे मनभावन के आवन की औधि गई,
बिरह सु कल चहै पावै, चहै पावै ना ॥
प्रानन की प्यासी सौत पावस प्रचंड भई,
अब कै कलापी चहै गावै, चहै गावै ना ।
जतन अनेकन सो, अब ना बचौगी बीर !
अब वो बिदेसी चहै आवै, चहै आवै ना ॥२५७॥

*

उमडि-घुमडि घन आवत अटान-ओट,
छन घन-ज्योति-छटा छटकि-छटकि जात ।
मोर करै चातक-चकोर-पिक चहूँ ओर,
मोर ग्रीव मोरि-मोरि मटकि-मटकि जात ॥
सावन लौ आवन सुनौ है घनस्याम जू कौ,
आँगन लौ आय, पाँय पटकि-पटकि जात ।
हिए बिरहानल की तपनि अपार, उर—
हार गज-मोतिन कौ, चटकि-चटकि जात ॥२५८॥

ग्रीषम तें तचि-बचि पावस मरूकै पाई,
तामैं फूकै जुगुनू, झबूकै लागैं पौन की ।
हूकै उठै हिय मे, कनूकै लखै बुंदन की,
झिल्ली हूँ न मूकै, ये बिसासी बैरी भौन की ॥
चपला चहूँकै, त्यों-त्यों तन मे भभूकै उठै,
ऊकैं मारै मुरवा, कहौ मैं कौन-कौन की ।
दादुर की हूकै घाव करत अचूकै उर,
कोकिल की कूकै, तापै बूकैं देती नौन की ॥२५९॥

*

दिन-रैन की संधिन बूझिवे की, मति कोक-तमीचुरवान लगी ।
नदियाँ नद लौं उमड़ी, लतिका तरु तैसेन पै गुरवान लगी ॥
कहु 'सेवक' ऐसे मे कैसे जिऐ, जिहि काम तिया उर बान लगी ।
मति मोरिनी की मुरवान लगी, गति बीजुरी की घुरवान लगी ॥२६०॥

भूमि भई हरित, सरित–सर उमडत,
सूझौ ना परत मग, पग दीजियतु है ।
नेह सरसावन सधावन लगे है 'सिह',
आवन की बार मे विदेस भीजियतु है ॥
सखिन की सीख सुनि, सींचिऐ न दुख–बेलि,
केलि तज कब त बिरह कीजियतु है ।
ए हो मनभावन ! लगे है पिक गावन,
सु ऐसे भरे सावन पयान कीजियतु है ॥२६१॥

★

सावन की रैन, मन भावन गोविंद बिन,
देत दुख झारन मे झिल्लन के सोर है ।
'कालिदास' प्यारी अँधियारी मे चकित होत,
उमडि–उमडि घन घहरत घोर है ॥
सूने कुज–मंदिर मे ठाढ़ी विसूरै बैठि,
दादुर ये दहकि सी लेत चहुँ ओर है ।
हिए मे बियोगिनि के बिरह की हूक उठी,
कूक उठी कोयल, कुहूँक उठे मोर है ॥२६२॥

★

एक तौ बिदेसी बिन ऐसै ही दुखी है हम,
दूसरै प्रचंड लागैं पावस सताने री ।
'बच्चन जू', बादर कौ आदर न मेरे यहाँ,
अजब अनारी आप बिरह बढ़ाने री ॥
बरसिवे की हौस है, तौ जाय मथुरा मे बरस,
साँवरे मिलेगे तोहि सौत के ठिकाने री ।
अरज न मानै नैक, हरज हमारौ करै,
गरज न जानै, मेघ गरजन जानै री ॥२६३॥

★

गरजी घनघोर घटा चहुँ ओर, भयौ बिरहा तब ही सरजी ।
सर जी जु भए पिक–दादुर मोर, लिऐं रतिनायक की मरजी ॥
मर.जी जु उठी पिय की सुधि लै, चपला चमकै, न रहै बरजी ।
बरजी अब कौन रहै सजनी, भयौ पावस मो जिय कौ गरजी ॥२६४॥

जा दिन ते प्रान रखवारे न पधारे ऊधौ,
तब ते हमारे उर भारे खेद है सबै ।
कोकिल कुहूक हूक लगै बिज्जु कला लूक,
टूक-टूक करै हियौ मेघ गरजै जबै ॥
घेरै दुख मैन, मति धीरज सकै न धरि,
आवत न चैन, दिन-रैन मन मे अबै ।
पैहै सुख नैन मम, लखै सुखमा के ऐन,
'आए सुख-दैन' ये बैन सुनि हौ कबै ॥२६५।

*

पवन-झकोरै झकझोरै, झोरै बुंद बोरै,
घने घन-घोरै बोरै, दोरै चहुँ ओरै री ।
बिज्जु-छटा कोरै, बिन मोरैजी रसाल कोरै,
आवत असाढ़ भारी ठोरै-ठोरै खोरै री ॥
जोरै प्रेम भोरै, चित धीरज बिथोरै नाँहिं,
मानत निहोरै कान दादुर ये फोरै री ।
तोरै लाज, छोरै कुल-कानि बरजोरै बीर,
मोरन की सोरै मोरे मनहि मरोरै री ॥२६६॥

*

सावन सुहावन ह्याँ लागत भयावन सौ,
आवन अवधि अब सोचै गज-गामिनी ।
ऐहै धौ कबहूँ बलबीर ह्याँ, कै नाँहि ऊधौ,
कैसे धीर धरै ये अधीर ब्रज-कामिनी ॥
जहाँ-तहाँ जोगन की जोति जगै ज्वाल जैसी,
जम की जमाति सी जनात जात जामिनी ।
जारै है पपीहरा, पुकारै पीउ-पीउ टेरि,
घेर मारै बादर, दरेर मारै दामिनी ॥२६७॥

*

पारथ कौ धनु घूमि गयौ, बरस्यौ घन घोर चहूँ दिसि तें ज्यो ।
लंकपती हू उतारि धरयौ धनु, टारि धरयौ रघुबीर बली त्यो ॥
एक ही है रस-बात नई, ये जू सालत प्रान अचंभ यही यो ।
बैरी मनोज के हाथ रही, बरषा रितु एरी कमान चढ़ी क्यो ॥२६८॥

वर्षा-रूपक

बाजत नगारे घन, ताल देत नदी-नारे,
झींगुरन झाँझ, भेरी भृंगन बजाई है।
कोकिल अलाप चारी, नीलग्रीव नृत्यकारी,
पौन बीन धारी, चाटी चातक लगाई है॥
मनिमाल जुगुनू, 'मुबारक' तिमिर थार,
चौमुख चिराग चारु चपला जराई है।
बालम विदेस, नए दुख कौ जनम भयौ,
पावस हमारै लायौ विरह-बधाई है॥२६९॥

*

साँझ हू सकारे, झनकारे होत नदी-नारे,
पावस के माँझ झाँझ झिल्लिन तजत ये।
दामिनि मसाल को दिखावै, ताल दादुर दै,
मोर चहुँ ओर नाँचि, नाटकौ सजत ये॥
धुरवा मृदंगन की धीर धुँधकार ठान,
राते नैन मातक लगान को भजत ये।
सोक कौ जनम ब्रज-ओक मे भयौ है ऊधौ,
साँवरे-बिरह तें है बधावरे बजत ये॥२७०॥

*

भूमि नाँचै नर्तक से मोर एरी चहुँ ओर,
चचला अकास देव-नारि सी नॅचति है।
गायक से गान करै, चातक बिपिन घन,
गधर्व गावैं गीत आनँद रचति है॥
'गिरिधरदास' देव फूलि बरसावै जल,
सुमन लुटावै तरु, बुद्धि यो जचति है।
पावस कौ जनम भयौ री, यासो सुखमा सो-
अवनि-अकास मे बधाई सी मचति है॥२७१॥

*

स्याम घटा उत हैं, अलकै इत, चाप इतै, भ्रुव बंक धरी।
उत दामिनि, दंत-दमंकै इतै, बग-पाँति उतै, इत मोती-लरी॥
उत चातक पिउ ही पीउ रटै, बिसरै न इतै पिउ एक घरी।
उत बूँद अखंड, इतै अँसुआँ, बरसा बिरहीन सो होड़ परी॥२७२॥

जुगुनू उतै है, इतै जोति है जवाहिर की,
झिल्ली झंकार उतै, इतै घुघुरू-लरै ।
कहै 'कवि तोष' उतै चाप, इतै बक भौह,
उतै बक-पाँति, इतै मोती-माल ही धरै ॥
धुनि सुनि उतै सिखि-नाँच, सखि नाँचै इतै,
पी करैं पपीहा उतै, इतै प्यारी सी करै ।
होड़ सी परी है, मनो घन घनस्याम जू सो,
दामिनी को, कामिनी को, दोऊ अक मे भरै ॥२७३॥

*

उत घनस्याम, इत बाम पट सोहै स्याम,
वो अभिराम, ये सुकाम सरसा की है ।
कहै 'नवनीत' रसनीति की तरंग इतै,
उतै मद मेघ, इतै चंचला चलाकी है ॥
झुकि-झुकि, झूमैं-झूमै, गरज-अरज भरे,
धुरवा मचाकी, इतै लंक लचका की है ।
घुमड़ि घटान ही तें, उमडि, अनंग आयौ,
दोऊ ओर दीसत बहार बरसा की है ॥२७४॥

*

'संकर' ये बिथुरी लट है, कै भई सजनी ! रजनी अँधियारी ।
माल मनोहर मोतिन की उरझी उर पै, कै बही सरिता री ॥
दो कुच है, कै दु कूलन पै चकई-चक भोग रहे दुख भारी ।
स्वेद चुचात, कै पावस तोहिं बनाय गयौ घनस्याम बिहारी ॥२७५॥

*

अंबुद आनि दिसा-विदिसा, सगरै तमही कौ वितान सौ तान्यौ ।
मेचक रंग बसै जग मे, अति मोद हिऐं निसिचारिन मान्यौ ॥
पावस के घन के अँधियार मैं, भेद कछू न परै पहिचान्यौ ।
द्यौस-निसा कौ विवेक सु तौ, चकई-चकवान के बोलत जान्यौ ॥२७६॥

*

पावस निसि अँधियार मे, रह्यौ भेद नहि आन ।
रात-द्यौस जाने परत, लखि चकई-चकवान ॥२७७॥

ओढै नील सारी, घन घटा कारी 'चिंतामनि',
कंचुकी-किनारी चारु चपला सुहाई है ।
इंद्रबधू-जुगनू जवाहिर की जगा-जोति,
बग मुकतान-माल, कैसो छबि छाई है ॥
लाल-पीत-सेत बर बादर बसन तन,
बोलत सु भृंगी, धुनि नूपुर बजाई है ।
देखिबे को मोहन नवल नट नागर को,
बरषा नवेली अलबेली बनि आई है ॥२७८॥

*

कारे-कारे धुरवा चिकुर चारु चमकत,
चंचला बरंगना, सु अति अलबेली है ।
पचरँग अंबर अडबर पटबरनि,
मुदित बदन, चद सुखद सहेली है ॥
जुगुनू-जँमाति नैन, बगुला-कतार हार,
केकी धुनि नूपुर अनूप रस रेली है ।
'कवि सिवदास' दिन दूलहै मदन भूप,
बानक बनक बनी बरषा नवेली है ॥२७९॥

*

प्यार सो पहरि पिसवाज पौन पुरवाई,
ओढनी सुरंग सुर-चाप चमकाई है ।
जग-जोति जाहर, जवाहर सी दामिनी है,
अमित अलापन की गरज सुनाई है ॥
'ग्वाल कवि' कहै, धाम-ग्राम लखि नाँचै-
राचै, चित्त-वित लेत, मोद माचत सुहाई है ।
बंचनी बिराग हू की, अति परपंचनी सी,
कंचनी सी आज मेघमाला बनि आई है ॥२८०॥

*

बूंदन-बीर-बधूटिन तें जनु, मोतिन-सेंदुर माँग सँवारी ।
छूटि रही अलकैं, तिनमें झलकैं जुगनू की अली जनु न्यारी ॥
या तन झीनि झलाझल धारिकै, धारिनदार सितारन सारी ।
आवत भूमि मनो नभ तें झुकि-झूमत, लूमत पावस नारी ॥२८१॥

उतै तौ सघन घन घिरि कै गगन, इतै–
न–उपबन बन बनक बनाए है ।
तैसैई उलहि आए अंकुर हरित–पीत,
'देव' कहै विविध बटोहिन सुहाए है ।।
बोलै इत मोर, उत गरजै मधुर धुनि,
मानौ मन भूप जग जीति घर आए है ।
अंबर बिराजै वर, अंबरन छाए छिति,
पीरे, हरे, लाल ये जवाहिर बिछाए है ।।२८२।।

*

पावस की साँझ माँझ, ताकि ये तमासौ खासौ,
बरसौ कियौ भान, दुबी किरने दिखात है ।
ए री मेरी प्यारी, तैं निहारी है कै नाँहि कभूँ,
कैसी नभ न्यारी–न्यारी छवि छहरात है ।।
'ग्वाल कवि' सूही सेत, चपकई, नीली–पीली,
धूमरी, सिंदुरी बदरी ये मँडरात है ।
मानहु मुसब्बर मनोज कौ मुकब्बा मंजु,
फैलि परयौ, ताकी तसवीरे उडी जात है ।।२८३।।

*

धुरवा कलिंदी-कूल, इंद्र-चाप बटमूल,
राजत अतूल अति आनंद की साला सी ।
गरज मृदंग भारी, चातक अलाप चारी,
केकी चटकारी, पिक देत हटताला सी ।।
बडी–बडी बुंदन बखेरि पुहुपांजलि को,
धीरी पौन उघटि सुघटि पाँति आला सी ।
व्यौम रास–मंडल मे नृत्य करै स्याम घन,
आस–पास दामिनी बिराजै ब्रजबाला सी ।।२८४।।

*

स्यामल गात, मनोहर वेष, सुरेस–धनुष तन सुंदर सारी ।
दामिनि लामिन हू नभ में, लहराय झलाझल पीत किनारी ।।
साजि सिंगार फुहारन के करि, धारन हारन की लर प्यारी ।
आवत भूमि मनो नभ ते झुकि–झूमत, लूमत पावस नारी ।।२८५।।

बादर उतंग-अंग डोलत अनंग भरे,
बगन-कतार दंत दीरघ सँवारे है ।
चरखी चमक, तरकत औ गरज-गूंज,
बरषै मदन निसि नीर के पनारे है ॥
'सोमनाथ' प्यारे नँद-नद के बिरह जानि,
ब्रज मे कुमंगन करोर हनकारे है ।
आए घन भारे, मै बिचार उर धारे अरी !
कारे रग वारे, ए मतंग मतवारे है ॥२८६॥

*

मद भरे झूमै, नभ-भूमै परसत आवै,
भारे कजरारे कारे अति उनए नए ।
'द्विजदेव' की सौ, बक-पाँतिन के व्याज बहु,
दंतन सँवारे न्यारे-न्यारे छवि सो छए ॥
धीर धुनि बोलै, डोलै दिगति-दिगंतनि लौ,
ओज भरे अमित, मनोज फरमार ए ।
पावस पठाए आए, धीर-तरु तोरिवे को,
नीरद न होहि, मन-मथन मतग ए ॥२८७॥

*

झूमत झुकत भूमि-भूमि घूमि-घूमि चले,
भूमि सो भिरत मनो बल के उमंग ये ।
बार-बार गरज सुनावै बरजे न जाँहि,
नही है उदार, धार मद के तरंग ये ॥
दंत बक-पाँति तें डरावै बिन कंत भारे,
अंकुस समीर हू न मानै कारे रंग ये ॥
करिऐ सहाय आय, या छिन मे स्याम घन,
होहि न सघन घन, मदन मतग ये ॥२८८।

*

नाँचत मोर, नँचावत चातक, गावत दादुर आरभटी मे ।
कोकिल की किलकार सुनैं, बिरही बपुरे विष-घूँटैं घटी मे ॥
अंबर नाल घनी घनमाल, सु भूमि बनी बनमाल तटी मे ।
साँवरे-पीत मिलै झलकै, घन-दामिनि से घन स्याम पटी मे ॥२८६॥

दमकि दसौ दिसा दुनाली दौड दामिनी की,
घन के नगारे भारे उर उलझन के ।
झनकै झनाक, झुंड झींगुर बिगुल बाजै,
सनकै समीर तीर, सुक्र सरासन के ॥
सनकै समर मद मेचक झिलम धारै,
ठनकै नकीब दरप दादुर दमन के ।
मनकै मदन, बिन कामिनि कदनकै, ये-
आए बीर! बादर, बहादर मदन के ॥२६०॥

*

लागत अषाढ, दल साजि चढयौ मेरे पर,
घेरै लेत मोहि बोलि टेरै जल सरजे ।
झिल्लिन के झुंड, बक-झुंड तें सुभट संग,
बोलत नकीब केकी काकै रहै बरजे ॥
चंचला निसान आसमान फहरान लागे,
'भूधर सुकवि' कहै, येही पंचसर जे ।
आधे-आधे बैन कहि राधे मे रह्यौ न चैन,
मैन पादसाह के नगारे आनि गरजे ॥२६१॥

*

चंचला सी चौकति, चहुँघा आँसू बरषत,
फैलै तम केस की न सुधि उर धारी है ।
इंद्र कोप झारी है, अँगारी बिरहागि बारी,
भूषन जड़ाऊ जोति रंगन बिसारी है ॥
'संकर' बखानै, ये पपीहा पीव-पीव रटै,
लाज हस जामै, गति दूर की निहारी है ।
सोभा लखि न्यारी, मन आपने बिचारी,
बरषा है ये भारी, कै बियोग वारी नारी है ॥२६२॥

*

झर नाँहिं, बराबर बान जुरे, बक नॉहि, लगी पर ऊपर है ।
जुगुनू गन बूंदन एकन आगि, परै भिरि भालन कौ भर है ॥
मुरवा अरु चातक-दादुर सोरन, जंतु कुलाहल कौ गर है ।
बिरही जन जीवन के बध कौ, बरषा न सखी! सर-पंजर है ॥२६३॥

स्याम छबि प्यारे फिरै, धुरवा धरनि छूवै री,
इंद्र-धनु पीत पट चटक दिखायौ है।
दामिनि-दमकि दुति देत बेर-बेर सोई,
कुंडल अमोल लोल गति चमकायौ है॥
बिसद बलाकन की पाँति बनमाल, अति-
मंद-मद मेद बाँसुरी लौं स्वर गायौ है।
आवन अवधि रही, प्यारे मनभावन की,
सावन सुहावन सो साज सजि आयौ है॥२६४॥

*

धमकि नगारन सो मेघन गरजि कीन्हो,
चपला चमकि किरपान दरसायौ है।
भूपति मनोज की ध्वजान फहरान लागी,
बक मँडरान आसमान भरि छायौ है॥
दादुर नकीब चहुँ ओर सो पुकार करैं,
मोरन की हाँक सुनि सुरन जनायौ है।
ऐसे समै जानि कै गुमान मत ठान प्यारी,
गाढ़े दल साजिकै असाढ़ चढि आयौ है॥२६५॥

*

नील पट तन पर घन से घुमाइ राखौ,
दंतन की चमक छटा सी बिचरति हौ।
हीरन की कीरन लगाइ राखौ जुगनू सी,
कोकिल-पपीहा-पिक बानी से भरति हौ॥
कीच अँसुवान के मचाइ 'कवि देव' कहै,
बालम बिदेस कौ पधारिबौ हरति हौ।
इन्द्र कैसौ धनु साजि, बेसर पहरि आजु,
रहु रे बसत ! तोहि पावस करति हौ॥२६६॥

*

चपला चट, मोर किरीट लसै, मघवा घन छोभ बढ़ावत है।
मृदु गावत आवत, बीन बजावत, मत्त मयूर नँचावत है॥
उठि देखि भटू ! भरि लोचन, चातक चित्त की ताप बुझावत हैं।
घनस्याम घने घन वेष धरै, सो बने बन तें ब्रज आवत है॥२६७॥

कंपू बन-बागन, कदंब कपतान खरे,
सूबेदार साहब समीर सरसायौ है ।
कहै 'पद्माकर' तिलगी भीर भृ गन की,
मेजर तमूरची मयूर गुन गायौ है ॥
का हट करै है, घरराहट अटानन की,
ये ही अरराहट अराबन कौ छायौ है ।
मान मुख भगी सफजगी ये निसंगी लिऐं,
रंगी रितु पावस, फिरगी बनि आयौ है ॥२६८॥

*

तरल तिलंगन के तुंग तेह तेजदार,
कानन कदंब कौ, कदब सरसायौ है ।
सूबेदार मोर, बग-दादुर हबलदार,
जमादार औ तबूर पिक मनभायौ है ॥
'ग्वाल कवि' बाढै गरराट घन गहन की,
कंपनी कौ कंपू, झला होय छवि छायौ है ।
भूपत उमगी, कामदेव जोर जगी, ग्यान-
मुजरा को पावस, फिरंगी बनि आयौ है ॥२६६॥

*

घटा घन छतरी पै बग-पाँति झाल रहे,
इंद्र-धनु बाँस, रग विविध मढ़यौ फिरै ।
दामिनी दमक सोई झंझा की झमक मानो,
बेलि हरी भूमि वृच्छ तकिया कढ़यौ फिरै ॥
'बीर' कहै सीतल समीर ही कहार किऐं,
धुरवा खवास रास बिध सो बढ़यौ फिरै ।
प्यारी पहिचान, पति-पतिनी की पौरि-पौरि,
पंचवान पावस की पालकी चढ़यौ फिरै ॥३००॥

*

घोर घटा घहरै नभ मडल, तैसिय दामिमि की दुति जागत ।
धावत धूर भरे धुरवा, मुरवा गिरि-स्टृंगन पै अनुरागत ॥
फैली नई हरियारी निहारि, सयोगिन के हियरा सुख पावत ।
रीति नई रितु पावस मे, ब्रजराज लखे रितुराज से आवत ॥३०१॥

सोहत सुभग बैल बाहन बिमल वायु,
बिसद बकाली सेष-हार लपटायौ है ।
आदर सो लाय बर बादर विभूति अंग,
दादुर उमंग धुनि डमरू बजायौ है ॥
कारी घटा गज छाल, धारा जटा है बिसाल,
दामिनि-छटा त्रिसूल सुंदर सुहायौ है ।
काटि हैं कलेस, मोद देहै री भटू विसेष,
धरिकै महेस-भेष सावन लखायौ है ॥२०२॥

★

घन की घनक घन-घटा घनकत आली,
दामिनि दमक देत दीपक प्रकास है ।
बूंदन के फूल जाल धनु लै बिसाल माल,
आए झुकि मेघ, सो प्रनाम कौ हुलास है ॥
मोरन के सोर चहुँ ओर विनय 'दीनदयाल',
पवन झकोर जोर करौ आस-पास है ।
पूजन करत प्रीति-रीति प्रकटाय, ये—
पावस न होय, परमेसुर कौ दास है ॥२०३॥

★

अंकुर कुसुम इंद्रबधू गन चहुँ ओर,
करिकै भगौहै राखे सूखिबे को पट है ।
रूप घनस्याम घटा छटा सिर सोहत है,
जल ही विभूति भूति पौन ताके तट है ॥
हहरि अवाज सुनी जात घर-घर जाकी,
भरिगौ तलाब बड़ौ खप्पर अघट है ।
जग के वियोगिन को काम निसि-दिन बाढ़्यौ,
सावन ह्वै योगी यो दिखायौ मरघट है ॥२०४॥

★

कढ़ी दिसि दक्खिन तें, घोर घन-घटा चढ़ी,
बढ़ी बिरही को दुख दैन ही को नम है ।
'ठाकुर' झरोखै ह्वै, तनक ताकी तीय कह्यौ,
तू री ताकि आली या उतंग रंगतम है ॥

कह्यौ वाहि मेघ सो न मानै कहै जानै तन,
गरजत आवै, यासो जान्यौ योग हम है ।
है न बिज्जु, होत किरवारौ दड चम-चम,
जीव आनै आवत जमात जोरें यम है ॥३०५॥

★

गरज पुकार सो बियोगी तन छार भए,
बुंदै विष बारि परै महा विषधारी के ।
धुरवा अनेक फन मंडन को बिज्जु मनि,
चमकि-चमकि चित्त होत नर-नारी के ॥
बौरै फैन झरै, वायु मत्र सो सँचार करै,
देसन मे रोरि परै 'सूरत' डरारी के ।
भामिनि भँडारे, विष बामी तें निकारे कान्ह,
फिरै घन कारे, नाग पावस खिलारी के ॥३०६॥

★

घूमत घुमड मतवारे से महान घन,
धूमत नगारे ज्यो धुकार धुनि सो मढ़े ।
धुरवा धमक अद्भुत से तमक उठी,
दामिनी दमक चारो ओर अस्त्र से कढ़े ॥
ऐसी सुधि पावस प्रबल दल 'दयाराम',
आयौ बिरहीन पै अतक अति ही बढ़े ।
बरषा लगी री बाम बान बरखा सी होत,
करखा से पढ़त मयूर गिरि पै चढ़े ॥३०७॥

★

आए से अमल झलाझल हू के टोपै सबै,
विधि कारीगर ने विचित्र बिसतरे है ।
रंगत गरूरे, लाल लहर ललाम लौने,
छवि की उमंगन सुहाए जल भरे है ॥
'ठाकुर' कहत पूरे पानिप के मेरी बीर !
सुखमा भरे है, तातें उपमा न करे हैं ।
पावस फकीर के, कै मदन अमीर के, ये-
बासन चिनी के, नीके ठौर-ठौर धरे है ॥३०८॥

स्याम सम बादर, तडित पीत चादर से,
आदर सी बात लगै मीठी घन घोर से।
छाती बनमाल सें लसै है धुन 'देवराज'
मोतिन की पाँति बक बसी टेर मोर से।
भनत 'दिवाकर' सु आनन निसाकर से,
हीरन से जुगुनू धमारन के सोर से।
ए रे पापी पावस! अमावस की राति अस,
कस अनुहारि पिय तोरे मन चोर से॥३०९॥

*

उमडि–उमड़ि नदी–नद कूल बोरत है,
जोर जलधारन सो सूझत कहूँ ना है।
परम प्रचड पौन धावनि त्यो धुरवा की
झिल्लिन कौ सोर सुनै होत कान सूना है॥
'गिरिधरदास' महा बिज्जु कौ प्रकास सोई,
लागै दीह दुसह दवानल सौ दूना है।
एरी बाल जोई, स्याम बिनु सुख खोई, ये–
पावस न होय, प्रलय–काल कौ नमूना है॥३१०॥

*

स्याम घटा नाँहि, एतौ धूम की छटा है छाई,
बीजुरी कहाँ है, एतौ झाकै उठै धुर मे।
गरज कहाँ है, घोर फाटै ऐसी थवन की,
जुगुनू कहाँ है, एतौ चिगै उठैं सुर मे॥
मेघ बुंद नाँही, ये बुझावत फिरत 'देव',
तिनही के छीटा देखि आवत अतुर मे।
लाल बिन दावादल अबकै बचावै कौन,
ए री! आग लागी है पुरदर के पुर मे॥३११॥

*

घन घोरन घोर निसान बजै, बगुलान धुजा–गन खेचर कौ।
चपलान 'गुलाब' कृपान कटी, जलधारन ही भर है सर कौ॥
धुनि दादुर-चातक–मोरन की कुलाहल है अरि के घर कौ।
धरि धीर हिए, बरषा न भट्ट, गिरि ऊपर कोप पुरंदर कौ॥३१२॥

'सेनापति' उनए नए जलद सावन के,
चार हू दिसान घुमरत भरे तोय कै ।
सोभा सरसाने, न बखाने जात काहू भाँति,
आने है पहार मानो काजर के ढोय कै ॥
घन सो गगन छयौ, तिमिर सघन भयौ,
देखि न परत मानो रवि गयौ खोय कै ।
चार मास भरि, स्याम निसा के भरम करि,
मेरे जान याही तें रहत हरि सोय कै ॥३१३॥

★

दैहौ दृग अंजन तिहारे हठ मंजन कै,
पावक सो जावक, हौ पाँयन दिवाय हौ ।
सूहौ सिर सारी,डारि भूलि हौ हिडोरे माँझ,
धीरे से सुरन कछु गुन-गन गाय हौ ॥
हठ नाँही कीजै, हाहा रच्छाकर बाँधिवे की,
सुनउ सयानी ! याकौ भेद हौं बताय हौ ।
मेरे तन-ग्राम बैठौ बिरह 'नरेस' नाम,
ह्वैहै चिरंजीव, यातें भूलि ना बँधाय हौ ॥३१४॥

★

आयौ रितु पावस लौ यौवन चढ़ाई करि,
सैसव कौ फंद बंद छोरन चहत है ।
ग्रीषम समान मिटयौ, जात गुरु-जन भीत,
पवन सुछंदता झकीरन चहत है ॥
काम कौ घनेरौ घन, बरसि सनेह बुंद,
तन-मन-प्रान सबै बोरन चहत है ।
बयस नदी मे 'लाल' प्रेम कौ प्रवाह बाढ़यौ,
लोक-लाज-सीमा हाय तोरन चहत है ॥३१५॥

— शरद —



राशि—

कन्या+तुला



मास—

आश्विन-कार्तिक



अमल अकास, प्रकास ससि, मुदित कमल-कुल, कास ।
पथी पितर पायन नृप, सरद सु 'केसवदास' ॥

ऋ० २१

शरद्–परिचय



शरद भी एक मनोरम ऋतु होती है। यद्यपि इसका महत्व बसत और वर्षा के समान नही है, तथापि इसमे कुछ ऐसी विशेषताएँ है, जिनके कारण वह अन्य चार ऋतुओ की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानी गयी है।

वर्षा ऋतु निस्सदेह अत्यत सुहावनी ऋतु होती है, किंतु दिन–रात की झडी, बाढ़, कीचड, मच्छड़ और बीमारी के कारण उससे भी मन ऊबने लगता है। उस समय शरद की शात, शीतल और सुखद ऋतु लोगो को हर्ष और सतोष प्रदान करती है।

घनघोर वर्षा के कारण स्थान–स्थान पर एकत्रित कीचड़ और पानी शरद के आगमन होते ही सूखने लगता है। नदी–नालो मे भयंकर बाढ आ जाने के कारण आवागमन में जो वाधा उपस्थित हो गयी थी, वह अब दूर होने लगी है। राहगीर और पथिक जन अब स्वच्छदता पूर्वक यत्र–तत्र आने–जाने लगे है। सर–सरिताओं का गदला जल निर्मल होने लगा है। तालाबो में कमल के खिले हुए फूल और उन पर भ्रमर गण गुजार करते हुए दिखलायी देते हैं।

वर्षा ऋतु में आकाश मडल प्राय मेघाच्छादित रहता था, इसलिए रात्रि में चद्रमा के दर्शन कठिनता से होते थे। अब शरद के आते ही आकाश निर्मल हो गया है। कृष्ण पक्ष को रात्रि मे तारागण चमचमाते हुए दिखलायी देते है, और शुक्ल पक्ष की रात्रि में चद्रमा का पूर्ण प्रकाश फैल जाता है।

शरद ऋतु के चद्रमा का प्रकाश और उसकी चाँदनी–विशेष रूप से दर्शनीय है। कवियों ने बड़े उल्लास पूर्वक इनका मनोहर वर्णन किया है। उनकी दृष्टि में चंद्र और चद्रिका के कारण ही इस ऋतु का अत्यधिक महत्व है। वास्तव में शरद की चाँदनी रात इतनी अधिक प्रभावोत्पादक है कि इसे देख कर मुरझाए हुए मन भी खिल उठते है। इसके कारण उदासीन और विरक्त व्यक्तियों के मनों में भी गुदगुदी पैदा होती है और वे केलि–क्रीड़ा और आनद–विहार की ओर आकर्षित होते हैं।

शरद ऋतु की इसी मनोरम चाँदनी रात में भगवान् कृष्ण की भुवन-मोहनी वशी बजी थी, जिसे सुन कर ब्रज की सहस्रों गोपियाँ अपनी सुध–बुध भूल कर और अपने आत्मीय जनो को त्याग कर अकेली दौड़ पड़ी थीं!

भगवान् श्री कृष्ण ने गोपियों की इच्छानुसार उसी सुखद वातावरण मे उनके साथ गायन-वादन और नृत्य सयुक्त रास-क्रीडा की थी। शरद ऋतु की निस्तब्ध एव नीरव रात्रि मे सु दरी ब्रज-बालाओं के ककन-किंकिनि और नूपुरों की झनकार, उनके अग-सचालन और पदाघात के कोमल मधुर रव तथा गायन-वादन की ताल-स्वर युक्त सगीत-ध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज उठी थी।

ब्रजभाषा कवियो ने शरद ऋतु के मोहक प्रभाव के अतिरिक्त उसके प्रकाशमान चंद्र और उसकी उज्ज्वल चद्रिका का विशेष रूप से वर्णन किया है। इसके साथ ही उन्होंने कृष्ण की बशी और उनकी रास-लीला का भी ऐसा प्रभावशाली एव विस्तृत कथन किया है, जिसे पढ कर और सुनकर सहृदय एव रसिक जनों के मुख से अनायास वाह-वाह की ध्वनि निकल पडती है!

आश्विन

प्रथम पिंड हित प्रगट, पितर पावत घर आवै ।
नव दुरगन नर पूजि, स्वर्ग अपवर्गहि पावै ।।
छत्रन दै छितिपतिहि, लेत भुव लै सँग पंडित ।
'केसवदास' अकास अमल, जल-थल जन मंडित ।।
रमनीय रजति-रजनी सरुचि, रमा-रमन हू रास-रति ।
कल केलि कलपतरु क्वार महिं, कंत न करहु बिदेस गति ।।१।।

**

केतकी-कुमुद-कंज, केबरा-कदंब-कुंद,
कुसुम कलित भए कानन कतार मे ।
कुंज-कुंज केकी-कीर-कोकिला कलोल करे,
कोकी-कोक किलके, त्यो कालिंदी-कछार मे ।।
कीरति-कुमारी कंज-नैनी कल कमला सी,
काम की सी कलना कलित करतार मे ।
'गिरिधरदास' करै केलि कोक कलाधर,
कोटि-कोटि भाँति कान्ह कुँवर कुवार मे ।।२।।

**

कातिक

कलित कलाधर मे कुंद कलिका कतार,
कंज पै कमान कीर पावस विकल है ।
कानन मे करनफूल । 'गिरिधरदास', काति-
कुंदन सी, केहर सी कमर कुसल है ।।
कुंतल कुटिल कंठ कंबु सी कपोत मोहै,
देख कलिताई काम-कामिनी कतल है ।
ऐसी कमनीय कंजमुखी कंत कान्हर सो,
करै केलि कातिक में करन कमल है ।।३।।

**

बन-उपबन, जल-थल-अकासु, दीसंत दीप गन ।
सुख ही सुख दिन-राति, जुवा खेलत दंपति जन ।।
देव चरित्र विचित्र, चित्र चित्रित आँगन-घर ।
जगत-जगत जगदीस, जोति जगमगति नारि-नर ।।
दिन दान-न्हान गुन-गान हरि, जनम सफल करि लीजिऐ ।
कहि 'केसवदास' विदेस मत, कंत न कातिक कीजिऐ ।।४।।

शरद



शरद्-विहार

(राग बिहागडौ)

जमुना-पुलिन मल्लिका फूली, सरद्-चंद उजियारी ।
मंडल बीच स्याम घन सुदर, राजत गोप कुमारी ।।
प्रगटित कला अनूप रूप तिहि, औसर लाल बिहारी ।
सीस मुकुटकु डल की झलकनि, अलक बनी घुँघरारी ।।
कंबु कठ ग्रीवा की डोलनि, छीनि लई लहकारी ।
धाय-धाय झपटत, उर लपटत, उडपति-रविगति न्यारी ।।
निरतत-हँसत मयूर मडली, लागत सोभा भारी ।
वेनुनाद-धुनि सुनि सुर-नर-मुनि, तन की दसा विसारी ।।
'श्री विट्ठल गिरधरन' लाल की, वानिक पर बलिहारी ।।५।।

(राग केदारौ)

सरद्-उजियारी कैसी नीकी लागै, निकस कुज तें ठाड़े ।
वरन-वरन के फूल, फूलन के आभूषन, सोधे भीजे बागे ।।
गावत राग-रागिनी यो मिल, मन मिल्यौ राग, केदारौ रागे ।
'हरिदास' के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी, कछुक रजनी जागे ।।६।।

(राग केदारौ)

श्री राधिका सग सरद्-रजनी उदित पून्यौ चंद ।।
विविध चित्र विचित्र चित्रित, कोटि-कोटिक बद ।
निरखि-निरखि विलास विलसत, दपती सुख-कद ।।
मलय चदन अंग लेपन, परस्पर आनंद ।
कुसुम-बीजना व्यार ढोरत, सजनी 'परमानंद' ।। ७ ।।

(राग केदारौ)

नव निकुंज नव भूमि रगमगी ।
नवल बिहारीलाल लाडिलौ, नवल सरद की जोन्ह जगमगी ।।
नव सत साजि सकल अँग सुदरि, नवल बदन पर अलक सगवगी ।
'श्रीविट्ठलविपुल' बिहारी के अँग सँग, लाडति लाड़लि सहज उर लगी।।८।।

शरद-रास

(राग-बगाल)

नृत्यत रास कमल-दल-नैन ।
सरद सुरैन अति सुख-दैन ॥

श्रीबृंदावन बसीवट तट, जमुना-पुलिन पवित्र ।
पूरन चंद अमंद किरनि करि, रजित रुचिर विचित्र ॥
नवल फूल फूले अनुकले, नाना रग सुरग ।
मधुकर-पुज लुब्ध मधु गुजत, लिऐ संग अरधग ॥
त्रिविध-पवन मन-रवन सहायक, सुखदायक सब काल ।
परसत अंग-अंग सचुपावत, उपजावत रस-जाल ॥
द्वैद्वै बीच साँच एक-एक तन, विहरत स्याम सुदेस ।
कनक-कनी बिच मनहुँ नीलमनि, सोहत सुघर सुबेस ॥
मध्य जुगल मनहरन बिराजत, छाजत छवि जु अपार ।
राग-रंग बहु भाँति भेद भर, तरत रंग बिस्तार ॥
नूपुर कंकन-किंकिनी की धुनि सुनि लज्जित कल हस ।
भुज फरकनि, तरकनि कंचुकि, कच छुरि जु रहे दुरि अंस ॥
कुडल-झलकि ढलकि सीसनि की, भलक भाल छवि देत ।
पलक ललक नग चलक कलक मुख, वलक सगीत सहेत ॥
पग-पटकनि, पट-झटकनि, खटकनि, भूषन-नख चटकानि ।
लटकनि हार, मुखन की मटकनि, अग अंग लटकानि ॥
मंद हँसन, भौहन की लसन सु खुलनि कसनि तन कूल ।
रसन बसन तन सिथिल सुस्रम-कन किरनि सिरन ते फूल ॥
पावन धावन धरनि सुहावन, चावनि नृत्य करते ।
गावन सुरहि मिलावन पियहि रिझावन वच उचरंते ॥
बसी बजावें, ग्राम जमावे, कल सुर अधिक चढ़ाय ।
निकट आय परसावे उर वर, अद्भुत तान बढ़ाय ॥
डोलन मुकुट, सुकुडल लोलनि, थेइ-थेइ बोलनि बोल ।
पट झट-झोलनि, ओप अतोलनि, ढरि-ढरि दैन तँबोल ॥
परसत, भरसत, सरसत तन, मन मधुर सुधा-रस पाय ।
स्रमित जानि, स्रम-कन पिय पोछत, कहि रस-बैन सुहाय ॥
क्रीड़त बहुगत रास-विलासहिं, थकित भए दोउ चंद ।
'रूपरसिक' ये सोभा निरखत, बाढ़त अति आनंद ॥ ६ ॥

(राग टोडी)

विसद कदंब सघन वृंदावन,
रच्यौ रास तरनि–तनया–तट ।
सरद–निसा, उडुपति–उजियारी,
पूरयौ नाद मुरली नागर नट ॥
स्रवन सुनति चली ब्रज–सुंदरि,
साजि सिंगार पहिर भूषन–पट ।
अति हुलास कुमुदिनी प्रफुलित,
निरखि लाल ठाडे बंसी–वट ।'
मंडल मधि नाँचत पिय–प्यारी,
गावत स्वर टोडी तान बिकट ।
'दास सखी' देखत नैनन भरि,
वारि–फेरि डारौ कोटि मदन भट ॥१०॥

*

फूली कुमुदिनि सरद सुहाई ।
जमुना तीर धीर दोउ बिहरत, कमल नील पीत कर माई ॥
नील–बरन स्यामा रुचि कीनी, अरुन बरनता हरि मनभाई ।
'श्रीभट' लपटि रहे अंसनि कर, मानो मरकत–कनक जराई ॥११॥

(राग खट)

रास–विलास रच्यौ नागर नट ।
जुरि मंडल निर्तत ब्रज–वनिता,
नवल निकुंज सुभग यमुना–तट ॥
उपजत तान बंधान सप्त स्वर,
बाजत ताल मृदंग, बीन–रट ।
सन्मुख ह्वै नाँचत पिय–प्यारी,
लेत सुगंध चाल गति अटपट ॥
रसिक बिहार निरखि ससि हारयौ,
सरद–निसा भूल्यौ अपनी अट ।
'कृष्णदास' गिरिधर श्री राधा–
राजत, मेघ मानो दामिनि–घट ॥१२॥

(राग सारग)

करत हरि नृत्य नव रंग राधा सग,
लेत नव गति भेद चरचरी ताल के ।
परसपर दरस, रसमत्त भए, ततथेई-
थेई गति लेत सगीत सु रसाल के ॥
फरहरत बरही वर, थरहरत उर-हार,
भरहरत भ्रमर वर, बिमल बन-माल के ।
खसित सित कुसुम सिर, हँसत कुंतल मनो,
लसत कल भलमलत, स्वेद-कन-माल के ॥
अंग-अंगन लटक, मटक भृंगन भौह,
पटक पट, ताल कोमल चरन-चाल के ।
चमक चल कुंडलन, दमक दसनावली,
विविध विद्युत भाव लोचन विसाल के ॥
बजत अनुसार द्रिम-द्रिम मृदग-निनाद,
झमक झकार कटि-किंकिनी भाल के ।
तरल ताटंक तडित, नील नव जलद मं,
यो विराजत प्रिया पास गोपाल के ॥
जुबति जन जूथ, अगनित बदन चंद्रमा,
चंद भयौ मद उद्योत तिहिं काल के ।
मुदित अनुराग बस, राग-रागिनी तान,
गान गति गर्व रंभादि सुर-बाल के ॥
गगन-चर सघन रस मगन बरषत फूल,
वारि डारत रत्न जटित भर थाल के ।
एक रसना 'गदाधर' न बरनत बनै,
चरित्र अद्भुत कुँवर गिरिधरनलाल के ॥१३॥

(राग बिहागड़ो)

निरतत रास मे पीय-प्यारी ।
जमुना-पुलिन सुभग बृंदाबन, सरद चंद उजियारी ॥
बाजत ताल मृदग-झाँझ-ढप, सप्त सुरन गति न्यारी ।
उरप-तिरप गति लेत सुलप अति, लाड़िली-लाल बिहारी ॥
जै-जै कहि बरसत कुसुमावलि, सुरन सहित सुरनारी ।
'श्री विट्ठल गिरिधरन' लाल पर, सरवस डारत वारी ॥१४॥

(राग भैरव)

वृंदावन उज्जल वर जमुना-तट नंदलाल,
गोपिन सँग रहस रच्यौ सरद-जामिनी ।
निरतत गोपाललाल,सँग मे ब्रज-बाल बनी,
अद्भुत गति लेत कोक कलित कामिनी ॥
लाग डाँट सुर-बँधान, गावत अचूक तान,
ततथेइ-ततथेइ थेई गति अभिरामिनी ।
गोपिन सँग स्यामसुंदर मंडल मधि सोभित अति,
बिहरत बहु रूप मानो मेघ-दामिनी ॥
थाक्यौ नभ चंद,देखि रैनि-गति,सिथिल भई-
लखि हरि गजपति संग गज-गामिनी ।
'हरीचंद' सोभा लखि, देव-मुनि नभ बिथकित,
मानी हरि साथ सबै ब्रज-भामिनी ॥१५॥

(राग नट)

आजु बन नीकौ रास रचायौ ।
पुलिन पवित्र सुभग जमुना-तट, मोहन बेनु बजायौ ॥
कर-कंकन किंकिनि-धुनि नूपुर, सुनि खग-मृग सचुपायौ ।
युवती मंडल मध्य स्याम घन, नट-नारायन गायौ ॥
ताल मृदंग, उपंग, मुरज, ढप, मिलि रससिंधु बढायौ ।
विविध विसद वृषभानु-नंदिनी, अंग सुधंग दिखायौ ॥
अभिनय निपुन लटक-लट लोचन, भ्रकुटि अनंग लजायौ ।
ततथेइ-ततथेइ लेत नौतन गति, पति ब्रजराज रिझायौ ॥
परम उदार रसिक चूडामनि, सुख-वारिद बरसायौ ।
परिरंभन, चुंबन, आलिंगन, उचित जुवति जन पायौ ॥
बरषत कुसुम मुदित नभ-नायक, इंद्र निसान बजायौ ।
'हित हरिवंस' रसिक राधापति, जस-वितान जग छायौ ॥१६॥

(राग टोडी)

निरतत राधा-नंदकिसोर ।
ताल मृदंग सहचरी बजावत, बिच-बिच मोहन मुरली कल घोर ॥
उरप-तिरप पग धरत धरनि पर, मंडल फिरत भुजन-भुज जोर ।
सोभा अमित विलोकि 'गदाधर', रीझि-रीझि डारत तृन तोर ॥१७॥

शरद्-छवि

आओ लखै छवि सरद की, करि दूरि संसय भूरि ।
मिलि लेहि स्वागत तासु, जास उजास चहुँघा पूरि ॥
नहि प्रात बात समान अंग, उमग हिय अधिकाय ।
जलजात-पातन कोर हिम, जलकीय चचल आय ॥
मालती सौरभ, चमेली छिटकि, कलिकनि पास ।
नदि-कूल फूले लखि परत, बहु स्वेत-स्वेत जु कास ॥
जहँ कंज बिकसित, कुमुद बहु, अरु केतकी कल कंज ।
गुंज कर रस लेत, दीसत रसिक षटपद पुंज ॥
पिय-पीय पपिहा करि रह्यौ, अब कहँ मिलै जल-स्वाँति ।
उन्नत मुखहि करि व्यौम दिसि नहि लखत मोरन-पाँति ॥
गरद बिन छित, सालि सोहत जरद बहु लहराय ।
पकहु नसानी, सक का की ? चलहि सब इतराय ॥
नील निरमल नभ लसै, निसिनाथ मंजु प्रकास ।
सुंदर सरोवर सलिल मे, ता सुघर छाया-भास ॥
चारु चमकनि चाँदनी, चूनर धरै छवि-जाल ।
माधुर्य मय ससि जासु मुख, उडुगन सुमौक्तिक माल ॥
नील उत्पल चारु चख, औ चपल लहरी सैन ।
मानहुँ चलावति मोहिवे युव जन उरहि सुख दैन ॥
सारस सरस स्वर गान, मनु कटि किंकिनी सरसाय ।
रव मत्त बाल मराल नूपुर कलित ध्वनि जनु छाय ॥
कुसुम कुसुमित काँस के मधु हास सोभा पाय ।
रितु-सारदी, किधौ कामिनी कमनीय ये दरसाय ॥
'सतदेव' प्रेमिन प्रेम बस टरकाय पावस धाय ।
सज्जन दरद-दारक प्रिये ! आयौ सरद सुखदाय ॥१८॥

*

बोरत प्रेम-पयोनिधि मे, रितु सारदी आई दया निज जोरत ।
टोरत-फोरत ग्रीषम कौ बल, बारिद कौ बल तोरत-मोरत ॥
लोरत खंजन पै 'सतदेव जू', छोरत काँस मे साँस बहोरत ।
चोरत मंजु चितै चित चायनि, चाँदनी चारु पियूष निचोरत ॥१९॥

*

अरुन सरोरुह कर-चरन, दृग खंजन, मुख चंद ।
समय आइ सुंदरि सरद, काहि न करति अनंद ॥२०॥

शरद-वर्णन

हंस-उर मोद छए, खजन प्रगट भए,
पथिन ने पथन की ताप बिसराई है ।
पल्लव नवीन भए, सुमन रँगीन भए,
मीन भए मुदित, अमल जल पाई है ॥
'लाल बलबीर' मनमोहन मगन भए,
जाय बनराज जू मे बाँसुरी बजाई है ।
बिमल अकास भए, चद के प्रकास भए,
तिमिर के नास भए, सरद रितु आई है ॥२१॥

*

पावस विकास, ताते पायौ अवकास, भयौ-
जोन्ह कौ प्रकास, सोभा ससि रमनीय को ।
विमल अकास, होत वारिज विकास,
'सेनापति' फूले कास, हित हंसन के हीय को ॥
छिति न गरद, मानो रँगे है हरद, सालि-
सोहत जरद, को मिलावै हरि पीय को ।
मत्त है दुरद, मिटयौ खंजन-दरद,
रितु आई है सरद, सुखदाई सब जीय को ॥२२॥

*

कातिक की रात, थोरी-थोरी सियरात, 'सेना-
पति' है सुहात, सुखी जीवन के गन है ।
फूले है कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूल रहे तारे, मानो मोती अनगन है ॥
उदित बिमल चंद, चाँदनी छिटकि रही,
राम कैसौ जस, अध ऊरध गगन है ।
तिमिर हरन भयौ, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर-सागर मगन है ॥२३॥

*

चद्रमा-प्रकासन में, चंदमुखी-हासन मे,
अवनि-अकासन मे, कासन मे छाई है ।
'नंदराम' तालन में, इदीवर-मालन मे,
चंचरीक-जालन में अधिक अमाई है ॥

मल्लिका की डारिन मे, मालती कियारिन मे,
फूली फुलवारिन मे, मौगुनी सोहाई है ।
काम कैसी खेतिन मे, बालुका समेतिन मे,
सूरसुता-रेतिन मे सरद समाई है ।।२४।।

*

मोरन के सोरन की नैकों न मरोर रही,
घोर हू रही न, घन घने या फरद की ।
अबर अमल, सर-सरिता विमल, मल-
पक कौ न अक, औ न उडनि गरद की ।।
ग्वाल कवि' चहूँघा चकोरन कें चैन भयौ,
पंथिन की दूर भई दूखन-दरद की ।
जल पर, थल पर, महल अचल पर,
चाँदी सी चमकि रही, चाँदनी सरद की ।।२५।।

*

बन-उपबन, निरझर-सर सोभा मने,
अवर-अवनि कल बल बरसावनी ।
हस जल रचित, खचित थल-बनन,
निसापति की सरित जुन्हाई सुखदावनी ।।
'ऋषिनाथ' मालती-मुकुद-कुद कुसुमित,
बास-पारिजात पारिजात बलि पावनी ।
मन अरुझावनी, रसिक चित भावनी,
रास-रग उपजाय रैनि सरद सुहावनी ।।२६।।

*

मोरन कौ सोर गयौ, घनन कौ घोर गयौ,
झींगुर कौ जोर गयौ, भौरन अनंद है ।
पपीहा की कूक गई, चकोरन की हूक गई,
दादुर की दूक गई, जुगुनू गन मद है ।।
'लाल बलबीर' अबै पावस कौ जोर गयौ,
सरद कौ सोर छयौ, बहत सुगंध है ।
तम कौ निवास गयौ, बिज्जु कौ प्रकास गयौ,
कैसौ ये अमंद आज दमदमात चद है ।।२७।

विविध बरन सुर-चाप के न देखियत,
मानो मनि-भूषन उतार धरे भेस है ।
उन्नत पयोधर बरसि रस गिरि रहे,
नीके न, लगत फीके, सोभा के न लेस है
'सेनापति' आए ते सरद रितु फूलि रहे,
आस-पास कास-खेत स्वेत चहुँ देस है ।
जोवन हरन कुंभ जोनि के उदै ते भई,
बरषा बिरध ताके स्वेत मानो केस है ॥२८॥

*

छिति पर देखो महा सौरभ सरस सुभ,
सौरभ सरस पर, सुरस सरद की ।
रस पर कहै 'स्यामसुंदर' झलक छवि,
छवि पर मारुत, जो जलद रारद की ॥
मारुत पै राजत गगन, सु गगन पर,
चाँदनी बिराजत, त्यो सारद सरद की ।
चाँदनी पै चद की मुसाहिबी दुचंद फबी,
चद की मुसाहिबी पै, साहिबी सरद की ॥२९॥

कासन के कुसुम बिकासन लगे है अंग,
कंज-कंज आसन पै चारुता चढै लगी ।
'सेवक' भनत छवि तारन कतारन त्यो,
तारन पिया की पुरहारन मढै लगो ॥
अवनि मे, अंबु मे, अकासनि मे आछी-भाँति,
ठौर-ठौर दीपन की दीपत कढै लगी ।
सेली को सकेलि कै, चमेली के चलत चाह,
बेली सम बनिता नवेली की बढै लगी ॥३०॥

*

आई रितु सरद, गगन विमलाई छाई,
खंजन की राजी कुंज-कुंजन बसै लगी ।
हरित-हरित पथ पथिक सिधारे पथ,
अकथ 'मुरारि' ओज जग बिलसै लगी ॥

सुमन-सरासन के सुमन-सरासन ते,
छूटिकै सुमन-सर अलिहि गसै लगी ।
तालन कमल फूले, कमल बितूले अलि,
अलि पर पीतिमा पराग की लसै लगी ॥२१॥

*

सुंदर सुखद पद, भजु मन तजि मद,
सद जानि मेरौ कह्यौ सरद-अनंद कौ ।
'द्विज बलदेव' कहै दर-दर सदन मे,
मदन के दूत भज दीन्हौ पूत नंद कौ ॥
दलित दुकूल द्रुम कदम कलिंदी के है,
इंदीबर बदन दुराव नापसंद कौ ।
दीपति दुगुन देस, दिसि दस हू मे देत,
दीरघ दराज दिल देखियत चंद कौ ॥२२॥

*

बिकसन लागे कल कुमुद-कलाप मंजु,
मधुर अलाप अलि-अवलि उचारै है ।
कहै 'रतनाकर' दिगगना-समाज स्वच्छ,
कास मिसि हास के बिलासन पसारै हैं ॥
क्वार-चाँदनी मे रौन-रेती की बहार हेरि,
याही निरधार ही हुलास भरि धारै है ।
जीत दल बादल के परब पुनीत पाइ,
कूल कालिंदी के चंद रजत बगारै है ॥२३॥

*

पौन अति सीतल न तपत सुगंध सने,
मंद-मंद बहत अनंद-दैन हारे है ।
कहै 'रतनाकर' सुकुसुमित कुंजन मे,
बठि उठि भ्रमत मलिंद मतवारे हैं ॥
छिटकति सरद-निसा की चाँदनी सो चारु,
दीपति के पुंज परै उचटि उछारे है ।
स्वच्छ सुखमा के परिपूरित प्रभा के मनों,
सुंदर सुधा के फूटि फबत फुहारे है ॥२४॥

बरन्यौ कबिन कलाधर कौ कलंक, तैसौ–
को सकै बरनि, तिन हू की मति छीनी है ।
'सेनापति' बरनी अपूरब जुगति ताहि,
कोबिद बिचारो कौन भाँति बुधि दीनी है ॥
मेरे जान जेतिक सो सोभा होत जान परी,
तेतिकै कलानि रजनी की छबि कीनी है ।
बढ़ती के राखे, रैन हू तें दिन ह्वै है, यातैं–
आगरी मयंक ते कला निकासि लीनी है ॥३५॥

*

अति ही अमंद, बंधु चद्रिका सुधाकर की,
पुंडरीक पथिक पिया को प्रतिकूल है ।
कहत 'किसोर' निसि नारि के हिए की मनि,
दरसावै कुँवर किसोरी दिन दूल है ॥
दरद हरन, वर परव को इदु स्वच्छ,
सरद सु इदिरा को, मुख सुख–मूल है ।
तारकन कलित मँझार चारु दुति, फूल्यौ–
अंतरिच्छ कलप–तरोवर सौ फूल है ॥३६॥

*

पथिक सुखद बिकसित कमल, अमल काम आकास ।
कुमुद बंधु युत कौमुदी, बरनिय सरद बिलास ॥
चंद्र छत्र धरि सीस पै, लहि अनंग उपदेस ।
कमल सस्त्र गहि जीति जग, लीन्हौ सरद नरेस ॥
घन–घेरौ छुटिगौ, हरषि चली चहुँ दिसि राह ।
कियौ सुचैनौ आय जग, सरद सूर नर–नाह ॥
दिन सोहत जल अमल है, निरमल कमल अनूप ।
निसि जोहत ही बाद बदि, हिय मोहत ससि रूप ॥
ज्यौ सरद राका–ससी, क्यो न करत चित चेत ।
मनहुँ मदन छितिपाल को, छाँहगीर छबि देत ॥
चंद बदन दरसाय, अरु खंजन चखनि चलाइ ।
सकल धरा को छलत मन, सरद अपछरा आइ ॥३७॥

नीर भए अचल सकल नद-नदिन के,
थकि रहे पंछी तन सुधि बिसराई है।
सुरभी समूह सुनि मौनी नो मगन भए,
छए उर मोद नये बैन सुखदाई है॥
'लाल बलबीर' थकि रहे चद तारागन,
सीतल समीर आय अंग लिपटाई है।
सरद रितु आई, सुखदाई मनभाई माई,
आज ब्रजचंद मिल बाँसुरी बजाई है॥३८॥

*

फूले अरबिंद-बृंद बिमल तडागन मे,
बागन चमेली खिली, सुखमा अमद है।
सीतल सुगध मद चलत समीर बीर,
प्यारे 'बलबीर' सग राधा सुखकद है॥
बहरै छबीले लखै लहरै कलिंदजा की,
देख छवि ताकी होत उरन अनद है।
जैसी ये दमकै आली! रेनु बनराज जू की,
तैसो ही चमकै चारु सरद कौ चंद है॥३९॥

*

मोदिनी के देखिए कुमोदिनी के ही के दीह,
दीपति दिपति दीप दुति उपटान की।
लोक-लोक लोकन के थोकन बिनोद बाढौ,
सोभा सरसाई स्वच्छ सरित-तटान की॥
रंग भरी राजत नवीन रस राका रम्य,
सीतल सुगध गंध रजनी जटान की।
नदित चकोरै छवि छाकि सुख लूटैं लेत,
छूटै चंद्र-मंडल तें छहर छटान की॥४०॥

*

सिगरे दिन वारि पहार समेत, तची अति दुस्सह पूखन सो।
भई मली महा 'रघुनाथ' कहै, वहु छारि बयार के रूखन सों॥
पल डीठि लगाइ न जाइ लखी, इमि भूरि रही भरि दूखन सो।
सोई लीपर सौ ससि आवत है, दिसि भीजी पियूष-मयूखन सो॥४१॥

कमल सरद रितु सोहई, नरमल नील अकास ।
निसानाथ पूरन उदित, सोलहै कला प्रकास ।।
चारु चमेली बन रही, मह-मह महँकि सुवास ।
नदी-तीर फूले लखौ, सेत-सेत बहु कास ।।
बसन चाँदनी, चद मुख, उडुगन मोती-माल ।
कास फूलि मधु-हास, ये सरद, किधौ नव बाल ।।४२।।

*

सरसी निरमल नीर पुनि, चद-चाँदनी पीन ।
घन बरसे आकास अरु, अवनी रज है लीन ।।
अवनी रज है लीन, विमल तारागन सोभा ।
राजहस पुनि कीन, सकल हिमकर की जोभा ।।
इत सरवर, उत गगन दुहूँ, समता है परसी ।
'सेनापति' रितु सरद, अग-अगन छबि सरसी ।।४३।।

*

शरद-चंद्रोदय

दृगन 'किसोर' जो चकोरन को ताप कर,
कुमुद-कलाप मुकुली कर सुछद भौ ।
मानिनीन हू के मन-दरप दलित कर,
कदरप कदलित कर जग बद भौ ।।
मुद्रत कमल-अबली कर, तिमिर धबली-
कर, दिसान कबली कर, अनद भौ ।
अंबुध अमित कर, लोकन मुदित कर,
कोक अमुदित कर, समुदित चद भौ ।।४४।।

*

पिय देखत मानो रमा उभकी, मुख कुंकुम रजित भाजत है ।
रजनी उर कौ अनुराग इहै, किधौ मूरतिवंत बिराजत है ।।
किधौ पूरन चद सुछद उदोत, 'मुकुंद' सबै सुख साजत है ।
किधौ प्राची दिसा नव बाल के भाल, गुलाल कौ बिंदु बिराजत है ।।४५।।

शरद की चाँदनी

अमल अकास देख, ससि कौ प्रकास देख,
मिटी है चकोर-पीर बिरहा दरद की ।
प्रफुलित कजन पै गुंजत मधुप-पुंज,
झरत पराग मानो बरषा जरद की ।।
'लाल बलवीर' संग बिहरै बिहारी-प्यारी,
रही न निसानी, दिसि दसन गरद की ।
वृंदाबन-चंद जू की देखौ रेनु दमदमात,
चमचमात चारो ओर चाँदनी सरद की ।।४६।।

*

चम-चम चाँदनी की चमक चमकि रही,
राखी है उतारि कर चंद्रमा चरख ते ।
अंबर, अवनि, अंबु, आलऐ, विटप, गिरि,
एक ही से पेखे परे, बनै न परख ते ।।
'ग्वाल कवि' कहै, दसौ दिस ह्वै गई सफेद,
खेद कौ रह्यौ न भेद, फूली है हरष ते ।
लीपी अबरख तें, कै टीपी पुंज पारद ते,
कैधौ दुति दीपी, चारु चाँदी के बरख ते ।।४७।।

*

तालन पै, ताल पै, तमालन पै, मालन पै,
वृंदाबन-बीथिन बिहार बंसीबट पै ।
कहै 'पद्माकर' अखंड रास-मंडल पै,
मंडित उमंड महा कालिंदी के तट पै ।।
छिति पर, छान पर, छज्जत छटान पर,
ललित लतान पर, लाडिली के लट पै ।
आई, भलै छाई, ये सरद-जुन्हाई,
जिहि पाई छबि आजही कन्हाई के मुकुट पै ।।४८।।

*

छाई छपा दिन ज्यो दरसी, मिलिकै चकवान बियोग बिसार्यौ ।
सौगुनौ बाढ्यौ प्रकास दिसान मे, चौगुनौ चाव न जात उचार्यौ ।।
कैसी खिली है अलौकिक चाँदनी, 'नागर' ताकौ विचार विचार्यौ ।
राधे जू ऊँचे अटा चढिकै, कहूँ आज नीलांबर घूँघट टार्यौ ।।४६।।

पूरि रह्यौ छिति ते अकास लौ प्रकास-पुंज,
जामै लखि रजत-पहार गुमड़ी परै ।
पारद अपार 'रतनाकर' तरंग की सी,
सुखमा अभग चहुँ घेर घुमडी परै ॥
चमकत रेती चारु जमुना-कछार-धार,
बिपिन अगार झलमल झुमडी परै ।
राखी रुचि चद्रिका मनो जो बरषा भर की,
सोई चद ते ह्वै सतचद उमडी परै ॥५०॥

*

नगर-निकेत, रेत-खेत सब सेत-सेत,
ससि के उदेत, कछु देत न दिखाई है ।
तारिका मुकुत-माल, झिलिमिलि झालरनि,
बिमल बितान नभ-आभा अधिकाई है ॥
सामोद प्रमोद ब्रज-बीथिन बिनोद 'देव',
चहूँ कोद चाँदनी की चादरि बिछाई है ।
राधा मधुमालतिहि माधव मधुप मिलि,
पालिक पुलिन झीनी परिमल झाई है । ५१॥

*

फटिक-सिलानि सो सुधारयौ सुधा-मदिर,
उदधि-दधि की सी अधिकाई उमँगै अमंद ।
बाहर ते भीतर लौं भीतिन देखैए 'देव',
दूध कौ सौ फैन फैलौ आँगन फरसबंद ॥
तारा सी तरुनि, तामै ठाढी झिलमिलि होत,
मोतिन की जोति, मिली मल्लिका कौ मकरंद ।
आरसी से अंबर मे आभा सी उज्यारी लगै,
प्यारी राधिका कौ प्रतिबिब सौ लगत चद ॥५२॥

*

कातिक पून्यौ कि राति ससी, दिसि पूरब अंबर मे जिय जान्यौ ।
चित्त भ्रम्यौ पुमनिदु मनिदु फनिदु उठ्यौ भ्रम ही सो भुलान्यौ ॥
'देव' कछू बिसवास नहीं, सोई पुंज प्रकास अकास मे तान्यौ ।
रूप-सुधा अँखियान अँचै, निहिचै मुख राधिका कौ पहिचान्यौ ॥५३॥

दरन पै द्वारन पै, कलित किवारन पै,
द्रुमन पै, डारिन पै, लोनी लतिकान पै ।
हाटन पै, बाटन पै, नीके नव घाटन पै,
गेहन पै, सेजन पै, अमल अटान पै ॥
बागन पै, बन पै, निकुंजन पै, पत्रन पै,
फूलन पै, कूलन पै, सर-सरितान पै ।
'रसिक बिहारी' सुखदाई चहुँघाई भाई,
छाई वह सरद-जुन्हाइ बनितान पै ॥५४॥

★

सारी जर-तारी लगी, मनिन किनारी, त्योंही-
दामिनी दबाइ लेत दमक रदन की ।
हीरन के हार 'हठी' गजरा गुलाबदार,
अंग-अंग फैल रही दीपति मदन की ॥
हेम की छरी सी, मानो सुखन जराव जरी,
सब गुन भरी, परी छबि के कदन की ।
चाँदनी बिछौना, भाल चंदन लगावै बाल,
चाँदनी मे बैठी लाल ! चंद से बदन की ॥५५॥

★

बादला के बीजना, बनाय वर बादला के,
बानिक सहेली ज्यो सुरेस के सदन की ।
मोतिन के हार, औ हमेल-गुलूबंद-बेंदी,
पहरि खराऊ खरी कुंजर-रदन की ॥
हीरा ही कौ चूरा, बाजूबंद औ तरौना-बैना,
महा सुखदानी रानी मोहन मदन की ।
चाँदनी मे, चाँदनी पै, चाँदनी-बिछौना पर,
चाँदनी सी फैली चारु चाँदनी बदन की ॥५६॥

★

देखिए पियारे कान्ह ! सरद सुधारे सुधा,
धाय उजियारे चौकी चामीकर दरसै ।
चोबा चाँदी चमकै, चँदोवा गुहे मोतिन के,
झलकत झालरै जुन्हाई-ज्योति परसै ॥

हीरा सी हँसन, हीरा-हार की लसन, सौधे–
सारी रही सन, 'कवि सोभ' छबि सरसै ।
कोटि–कोटि कला मुख चद ते सरस प्यारी,
बादला फरस, रूप झलाझल बरसै ॥५७॥

*

हीरन के सदन सजाए हित ही के जीके,
चॉदनी जरी की नीकी झालर झला की है ।
कंचन–सिहासन है, खासे सेत आसन है,
राजत तहॉ ही अलिगन गान ताकी है ॥
'दास' कहै दासी खासी लै-लै री अतर आसी,
अगन लगाय, चाय नेह–रंग छाकी है ।
देखु-देखु आली ! नैन करिऐ निहाली, कैसी–
सरद-निसा की झॉकी कृष्ण–राधिका की है ॥५८॥

*

साजे अंग–अंग चीर जगत जरी के नीके,
तैसी हीर–हारन की झलक झलाकी है ।
जैसे ही रँगीले छैल नेह-रग राचे, तैसी–
चॉदनी चटकदार चंद की कला की है ॥
'दास' कहै तैसी कोटि किंकिनी कनक राजै,
तैसी ही चटक कर करत छला की है ।
देखु–देखु आली ! नैन करिऐ निहाली, कैसी–
सरद-निसा की झाँकी लाडिली-लला की है ॥५९॥

*

लाडिली-लला की छबि देख री निराली आली,
सेत अंग–वस्त्र, हीर–आभूषन धारै है ।
बाँसुरी बजावे, हरषावे, मुसिक्यावे, गावें,
सखी सुख पावे, हेरि सीस चौर ढारै है ॥
'लाल बलबीर' कर–कर सो मिलावे, उर–
मोद को बढावे, छैल गल भुज डारै है ।
सुखमा अमंद, सुख–कंद राधिका–गोविंद,
दोऊ ब्रजचंद चंद चाँदनी निहारै है ॥६०॥

चाँदनी महल बैठी, चाँदनी के कौतुक को,
चाँदनी सी फूली राधे, चाँदनी महा लरै ।
चद की कला सी, देवता सी देव-दासी,
अंग फूल से दुकूल, गरै फूलन की मालरै ।।
छूटत फुहारे, तारे झलके अमल जल,
चमकै चँदोवा मनि-मानिक बिसालरै ।
बीच जर-तारन की, हीरन के हारन की,
जगमगी ज्योतिन की, मोतिन की झालरै ।।६१।।

*

चद निसि ललना, बदन लखि आई, कैधौ-
पारद की खानि फैलि आई आसमान है ।
कैधौ सुख के प्रबोध, सुखित सकल सुर,
लोकन के कल हास, भासै भासमान है ।।
मेरे जान मदन महीप सब जीत छिति,
ऊरध चढ़ाइ कै, तयारी को समान है ।
कैधौ तारागन मुकताहल के झूमकन,
चाँदनी न होय, चारुताई कौ बितान है ।।६२।

*

बह रही विसद छीर नद तें सरद सुभ्र,
सोभित सुखद फैली फैन के फरद की ।
उनमद मद मे सुगंध की बिहद सैना,
धाई चहुँ हद तें, छपद रु जरद की ।।
तैसौ ही बिरह बद, मार दै गद बद,
चूमत करेजौ कोर काम के करद की ।
चीर कीने रद री, दरद दै करी हौ बे-
परद, बे दरद, दैया चाँदनी सरद की ।।६३।।

*

चाँदनी के आँगन, बिछौना नीके चाँदनी के,
चाँदनी सी देखि अँखियान सुख लह्यौ है ।
चाँदनी सौ चीर चारु, चाँदनी के आभूषन,
चपक के गात, न बखानौ जाति कह्यौ है ।।

'हठी' आस-पास बैठी सुघर सुजान सखी,
जिन्हे देखि रति कौ गुमान जात बह्यौ है ।
राधे मुखचद की निकाई ब्रजचद आज,
अवनी-अकास लौ प्रकास फैल रह्यौ है ॥६४॥

*

कढत निसाकर दिवाकर सौ दीठि पर्यौ,
अधकार सो तौ एक पल मे पलायौ है ।
भोर भयौ जानि कै बिहंगन मे सोर मच्यौ,
अवनी-अकास मे प्रकास सरसायौ है ॥
परी चल-चाल बाल चमू-चतुरगिनी मे,
'नागर' तपत तेज ब्रज पर आयौ है ।
चॉदनी न होय ये, मानिनी के जीतिवे को,
मैन महारथी ब्रह्म-अस्त्रहि चलायौ है ॥६५॥

*

आस-पास पुहुमी प्रकास के अँगार सोहै,
बनन अगार दीठि है रही निवर ते ।
पारावार पारद अपार दसो दिसि बूडी,
चड ब्रह्म ड उतरात विधि बर ते ॥
सरद-जुन्हाई जनु धाई धार सहस,
सुधाई सोभा-सिधु नभ सुभ्र गिरिवर त ।
उमडयौ परत ज्योति मडल अखड सुधा,
मंडल मही मे, बिधु-मडल बिवर त ॥६६॥

*

पूरन सरद-ससि उदित प्रकासमान,
कैसी छबि छाई देखो बिमल जुन्हाई है ।
अवनि-अकास, गिरि-कानन औ जल-थल,
व्यापक भई, सो जिय लागत सुहाई है ॥
मुकता-कपूर-चूर, पारद-रजत आदि,
उपमाएँ उज्जल, पै 'नागर' न भाई है ।
बृंदाबन-चंद चारु सगुन बिलोकिवे को,
निरगुन-ज्योति मानो कुंजन मे आई है ।६७॥

पूरब हसित बनिता कौ मुख पत्र, तामे-
रचना रुचिर वर मृग-मद-रग की ।
कैधौ नभ-सरवर फूल्यौ है कमल, तामे-
मेचक प्रभा है आली ! अवली उमग की ॥
औरौ कवि-कोविदन उपमा अनेक कही,
'बदन' बखानै एक इहि विधि अग की ।
विरही निरखि याहि नाखत निसॉस, यातें-
दागिल दिखात, मानो आरसी अनग की ॥६८॥

*

मोती मजु महल बितान तने मोती मई,
मोतिन की झालरै मनोजहि गनै नही ।
'सेवक' भनत वैसे फरस फनूस आज,
सेज-सुखमा की छवि उर सो छनै नही ॥
चॉदनी चटक, इत चमक चुनीन तैसी,
अग चारु तासो दोऊ मोरत मनै नही ।
सरद कौ साज, ब्रजराज-राधिका कौ आज-
चाहत बनै, पै त्यो सराहत बनै नही ॥६९॥

*

राजी जिय करत, रसीलिन की राजी तैसी,
राजी मुकुलित मालती की दरसातियॉ ।
कुंज-कुज-मदिरन, अलि-पुज गुजरत,
मंजु मकरंद मद गति सी विभातियॉ ॥
कहत 'किसोर' कोष बद्ध कमनीय महा,
रमनीय रमन बिनाह बन-जातियॉ ।
सरद समस्त सोभा ससि मय व्यौम, काम-
वसमय विस्व, रंग रसमय रातियाँ ॥७०॥

*

अकल अरील माते मंजुल मलिंद, जल-
अमल, अनंद चंद, पूरन कदन है ।
अधर अनोखे अरुनारे बंधु जावक से,
चॉदनी से हास, त्यो सितारे से रदन है ॥

खजन से माते, मनरजन चकोर से है,
अजत बनै न, नैन सुखमा-सदन है ।
सरद-मराली सी, मृनाली सी मिली सी आली,
कैसौ 'जगमोहन' सोहावन वदन है ॥७१॥

*

शरद्-विलास

आज रंग-रसभीने रसिक बिहारी वर,
बिरचि विचित्र व्यौम चारु चित्त चोरी के ।
बैठे धीर ध्यासन कलिंद-तनया के तीर,
सुखमा न चाहै आपु रस मान थोरी के ॥
कहत 'किसोर' दीन मजु कर कंज बीन-
परम प्रवीन, गावै गुन-गन गोरी के ।
छकत प्रभा मे लखि अति अभिरामैं स्यामैं,
सरद-निसा मे स्यामैं कुँवरि किसोरी के ॥७२॥

*

प्यारे पास बैठी आनि, रूप-रासि प्रान प्यारी,
चाँदनी के देखिवे को चाव चित्त भरिगौ
हीरन के, मोतिन के आभूषन संग सखी,
अंग ते प्रकास दूनी छवि कौ पसरिगौ ॥
उपना न ह्वैवे की चली है कहा 'रघुनाथ',
तारन समेत उभय ताप ताते ठरिगौ ।
प्राची तें लै गगन प्रतीची तक सब रात,
छवि-छपाकर छपाकर छपा करिगौ ॥७३॥

*

सुदर सुधारयौ सौध-सुधा सो सुधार सन्यौ,
सौरभ सरस सुरभित आस-पास सो ।
बिमल बिछौने बिछे रजत-जरी के चारु,
जग-मग होत 'भोलानाथ' के निवास सो ॥
राकापति छायौ तैसौ मध्य मे, सुमध्य बाल-
बैठी परयंक पै, बिराजत सुहास सो ।
अंबर मे चद, कै अवनि पर चद, चहूँ-
चाहत चकोर, सोर पारयौ है प्रकास सों ॥७४॥

आनँद कौ कद, मुख इंदु अरबिंदु कौ,
पानिप अमद तन-कीरति सी काम की ।
नासा तिल-कुसुम, प्रकास हास कास मानि,
सकै को बखानि, खानि सोहै बिसराम की ॥
खजन 'दिनेस' दृग, त्रिवली सरित, कुच-
कलस उतग, हरि-छबि कटि छाम की ।
कीजिऐ कन्हाई, मन भाई आई कुंज-बन,
सरद सुहाई, कै निकाई वहि बाम की ॥७५॥

*

मालिन ज्यो कर मे कमल लिऐ आगै खरी,
चौसरे चमेली के रुचिर राखि लाई है।
जौहरी की जुवती ज्यो तेज भरे तारागन,
हीरन के हार बलि विविध दिखाई है ॥
पच्छिम के ओर की प्रवीन मृगनैनी, अंग-
ओढै चारु चादर, ये चाँदनी सुहाई है ।
लाल लखि लीजै, आजु रावरे रिझावन,
खवास ज्यो सरद चद-आरसी लै आई है ॥७६॥

*

तारागन भूषन सघन अंग अंगन मे,
बसन मयूषन सो रही लौनी लसिकै ।
दंत-कुमुदावली चमक चारु चोरै चित्त,
जोरै मुख चंद कों सु मंद-मंद हँसिकै ॥
मालती सुगंध सनी,' सालती हिए मे साल,
रहे नंदलाल कहूँ याके ख्याल फँसिकै ।
सरद-विभावरी न होय सुनि बावरी तू,
दाव री लियौ है ये, सौति स्याम बसिकै ॥७७॥

*

गच गिरि-रावटी के अजिर उजेरे चारु,
चाँदनी के औरार मे चंदमुखी पीजिऐं ।
'कालिदास' वाके तन-रूप की मिठाई लाल'
बासर मे सुधा ते सर समान लीजिऐ ॥

दूनो दुख, सूनौ भौन खोजिऐ परोसी कौन,
रोज-रोज केलि के कलापन मे भीजिऐ ।
चेरी राखौ द्वार मे चितैवै को चहूँघा कान्ह !
मेरी सौ, कुवार मे करेरी केलि कीजिऐ ॥७८॥

*

सरस सुबासे, सुख-रासे मासे पुष्पन की,
पकज बिकासे प्रभा परम प्रमोद कर ।
कुमुद-चकोर बहु ठौर है अनंद भरे,
उत्तम असल नीर राजै है सरित-सर ॥
बिमल रवि देखौ, रंच नीरद न लेखौ कहूँ,
'रसिक बिहारी' चहूँ पूरन प्रकास भर ।
सरद-निसा मे, उन्मत्त की दसा मे, माते-
मैन के नसा मे, रमे सेजन पै नारि-नर ॥७९॥

*

आयौ रितु सरद, बिरोधी चंद मान करु,
मदन कमान करु, कीन्हौ दुख दैन कौ ।
ना न करु प्यारी, अपमान करु सौतिन,
गुमान करु प्रेम, अनुमान करु रैन कौ ॥
कहत 'दिनेस' फूले पंकज प्रमान करु,
कान करु सूधे, सनमान करु चैन कौ ।
हठ मन मान करु, दूरि किन मान करु,
मान करु प्यारे कौ, समान करु मैन कौ ॥८०॥

*

कोऊ लीन्हे छत्र, कोऊ चौर कर लीन्हे, कोऊ-
छाह गिरि लीन्हे, कोऊ, दाँवन सकेलतीं ।
कोऊ पानदान-पीकदान, कर आरसी लै-
अतर-गुलाबन की सीसी सीस मेलती ॥
'बोधा कवि' कोऊ बीन-बाँसुरी सितार लीन्हे,
लाडिली लड़ावै फूल-गेंदन की झेलती ।
छोटे ब्रजराज, छोटी रावटी रंगीन, तामै-
छोटी-छोटी छोहरी अहीरन की खेलतीं ॥८१॥

शरद-रास-क्रीड़ा

सरद-निसा मे कान्ह बाँसुरी बजाई बेस,
जल-थल-व्यौमचारी जीव प्रेम भरिगे ।
कहै 'ब्रजचंद' तजे ध्यान हू मुनीसन नें,
त्योंही मानिनीन के गुमान-मद झरिगे ।।
चकति सचीस, रजनीस हू थकित भए,
तुरत स्वयभू मोह-जाल बीच परिगे ।
संभु हू को भूली आधी अंग की बिराजी-
गौरि, गौरि हू की गोद के गजानन बिसरिगे ।।८२।।

सरद-रयन अरु निर्मल प्रकास जानि,
कान्ह जमुना के तट बाँसुरी बजाई है ।
राग-रागिनी छतीसो ताहि मे प्रवेस करि,
ताल कौ बंधान सुर तीन लोक छाई है ।।
मोहे सेप औ गनेस, बिधि-लोकपाल सब,
षोड़स सहस गोपी सुनि उठि धाई है ।
पाय कै कन्हाई जी नें रहस मचाय नित,
यामिनी बढ़ाई षट मास को बिताई है ।।८३।।

*

ह्वै रही तयारी महा राजी रास मडल की,
मल्लिका व मालती सो अमित अगार है ।
कहै 'नंदराम' गई जरी सेत सारी साजि,
गोप की कुमारी हिऐं हीरन के हार है ।।
षोडस कला सो आजु उदित कलाधर है,
चाँदनी के भारन सो छोड़े अभिसार है ।
सेत चाँदनी मे, सेत चाँदनी चँदोवा तने,
मानो छीर-सिधु परे पारा के पहार है ।।८४।।

*

जमुना के पुलिन उजेरी निसि सरद की,
राका कौ छपाकर किरन नभ-चाल की ।
नंद कौ लड़ैतौ तहाँ गोपिका समूह लैकै,
रची रास-क्रीडा बजै बीना डफ-ताल की ।।

लहा छेह गातन की, कही न परत मोपै,
द्वै-द्वै गोपिका के मध्य छबि नंदलाल की ।
सोभा अवलोकि 'अभिमन्यु कवि' बोलि उठ्यौ,
एक बार बोलो, जय मदन गोपाल की ।।८५।।

*

षोडस हजार बाल षोडस सृंगार साजि,
षोडस बरस बैस मुदित बिहार है ।
बाहुन सो बाहु जोरि, मोरि-मोरि अंगन को,
कीन्हौमहा मंडल, अखंडल अपार है ।।
कहै 'नंदराम' तैसैं तार औ सितार मिलि,
चूरी-खनकार स्वर पंचम उचार है ।
भूतल, दिसान-बिदिसान, आसमान हू लौं,
छम-छम छाई घुंघुरू की झनकार है ।।८६।।

*

बिसद बहार कार-राका की निहारि कूल,
भूलि गति जमुना-प्रबाह जकि ज्वै रह्यौ ।
कहै 'रतनाकर' त्यों प्रकृति समाजनि की,
सुखमा अमंद सो अनंद-रस च्वै रह्यौ ।।
चंद-बदनीनि-संग रास ब्रज-चंद रच्यौ,
छबि के प्रकास सो, अकास लगि छ्वै रह्यौ ।
चेत चलिवे की षट मास लौं न आई इमि,
एते चंद चाहि चंद चकपक ह्वै रह्यौ ।।८७।।

*

पद थरकाइ, फरकाइ भुजमूल, भरी-
मंद मुसुकानि, भौंह तानि तमकति है ।
लंक लचकाइ, चल अंचल उचाइ, लोल-
कुंडल कपोलनि झुमाइ झमकति है ।।
स्वेद-सनी-बदन, मदन-सुख दैनी, वर-
बैनी बाँधि किंकिनी सहौस हमकति है ।
करहि अलाप स्याम-संग ब्रज-बाम मंजु,
मेघ-मेखला मे चंचला सी चमकति है ।।८८।।

नॅचत लचाइ लंक, लोचन चलाइ बंक,
　　　　करत प्रकास रासि ब्रज-जुवतीनि की ।
आनँद-अमद-चंद उमँग बढावै, मनो-
　　　　रस 'रतनाकर'-तरंग अबलीनि की ॥
काकौ मन मोहत न, जोहत जुन्हाई माहि,
　　　　छहर कन्हाई की मुकट-पॅखुरीनि की ।
छबि की छटक, पीत-पट की चटक चारु,
　　　　लटक त्रिभंग की, मटक भृकुटीनि की ॥८६॥

*

खनक चुरीन की, त्यो ठनक मृदंगन की,
　　　　रुनुक-झुनुक सुर नूपुर के जाल कौ ।
कहै 'पद्माकर' त्यो बॉसुरी की धुनि मिलि,
　　　　रह्यौ बॅधि सरस सनाकौ एक ताल कौ ॥
देखत बनत, पै न कहत बनै री कछू,
　　　　विविध बिलास, यो हुलास ये खयाल कौ ।
चद्र-छबि रास, चॉदनी कौ परगास,
　　　　राधिका कौ मद हास, रास-मडल गोपाल कौ ॥६०॥

*

पायल बजाय चाय लै-लै गति नॉचै कोई,
　　　　कंकन हू किंकिनि की त्योंही झनकारी है ।
गाय सुभ राग, सानुराग दरसावै भाय,
　　　　छाय कै मधुर सुर मुनि-मनहारी है ॥
प्यारी बीच प्यारौ, अरु प्यारे बीच प्यारी लसै,
　　　　'लखनेस' ताकी यह उपमा बिचारी है ।
पुष्पराग-माल मानो बीच-बीच नील मनि,
　　　　रचिकै सुभग वृंदा-बिपिन सिगारी है ॥६१॥

*

भूल्यौ गति-मति चंद, चलत न एक पैड़े,
　　　　प्रान प्यारे मुरली मधुर कल गान की ।
फूली कुसुमावलि विविध नव कुंजन मे,
　　　　सौरभ सुगंधताई, जात न बखान की ॥

बाजत मृदंग--ताल--झाँझ-मुहचंग--बीन,
उठत सँगीत जहाँ, अति गति तान की ।
आज रस--रास मे अनूप रूप दोऊ नँचै,
नदलाल, लाडिली किसोरी वृषभान की ॥६२॥

*

गु जत मधुप पु ंज-पु ंज नव कु ंजन मे,
छाके मत्त डोलै मकरंद-पान करिकै ।
सीतल सुधाकर हू मुदित मयूषन पै,
स्रवत पियूष, सो चकोर हेत धरिकै ॥
'रसिक बिहारी' सुखकारी चद्रिका अनूप,
ह्वै हुलसात अनुराग-राग भरिकै ।
निर्मल सुढंग, रस-रग स्याम-स्यामा सग,
अंग-अंग मोरत अनंग-मान हरिकै ॥६३॥

*

रास के बिलास को बिलोकन हुलास भरे,
बाजे सुनि बिबिध बिमान व्यौम आए है ।
देविन समैत देव बाजने बजावैं, त्यौही-
लखि ब्रज-बामै घनस्यामै मोद पाए है ॥
पति की, न मति की, न गति की सँभार सोही,
मोही सुरदार जोही, मन को लोभाए है ।
हरि कौ सुजस गावे, बरषि प्रसून छावे,
भावे रास आवे 'लखनेस' बेस गाए है ॥६४॥

*

घूँघुर कौ सोर कोऊ भेद बहुतेरौ लेहि,
फेरी दै उड़ावै पट भावन मे भामिनी ।
मंजु मुसक्याय कै, लजाय कोऊ नावे नैन,
भृकुटी नँचावै, कोऊ तान अभिरामिनी ॥
लौटत अलख कटि अंचल ओढ़ावै कान्है,
कु ंडल कपोल लोल ।अलकालि गामिनी ।
चचल स्रमित लसै, स्याम अरु स्यामा पास,
मानो घने घन, औ दमकै घनी दामिनी ॥६५॥

शरद्–विरह

फूले आस-पास कास, विमल विकास बास,
रही न निसानी कहूँ महि मे गरद की ।
राजत कमल–दल ऊपर मधुप, मैन–
छाप सी दिखाई, छबि विरह–फरद की ॥
'श्रीपति' रसिकलाल आली ! बनमाली बिन,
कछू न जुगति मेरे जीय के दरद की ।
हरद समान तन भयौ है जरद अब,
करद सी लागत है, चाँदनी सरद की ॥६६॥

*

ग्रीषम की घाम है न धाम घनस्याम या ते-
ह्वै गई सुवाम सेत ह्वै गई जरद की ।
बीचन दरीचन के आभा है मरीचन की,
काम ने निकारी कोर तीछन करद की ॥
फैलि–फैलि गैलन 'नवीन' विष फैल भरी,
दोषत दुखी न द्रुति पारद बरद की ।
गरद करी हौ, दिन दरद भरी हौ सखी !
सरद परी हौ, लखि चाँदनी सरद की ॥६७॥

*

मंद मुसक्यानि चंद–जोति मे उदोत होत,
कुंद मे दिखावै दुति दसन रसाल की ।
खंजन लखावैं 'कान्ह' नैन–मनरंजन से,
पानि लौं सुहावै कला कंजन बिसाल की ॥
भौंरन की गुंज, पुंज मंजुल मँजीरन सी,
हँसनि चलावै गति स्याम के सुचाल की ।
आयौ री सरद काल, दरद बढावन कों,
जरद करै है, हमै सोभा धरि लाल की ॥६८॥

*

फैलि रही घर अंबर पूर, मरीचिन बीचिन सग हिलोरत ।
भौर भरी, उफनात खरी, सु उपाय की नाव तरेरन तोरत ॥
क्यो बचिए भाजि हू 'घनआनंद, बैठि रहे घर पैठि ढिढोरत ।
जोन्ह प्रलै कै पयोनिधि लौ, बढ़ि बैरिनि आज बियोगिनि बोरत ॥६९॥

नवा खड मंडित अखडन उद्योत भयौ,
राका चद्र मडल दिसान दस दरसात ।
बिमल विसाल भए सीतल सरित-सर,
सकल कलित ये बिलोकियत अवदात ॥
'मोतीराम' मंजुल मृदुल मालतीन मिलि,
मलयज मलय-समीर सीरे सरसात ।
दरद करत ये भँवर-भीर कुंज-कुज,
बेदरद आली री ! सतावत सरद्-रात ॥१००॥

*

अबर अमल होत, चद की बढत जोत,
खजन की गोत, मानो परी आइ नाक तें ।
भनत 'दिवाकर' तरग गंग स्वच्छ भई,
ऊग्यौ है अगस्त जल सूखे जनु साक ते ॥
जहँ-तहँ पथिक चलन लागे चारो ओर,
सरद नरेस कियौ तिय तन चाक ते ।
दिन तौ वितत सग सखिन हिलत सत,
रात ना कटत बिनु स्याम चद-राक ते ॥१०१॥

*

कास कौ बिकासन, सो कासन करैगौ नाँहि,
यातें हियौ त्रासन सो मेरौ अति ह्वै रह्यौ ।
धान पान पावै, हेरि-हेरि धीर ह्याँ को धरै,
बाढ़े बिरहा के हाय ! नैन नीर च्वै रह्यौ ॥
कहै 'हनुमान' फूले कंजन पै भौरन कौ-
वृंद सौ बिलोकि, बैसि मानो जम ज्वै रह्यौ ।
जा करि कहै न यो कृपा करिकै लालन सो,
सरद-निसाकर दिवाकर सौ ह्वै रह्यौ ॥१०२॥

*

शरदऊ की रजनी में प्रिया, रजनीपति पास जनीन को पारै ।
सारी मरीचिन बीचिन तें, नवला के नगीचिन कौ दुख हारै ॥
भाषत है 'रघुराज' हमै, सरदै सुख दै तऊ दोष-अगारै ।
जो बिरहीनन दीनन क, उर-बारिधि में बड़वानल बारै ॥१०३॥

डोलै नभ-बीथिन, न बोलै धरि, मौन-व्रत,
भए सित भूति लाए रहै तित छजिकै ।
जीवन द्विजन को दै, जीवन-मुकुत होय,
बने है बिमल, बाम चपला को तजिकै ॥
दीजै नहि दोष एक ऐसे अलि ऊधव को,
स्याम भए बाम, अब करो योग रजिकै ।
नीरद सरद के दरद दलि, देस-देस-
करै उपदेस, येऊ यती वेष सजिकै ॥१०४॥

*

आतप सी चाँदनी तपन तन दूनी देत,
लागत हिए मे चद-किरनै करद सी।
आवत उसास ऊँची, सुखद सुबास लहि,
त्रिविध समीर धीर मालत दरद सी ॥
'रसिक बिहारी' है सयोगिनी अनंद सबै,
बिफल बियोगिनी न लागत सरद सी ।
तै निरास ह्वै, निरास हू ते आस पाइ-पाइ,
मर-मर जीवत है, चौपर नरद सी ॥१०५॥

*

दमकि गई री देह दौरि कै दुरावै कहि,
जारती जुराती ज्वाल जालिम जुन्हैया की ।
सीतल सरोजन की पाँखुरी बिछाई सेज,
लागती अँगार सो अनोखी अंग नैया की ॥
तीर कैसी तीछन समीर सरिता के बीर,
बीति है न यो ही निसा सरद समैया की ।
फाँसु री गरे की, बाजी बाँसुरी बिसासी, कैसी-
विष की भरी सी 'जगमोहन' कन्हैया की ॥१०६॥

*

घाम सम चाँदनी लै घेरयौ ब्रजमंडल है,
ताती चंडकर सी मयूषन मचाय लै ।
आज अबलनि मारि और हू कलंक लै कै,
मन के मनोरथन नीके कै रचाय लै ॥

'धीर' बलबीर के बियोगी नैन नीर भरे,
प्रेम रस प्यासे प्रेम तिनको जचाय लै ।
ए रे मद चद सुनि, आवै ब्रजचद जौ लौ,
तौ लौ तन गोपिन को बिरह तचाय लै ॥१०७॥

★

याही ते निपट निरधारि तोहि नीरस कै,
छाड्यौ सब सुरन,सुधा रसको चाखि-चाखि ।
'देवमनि' वे ही काज बैर विरही जन सो,
बॉध्यौ ऐसी बात न कलंकी भयौ साखि-साखि ॥
सरद की रितु मे उचाट चित्त ब्रजराज,
राधे को बिरह व्याप्यौ उठत यो भाखि-भाखि ।
कियौ कहा चाहत है, रैन-चारी चित्त–चोर,
एरे चद ! चॉदनी की चटकहि राखि-राखि ॥१०८॥

★

सिंधु के सपूत सुत, सिधु–तनया के बंधु,
मंदिर अमंद सुभ सुंदर सुधाई के ।
कहै 'पद्माकर' गिरीस के बसै हौ सीस,
तारन के ईस, कुलकारन कन्हाई के ॥
हाल ही के बिरह बिचारी ब्रजबाल ही पै,
ज्वाल से जगावत, जुआल सी जुन्हाई के ।
ए रे मतिमद चंद ! आवत न तोहि लाज,
ह्वै कै द्विजराज, काज करत कसाई के ॥१०९॥

★

सॉझ ही ते आवत हलावत कटारी कर,
पाइकै कुसगति कृसानु दुखदाई कौ ।
निपट निसंक ह्वै तजी तै कुल–कानि, खानि–
औगुन की, नैकऊ तुलै न बाप–भाई कौ ॥
ए रे मतिमद चंद ! आवत न लाज तोहि,
देत दुख बापुरे वियोगी–समुदाई कौ ।
ह्वै कै सुधा–धाम, काम-विष कौ बगारै मूढ़,
ह्वै कै द्विजराज, काज करत कसाई कौ ॥११०॥

सरद्-निसा मे व्यौम लखि कै मयंक बिन,
'पूरन' हिए मे इमि कारन बिचारे है ।
बिरह जराई अबलान को दहत चंद,
तातें आज तापै विधि कोपे दयावारे है ।।
निसिपति पातकी को, तम की चटान बीच,
पटकि पछारि, अंग निपट बिदारे है ।
तातें भयौ चूर-चूर, उछटे अनत कन,
छिटिके सघन, सो गगन मध्य तारे है ।।१११।।

माहिब मनोज कौ मुसाहिब बसंत अंत,
मर ना गयौ री नाम सुनत नकारे कौ ।
ग्रीषम गरूर पूर छायौ लै कृसानु भयौ,
भेद तें अजान, अग तकत उजारे कौ ।।
बिन 'सरदार' ना उपाय, अब एक कटे
तरक तलास लायौ अधम अँध्यारे कौ ।
देखि जग-जीवननि जीवन को नाह हाथ-
जीवन न देत, लेत जीवन हमारे कौ ।।११२।।

*

कोका सर, मैन मर, मैन के निहारियत,
हारियत ती कौ ताप जात पै न नेरे तें ।
लागै असुधाकर सुधाकर प्रकास-कास,
अमल अमल जोर सरद करेरे तें ।
कहत 'दिनेस' ब्रजबाल की जवाल को जु,
बिरच्यौ रच्यौ न आन, चल किन येरे तें ।
वारिजात-मुखी, बैन नीके, नैन वारिजात,
वारिजात वारिजात वारि जात हेरे तें ।।११३।।

*

महि मल्लिका मालती जाती जुही, सुचि सेवती प्रान-पियासी भई ।
छिनदा कर की करकाती भई, बरषन की तौ बरषाती भई ।।
'नँदराम जू' चाँदनी चौकन मे, चहुँ ओर तें भानु-प्रभाती भई ।
अँखियाँन मे तौ बरषा सी भई, बरषा न कितौ बरषाती भई ।।११४।।

हारे बल बादर, घटन लागे नीर आली !
अमल अकास आयौ, सरद सुहाए है ।
सूखे थल जहाँ-तहाँ मारग बिलोकि परै,
गौन के बटोही भौन आपने ही आए है ॥
अगर-कपूर-धूर, फूल-फल अच्छत लै,
दसमी की पूजा करि देवन मनाए है ।
रहकि कै नारिन ते करत बधाई 'नाथ',
जिन घर प्रानप्यारे आस्विन मे आए है ॥११५॥

*

हिलि-मिलि जोखनि मे, झाँकत झरोखनि मे,
हियरा मे हिलकी, दृगन अँसुवार मे ।
'कालिदास' कहै आप कामिनी कुरग नैनी,
दामिनी ज्यो देखी जात दमक दुआर मे ॥
जोन्ह मे दहैगी, दुख ऐसै क्यो सहैगी, जैसै-
सीता पार सागर के रघुवर के वार मे ।
नंद के कुँवर कान्ह, कैसै कहो पै हौ जान,
छाँडि वृषभान जू की कुँवरि कुवार मे ॥११६॥

*

परै कोऊ पछाह पिछौना करतेई रह्यौ,
प्यारी कहूँ पुहुमी पै पाला परि जावै ना ।
मीरन कपार सी परेखौ इन नैनन सो,
सारी दुनियाँ की सियराई सरकावै ना ॥
देखो 'जगमोहन जू' बावरी वियोगिनि कौ,
काहू अब कलित करेजौ कँपि आवै ना ।
हाय नव बाला बिन निपटि निराला,
परदेस मे पराला सीत काला कहूँ आवै ना ॥११७॥

*

दीपदान देवन दिवारी कौ चढाती सब,
जुवा खेलि दंपति हिए मे हरषाती है ।
वेस्यागन रसिक रिझावै कै सिंगार देह,
मुख मुसक्याति हरै राग बरसाती है ॥

भनत 'द्विवाकर' अटा पै घाट-बाट-गेह,
रोसनी तमाम चहुँ कोन दरसाती है।
प्यारे ब्रजराज बिन, पापी द्विजराज सखी,
रात ये दिवारी की, अराति सम जाती है ॥११८॥

*

निर्मल अकास ऐसौ, जल जमुना कौ जैसौ,
कठिन प्रकास ससि सूरज सरद कौ।
उडुगन गनत, गने न जात रैन-दुख,
द्यौस देखि 'देवी' कहै मारग गरद कौ॥
प्रेम की दरद ब्यापी, भयौ है जरद गात,
चपे कैसौ पात, रग रात्यौ है हरद कौ।
कातिक दिवारी बारि, खेलैं सब नाह-नारि,
हौ तौ युग फूटी सारिजो कै ज्यो नरद कौ ॥११९॥

*

मंजन कै मदिर को सबनि सँवारे, सेत-
राते-पीरे रगन विचित्र चित्र भरिऐ।
घर-घर-आँगन, अटान-बाट-बाटन मे,
दीपक संवारि वार-वारि पाँति धरिऐ॥
जोति जगै अवनि पै, अधिक अधेरौ नभ,
दरस की रैनि, जामै कला ससि हरिऐ।
सोभा समूह 'नाथ' सबै ब्रज देखियत,
कातिक मे आय लाल ! दीप-माल करिऐ ॥१२०॥

*

चारु निहार तरैयन की दुति, लाग्यौ महा बिरहा तन तावन।
हे 'ससिनाथ' कहा कहिऐ, जिन सौं लगि नैन ही कंज से पावन॥
बीच दुकूल के फूलन लै, अलबेली के प्रेम कौ सिंधु बढ़ावन।
कान्ह दिवारी की रैन चले, बरसाने मनोज कौ मंत्र जगावन ॥१२१॥

— हेमंत —



राशि—

वृश्चिक+धन



मास—

मार्गशीर्ष+पौष



तेल-तूल-तांबूल-तिय, ताप-तपन रतिवंत ।
दीर्घ रैनि, लघु दिवस पुनि, सीत सहित हेमंत ॥

हेमंत-परिचय



हेमत शीत प्रधान ऋतु है। यद्यपि शीत का आरभ शरद ऋतु मे हो जाता है, तथापि उसका उन्नत रूप हेमत मे ही दिखलायी देता है। यदि शरद मे शीत का बाल्य काल है, तो हेमत मे उसका पूर्ण यौवन काल होता है।

शरद मे निर्मल आकाश और उज्ज्वल चद्र-चद्रिका का महत्व है, जिनके कारण शरद-यामिनी सब के लिए अत्यत सुखद और आनददायक ज्ञात होती है, किंतु हेमत मे तुषार के आधिक्य के कारण न तो आकाश ही अधिक स्वच्छ रहता है, और न चद्रमा ही विशेष प्रकाशवान दिखलायी देता है। इसके साथ ही कड़ाके का जाडा और सनसनाती हुई बर्फीली वायु के कारण हेमत की लबी रातें जन-साधारण के लिए कष्टकर बन जाती हैं।

हेमत की लबी रातो से ऊब कर सब लोग सूर्योदय की बडी उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करते हैं। जैसे-तैसे सूर्य निकलता है, किंतु उसकी किरणों में स्वाभाविक ऊष्मा नहीं होती है। राजा-रक, अमीर-गरीब सब शीत के कष्ट से मुक्ति पाने के लिए सूर्य की शरण में जाते हैं, किंतु वहाँ पर भी उनकी मनोभिलाषा की कठिनता से पूर्ति होती है। दो पहर दिन चढ़ने पर सूर्य की किरणों में कुछ तेजी आती है, तब कहीं धूप मे बैठना सार्थक होता है। इस प्रकार सूर्य-सेवन का सुखानुभव कुछ ही समय के लिए होता है कि दिनकर भगवान् अस्ताचल की ओर जाने की तैयारी करने लगते हैं। बात की बात में दिन समाप्त हो जाता है और फिर वही भयावनी लबी रात आरंभ हो जाती है।

इस प्रकार हेमत ऋतु अपनी कठोरता के कारण सब के लिए कष्टदायक है, किंतु जिन सम्पन्न व्यक्तियों को शीत निवारक सर्व साधन सुलभ है, वे इस ऋतु में भी सुख का अनुभव करते हैं। ब्रजभाषा कवियों ने इस प्रकार की साधन-सामग्री और उसके उपभोग का बड़े ठाट-बाट से वर्णन किया है।

ब्रजभाषा काव्य में हेमत जनित कष्ट से छुटकारा पाने वाले साधनों में पंच तकार का विशेष वर्णन मिलता है। पंच तकार तरुणी, तांबूल, तैल, तूल और तरणि बतलाये गये हैं। तरुणी स्त्री का सहवास, बढिया मसालों से बने हुए ताबूल का चर्वण, तैल-मर्दन, तूल अर्थात् रुई के वस्त्रों का धारण और तरणि अर्थात् सूर्य की धूप का सेवन-ये वे साधन हैं, जिनका विलासी जन

प्रचुरता से उपभोग करते हैं। इनके अतिरिक्त अग्नि की अगीठी, अगर-तगर और कस्तूरी आदि सुगधित पदार्थों की धूप, पशमीना के दुसाले और परदे पडे हुए रंग-भवनों का भी कथन किया गया है। इन साधनो के कारण कष्टदायक हेमत ऋतु भी विलासी जनों के लिए सुखदायक ज्ञात होती है।

जिन व्यक्तियो को उपर्युक्त साधन सुलभ नहीं है, वे सूर्य की धूप और अग्नि द्वारा ही हेमत के कष्टो से मुक्ति पाने की चष्टा करते है। किंतु अधिकांश ब्रजभाषा कवियों की दृष्टि इस प्रकार के जन-साधारण पर न जाकर साधन सम्पन्न विलासी जनों पर ही गयी है और उनको ही ब्रजभाषा कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया है।

मार्गशीर्ष

मासन मे हरि-अंस कहत, यासो सब कोऊ ।
स्वारथ-परमारथन देत, भारत मे दोऊ ।।
'केसव' सरिता-सरित, फूल फूले सुगध गुर ।
कूजत कुल कल हंस, कलित कल हसनि के सुर ।।
दिन परम नरम सीतल, मरम करम-करम ये पाइयतु ।
करि प्राननाथ परदेस को, मारगसिर मारग न चितु ।।१।।

**

अतिहिं अराम देत, ऐन को अराम, अभि-
राम आठो ओर, ओर्यौ ऐस अबलन मे ।
आसन अनूप, आप ईस है असीन जापै,
अच्छ अवलोकि, है उदासी अंबु-जन मे ।।
'गिरिधरदास' एकौ उपमा न आवत है,
ईगुर सी आछी अरुनाई अधरन मे ।
अंग धर इदुमुखी ओज सो अमल ऐसै,
लसै अंजनन सै, अजब अगहन मे ।। २ ।।

पौष

पन्नन के पायन की पलंग पुरट बनी,
पलंग पुरदर की पावती न परतल ।
पाटी पद्मराग-परबाल औ पिरोजन की,
जापै पर्यौ पद्म सौ परम पट परिमल ।।
'गिरिधरदास' पौन पुहुप पराग लै,
प्रगट पहुँचावै परमा सो पूरौ पल-पल ।
प्रेम पगे पूस मे, प्रिया को पिया प्यार करें,
प्यारे को लखति पद्मिनी के ना परहि कल ।। ३ ।।

**

सीतल जल-थल-बसन, असन सीतल अनरोचक ।
'केसवदास' अकास-अवनि सीतल असुमोचक ।।
तेल-तूल-तामोल, तपन-तापन, नव नारी ।
राज-रक सब छोडि, करत इनही अधिकारी ।।
लघु द्यौस, दीह रजनी खनन, होत दुसह दुख रूस में ।
ये मन-क्रम-बचन विचारि पिय, पथ न बूझिए पूस मे ।।४।।

हेमंत



हेमत-वर्णन

सुंदर सोभित सुखद सरद, हेमतहि भेंटी आय ।
जैसै बालक देखि माय को, गिरै गोद मे धाय ॥
जानि परै, जमुना-जल पेठत पैर गए कटि दूर ।
'सी-सी' करत किनारे आवैं, जाड़ौ है भरपूर ॥
पहले से नहि कमल खिलै अब, निसि मे परै तुषार ।
स्वच्छ सेत हिमयुक्त हिमाचल, दर्सन योग बहार ॥
सूरज भयौ छपाकर, मानो धूप गई पतराय ।
मनहुँ सीत भयभीत याहि लखि, वारिद लेय छिपाय ॥
हरित खेतमय गाँमन भीतर, हिम-कन भीगी दूब ।
मटर फली अरु कोमल मूली, मीठी लागै खूब ॥
ज्वार, बाजरौ, मूँग, मसीनौ, मोठ, रमास, गुवार ।
सन-तिल आदिक, अरहर तजि, सब कटि आए घर द्वार ॥
रबी जहाँ सीची जावै, तहँ गेहूँ-जौ लहराँय ।
सरसो-सुमन प्रफुल्लित सोहै, अलि-माला मँड़राँय ॥
प्रकृति दुकूल हरौ धारन कर, आनन अपनौ खोल ।
हाव-भाव मानहुँ बतरावै, ठाडी करै कलोल ॥
सीर समीर तीर सम लागत, करत करेजे पीर ।
दिन छीजत, रजनी बाढ़त, जिमि द्रुपद सुता कौ चीर ॥
धुँआ न चैन लैन छिन देवै, अंसु बहावैं नैन ।
छाती तले अँगीठी सुलगै, ताहि उठावैं पै न ॥
ज्वाला तापि, दुलाई ओढै, रहैं धूप मे जाय ।
चाय भरौ सविसाला प्याला, पीवैं हिय हरषाय ॥
साल-दुसाला धारैं निसि दिन, गरम मसाला खात ।
सीत-कसाला भाज्ञ उर मे, लगै न पाला जात ॥
मृगमदादि-सौरभ सुखकारक, सेवन कर सुहाय ।
भोजन समय कंप तऊ होवै, हाथ जाहिं ठिठुराय ॥
पान खाँय डिबिया भर-भरकै, तबहुँ न कष्ट नसाय ।
तरनि ताप तें तापे बिन कब, सीत-कसाला जाय ॥ ५ ॥

मार्गशीर्ष

मासन मे हरि-अंस कहत, यासो सब कोऊ ।
स्वारथ-परमारथन देत, भारत मे दोऊ ॥
'केसव' सरिता-सरित, फूल फूले सुगध गुर ।
कूजत कुल कल हस, कलित कल हसनि के सुर ॥
दिन परम नरम सीतल, मरम करम-करम ये पाइयतु ।
करि प्राननाथ परदेस को, मारगसिर मारग न चितु ॥१॥

**

अतिहिं अराम देत, ऐन को अराम, अभि-
राम आठो ओर, ओरयौ ऐस अबलन मे ।
आसन अनूप, आप ईस है असीन जापै,
अच्छ अवलोकि, है उदासी अंबु-जन मे ॥
'गिरिधरदास' एकौ उपमा न आवत है,
ईगुर सी आछी अरुनाई अधरन मे ।
अंग धर इदुमुखी ओज सो अमल ऐसै,
लसै अंजनन सै, अजब अगहन मे ॥ २ ॥

पौष

पन्नन के पायन की पलंग पुरट बनी,
पलग पुरदर की पावती न परतल ।
पाटी पद्मराग-परबाल औ पिरोजन की,
जापै परयौ पद्म सौ परम पट परिमल ॥
'गिरिधरदास' पौन पुहुप पराग लै,
प्रगट पहुँचावै परमा सो पूरौ पल-पल ।
प्रेम पगे पूस मे, प्रिया को पिया प्यार करें,
प्यारे को लखति पद्मिनी के ना परहि कल ॥ ३ ॥

**

सीतल जल-थल-बसन, असन सीतल अनरोचक ।
'केसवदास' अकास-अवनि सीतल असुमोचक ॥
तेल-तूल-तामोल, तपन-तापन, नव नारी ।
राज-रक सब छोडि, करत इनही अधिकारी ॥
लघु द्यौस, दीह रजनी खनन, होत दुसह दुख रूस में ।
ये मन-क्रम-बचन बिचारि पिय, पंथ न बूझिए पूस में ॥४॥

हेमंत



हेमत-वर्णन

सुंदर सोभित सुखद सरद, हेमतहि भेंटी आय ।
जैसै बालक देखि माय को, गिरै गोद मे धाय ॥
जानि परै, जमुना-जल पैठत पैर गए कटि दूर ।
'सी-सी' करत किनारे आवैं, जाडौ है भरपूर ॥
पहले से नहि कमल खिलै अब, निसि मे परै तुषार ।
स्वच्छ सेत हिमयुक्त हिमाचल, दर्सन योग बहार ॥
सूरज भयौ छपाकर, मानो धूप गई पतराय ।
मनहुँ सीत भयभीत याहि लखि, वारिद लेय छिपाय ॥
हरित खेतमय गाँमन भीतर, हिम-कन भीगी दूब ।
मटर फली अरु कोमल मूली, मीठी लागै खूब ॥
ज्वार, बाजरौ, मूँग, मसीनौ, मोठ, रमास, गुवार ।
सन-तिल आदिक, अरहर तजि, सब कटि आए घर द्वार ॥
रबी जहाँ सीची जावै, तहँ गेहूँ-जौ लहराँय ।
सरसो-सुमन प्रफुल्लित सोहै, अलि-माला मँडराँय ॥
प्रकृति दुकूल हरौ धारन कर, आनन अपनौ खोल ।
हाव-भाव मानहुँ बतरावै, ठाडी करै कलोल ॥
सीर समीर तीर सम लागत, करत करेजे पीर ।
दिन छीजत, रजनी बाढ़त, जिमि द्रुपद सुता कौ चीर ॥
धुँआ न चैन लैन छिन देवै, अस्रु बहावैं नैन ।
छाती तले अँगीठी सुलगै, ताहि उठावैं पै न ॥
ज्वाला तापि, दुलाई ओढ़ै, रहै धूप मे जाय ।
चाय भरौ सविसाला प्याला, पीवैं हिय हरषाय ॥
साल-दुसाला धारै निसि दिन, गरम मसाला खात ।
सीत-कसाला भाजा उर मे, लगै न पाला जात ॥
मृगमदादि-सौरभ सुखकारक, सेवन कर सुहाय ।
भोजन समय कंप तऊ होवै, हाथ जाहिं ठिठुराय ॥
पान खाँय डिबिया भर-भरकै, तबहुँ न कष्ट नसाय ।
तरनि ताप तें तापे बिन कब, सीत-कसाला जाय ॥ ५ ॥

कंज ना सुखाए, ये सुखाए रज मन ही के,
सीत ना बढाई, नीति प्रकटी समत है ।
रात ना अधिक, करी रति अधिकाई भाई,
दिन ना घटायौ, कर्म-बासना तुरंत है ॥
'गिरिधरदास' पौन सीतल असह है ना,
प्रेम के प्रवाह जग चलन टरत है ।
राधिका के कंत कौ भगत मति मद है,
कै ब्रज सीतवत रितु प्रकट हिमत है ॥६।

*

आयौ है हिमंत जोर जोडि कै प्रसगन सो,
रेसम के झगन मे अगन दुराए देत ।
कहै 'नंदराम' त्यो हमाम हू न काम सरै,
धाम-धाम आला पौन पाला को उसाए देत ॥
तूल-पेट-पीठिन-अँगीठिन मे डीठि लगी,
तरुनी बिहीन तन कंप सरसाए देत ।
दो गुनौ कहो तौ चित चौगुनो चुरात हेरि,
नौ गुनौ न सौगुनौ ममीर-सीत नाए देत ॥७॥

*

धाई है धरा पै सियराई चहुँ ओरन ते,
पलटि गई है पूरी प्रकृति अनत की ।
पानी-पौन-पुहुमी पराग अगरागन की,
अगन अँगार दिसि-बिदिसि दिगत की ॥
कँपि-कँपि आवत करेजौ 'जगमोहन जू',
कामिनी छोड़ाऐ हिए छोडत न कंत की ।
हरषि हजा के, कल काढ़त कजा के छाके,
बाढत निसा के, अंग ढाकत हेमंत की ॥८॥

*

अवनि तें, अकास ते, अवासन तें, उदक तें,
इदु के उदै तें, आसुरे तें उमडौ परै ।
'स्याम कवि' मालन ते, मन ते, मनी ते, मन-
मोहन के मोह ते, मनोज तें मड़ौ परै ॥

झाँकती झरोखन तें, झंझा के झोकन ते,
झाडन ते, झारन ते भूमि झुमड़ौ परै ।
पान ते, प्रसून ते, पराग ते, पहारन ते
हारन ते, हेम ते, हिमंत हुमडौ परै ॥९॥

कातिकादि चारो मास, तखत बिछाय बैठ्यौ,
बद्दल सजल जल छत्र छवि छाई है ।
जब-तब मेह-धार चौर चारु ढोरियत,
सुरहर पौन की वजीरी सरसाई है ॥
'ग्वाल कवि' बरफ बिछायत कुहर दल,
ठिरनि प्रबल नीकी नौबत बजाई है ।
सीत बादसाह सौ ना दूजौ कोऊ दरसाय,
पाय बादसाही बाँटै सबको रजाई है ॥१०॥

*

चारो ओर चरचा चली है चपरालिन की,
दीरघ दरेरौ द्वार-द्वार दुलहिन के ।
लागे लोग लाले-पीले बसन रँगीले लैन,
दैन त्यो किंवार कपि कोठे पै रहन के ॥
त्यो ही 'जगमोहन' तलास अबला को होन,
तरुनी-तमूल-तूल तीषन दहन के ।
आछे मृगमद के, अमोद उदगारे, त्यो-
बहारदार मजुल महीना अगहन के ॥११॥

*

नारी बिन होत नर, नारी बिन होत बर,
रात सियरात उर लाएँ पयोधर मे ।
'बेनी कवि' सीतल समीर कौ सनाका सुनि,
सोवै सब साँझ ते, कपाट दै सहर मे ॥
पंछी पंख जोरे रहै, फूल-फल थोरे रहै,
पाला के प्रकास आस-पास धराधर मे ।
बसन लपेटे रहै, तऊ जानु फेंटे रहै,
सीत के समेटे लोग लेटे रहै घर मे ॥१२॥

आयौ सखि पूसौ, भूलि कंत सो न रूसौ, केलि-
ही सो मन मूसौ, जीउ ज्यो सुख लहत है ।
दिन की घटाई, रजनी की अघटाई, सीत-
ताई हू कौ 'सेनापति' बरनि कहत है ।।
याही ते निदान प्रात बेगि उदै होत नाँहि,
द्रौपदी के चीर कैसौ राति कौ महत है ।
मेरे जान सूरज पताल तप ताल माँझ,
सीत कौ सतायौ कहलाय कै रहत है ।।१३।।

*

सूर ऐसे सूर कौ गरूर रूरौ दूर कियौ,
पावक खिलौना कर दियौ है सबन को ।
बातन की मार ही ते गात की भुलात सुधि,
काँपत जगत जाकी भय आन मान को ।।
'गिरिधर दास' रात लागै काल-रात कीसी,
नाँहि सो लगत भूमि राखत चरन को ।
आयौ है हिमत, भूमि कंत तेजवत दीह,
दंतन पिसात ये दिगंत के नरन को ।।१४।।

*

कोक सोकप्रद, सीत युत, काम केलि अत्यंत ।
रजनी दीह, अदीह दिन, संयुत रितु हेमंत ।।१५।।

*

कियौ सबै जग काम वस, जीते जिते अजेय ।
कुसुम-सरहि सर-धनुष कर, अगहन गहन न देय ।।१६।।

*

आवत-जात न जानियत, तेजहि तजि सियरान ।
घरहि जवाँई लौ घटौ, खरौ पूष दिन मान ।।१७।।

*

दिन निसि रवि ससि, लहत है हेम सीत के योग ।
भरम चकोरन भोग है, कोकन भरम वियोग ।।१८।।

*

मिलि बिहरत, बिछुरत मरत, दंपति अति रति-लीन ।
नूतन बिधि हेमंत रितु, जगत जुराफौ कीन ।।१९।।

पौन-पान-पानी भए सीतल सुहाए स्वच्छ,
असन सवाद भयौ सबही मिठाई सौ ।
कहै 'रतनाकर' बिचित्र चित्रसारी माँहि,
उठत सुगध-धूम मौज मन-भाई सौ ॥
विविध बिलासनि के हरप-हुलासनि सो,
सुखद बसंत होत सुकृत-कमाई सौ ।
बाम अभिराम सी सुहाई घाम देह लगै,
लागत सनेह नए नेह की निकाई सौ ॥२०॥

*

धारि कै हिमत के सजीले स्वच्छ अंबर को,
आपने प्रभाव कौ अडबर बढाए लेति ।
कहै 'रतनाकर' दिवाकर-उपासी जानि,
पाला कज-पु जनि पै पारि मुरझाए लेति ॥
दिन के प्रताप औ प्रभा की प्रखराई पर,
निज सियराई-सँवराई छबि छाए लेति ।
तेज-हत-पति-मरजाद-सम ताकौ मान,
चाव चढी कामिनी लौ जामिनी दबाए लेति ॥२१॥

*

अंत पुर पैठि भानु आतुर कढ़ै न बेगि,
चिर निसि-अंक मे निसापति डरे रहै ।
कहै 'रतनाकर' हिमंत कौ प्रभाव ही सो,
संत-मन हू मे भाव और ही भरे रहै ॥
नर-पसु-पंछी, सुर-असुर समाज आज,
काम-अरचा मे निसि-बासर परे रहै ।
ह्वै कै कुसुमायुध के आयुध उबारू अब,
सब धरिनी ही मे धरोहर धरे रहै ॥२२॥

*

सूरै तजि भाजी, बात कातिक मे जब सुनी,
हिम की हिमाचल तें, चमू उतरति है ।
आए अगहन, कीने गहन दहन हू को,
तन हू तें चली, कहूँ धीर न धरति है ॥

हिय मे परी है हूल, दौरि गहि तजी तूल,
अब निज भूल 'सेनापति' सुमिरति है ।
पूस मे त्रिया के ऊँचे कुच-कनकाचल मे,
गढ़वै गरम भई, सीत सो लरति है ॥२३॥

*

हेरत हिमंत के अनंत प्रभुता कौ दाप,
भानु के प्रताप की प्रभा हू गरिवे लगी ।
कहै 'रतनाकर' सुधाकर किरन फेरि,
काम के जिवावन कौ जोग करिवे लगी ॥
बदलन बाने सब निज मनमाने लगे,
चारो ओर और ही बयार भरिवे लगी ।
जोगिन के होस पै, भरोस पै बियोगिन के,
रोस पै सँजोगिन के, ओस परिवे लगी ॥२४॥

*

बिचलत मान जानि हँसत-अवाई माँहि,
ढीली परी सकल हठीली सकुचाई है ।
कहै 'रतनाकर' सुलाज राखिवे के काज,
ताके रोकिवे की वृथा, बिधि बहु ठाई है ॥
डारि राखे परदा चहुँघाँ मंजु मंदिर मे,
अगर-सुगंध तें, दसौ दिसि रुँधाई है ।
चोली कसमीरी कसी, कंपित करेजन पै,
सेजनि पै साजि धरी दुहरी दुलाई है ॥२५॥

*

नर कहा, नारी कहा, पसु कहा पंछी, मन-
काहू के न होत घर छोडि निकरन की ।
अंगन अँगोछ, करै जप-तप-होम-दान,
जात न कही है कछु करनी करन की ॥
कहै 'मनिदेव' जुगुनू लौं, कढि जात आसु,
चरचा न होत कहूँ भानु के करन की ।
घरी-घरी बोलै जन, घरी जौन होती कहूँ,
घरी तीन होती संध्या-बंदन करन की ॥२६॥

तुलसी लसी सु अंग अतिसै उमंग देति,
जासु मन बास योगी जन विलसत है।
सीतल सँवारि उर कला दरसाय करि,
जात न बिलोकि सोक कोक बिलपत है॥
जातु की विभावरी, बिसाल लखो 'दीनद्याल',
मित्र रूप सब ही के सुखद बसत है।
कैधौ है हिमत, कै सुतंत सित संत सभा,
कैधौ सुखमा लसंत कमला के कंत है॥२७॥

*

बिकसन लागे मुचुकुंद लवली औ लोध,
कछु परसौ तें सरसौ हूँ दलिनी भई।
कहै 'रतनाकर' मनोज-ओज पोषन को,
बन-उपबन मे, प्रफुल्ल फलिनी भई॥
औरै और कलिनि खिलावत समीर हेरि,
माष मन मानि कै मलीन नलिनी भई।
हेमंत मे काम की अपूरब कला सो चकि,
कोकिल भुलाने कूक, मूक अलिनी भई॥२८॥

*

भावन लगी है असु पावन प्रभाकर की,
छावन लगी है गति सीत की दिगंत मे।
राग अधिकानी, दिन हानी त्यो प्रतच्छ भई,
सृष्टि सियरानी है, गरम सलसंत मे॥
कहै 'तोष' हरषि जे सूहे रंग अंग पट,
चाहत उमग कंत कामिनी इकंत मे।
सेवै भागवंत, मद-मादक छकत, सुख-
स्यामा कौ अनंत, छबिवंत या हिमंत मे॥२९॥

*

कामिनि काढ़ दई कर कंकन, अंगद ना कर संगत है।
जोसन जोरिन बाजु बहोरि, धरी तब हू कर रंगत है॥
पीन नितंबन, नूतन अंबर, कबर माँहि असगत है।
भीन दुकूलन, पीन पयोधर, हेतु हिमंत प्रसंगत है॥३०॥

हेमंत का शीत

सिसकत रहत तमीपति रजनि माँहिं,
तमरिपु हू को होत कढ़त कसाला है ।
सी-सी करि घरी-घरी घूमत चहूँघा रहै,
सीरी पौन हू को गरमी कौ परयौ लाला है ॥
'हरिऔध' आकुल ह्वै अरौ खरौ रूख हू है,
ठरौ सीत भरौ वाकौ ठौर हू कौ ठाला है ।
बूझि परै बाला हिम-गाला सी दुसाला माँहिं,
पाऐ सीत-काल ज्वाल-माला भई पाला है ॥३१॥

*

सीत की सवाई सी दिखाई परै दिन-रात,
खेतन मे पात-पात जमे जात सोरा मे ।
सरर-सरर बरफान की पवन आवै,
करर-करर दंत बाजै झकझोरा से ॥
'ग्वाल कवि' कहै ऊन अबर निचोरै जहाँ,
सूती बसनन ते तौ बहे जात घोरा से ।
जोरि-जोरि जघन उदर पर धरि-धरि
सिकुरि-सिकुरि नर होत है ककोरा से ॥३२॥

*

पोर-पोर अँगुरी की वारि ते गरन लागी,
सीकर मलीन या दिगंतन करै लगौ ।
कोमल मरीचै ह्वै गई है मारतंड हू की,
आतप मे प्रानिन कौ प्रेम हू अरै लगौ ॥
'हरिऔध' भू पर लखात है हेमत छायौ,
दिन-दिन बासर कौ गात हू गरै लगौ ।
या तन को सीरी पौन परसै कसाला होत,
पादप के पातन पै पाला हू परै लगौ ॥३३॥

*

सीत कौ प्रबल 'सेनापति' कोपि चढ़यौ दल,
निबल अनल, गयौ सूर सियराय कै ।
हिम के समीर, तेई बरसै विषम तीर,
रही है गरम भौन कोनन मे जाय कै ॥

धूम नैन बहै, लोग आग पै गिरे से रहै,
हिय सो लगाय रहै, नैक सुलगाय कै ।
मानो भीत जानि, महासीत ते पसारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यौ पावक छिपाय कै ॥३४॥

*

धाई चली आवत है कैधौ ध्रुव-धाम ही ते,
कैधौ गिरी भू पै चंद्र-मंडल के फोरे ते ।
कैधौ याहि काढ्यौ कोऊ उदक-सरीर गारि,
कैधौ बनी सीतलता जग की निचोरे ते ॥
'हरिऔध' कहै ऐसी दुसह हिमंत-बात,
कैधौ भई सीरी बार-बार हिम बोरे त ।
कैधौ चली चंदन परसि मलयाचल को,
कैधों कढ़ि आवत हिमाचल के कोरे ते ॥३५॥

*

छोटे दिन है गौ, दुख ओट छुटिबे कौ भयौ,
मोट सुख-लूटि मे, निसा को बडी जोरै ना ।
तैसे तेल-तूलन-तमोलिन के रंग भरे,
पामरी दुकूलन ओढ़ाय सुख मोरै ना ॥
'सेवक' रसालन मसालन के माचे मोद,
आग हू की सालन विसालन को दौरै ना ।
खाय काम तंत कै अनत सरसंत मोको,
पाय-पाय हरषि हिमंत कंत छोरै ना ॥३६॥

*

भानहू की लागी प्रीति दिगगना अगिनि सो,
सीत-भीति जागी इमि सकल समंत को ।
कहै 'रतनाकर' रहत न अकेले बनै,
मेले बनै रूसि हू तिया सो दोषवंत को ॥
हिम की हवा सो हलि, अचल समाधि त्यागि,
लपटनि-लालसा-लसित लखि कंत को ।
पाट की पिछौरी बाहु दाहिने पखौरी किऐ,
गौरी लगी हुलसि असीसन हिमत कों ॥३७॥

हेमंत–विलास

पाय निसि दीरघ अघाय चितै मुख चंद,
दूनऊ चकोरनि चकोर लौं जियौ करै ।
दूर करि सीत चूर रितु कौ प्रताप पूरि,
बसन चहूँवा भूरि आनँद लियौ करै ॥
दूनऊ दुहून के अभा परसपर ह्वै कै,
कदूर परमपर सीतल हियौ करै ।
सरस परसपर दंपति 'दिनेस' ह्वै,
परस्पर केलि कल कौतुक कियौ करै ॥३८॥

*

चारो ओर मोडि, बैठे दाब चारो ओरन लौं,
ज्योंही मनमथ राखौ हिमन दुहाई मे ।
जावक अरगजा के तिलक बिराजि रहे,
भाग भरे भागन की जगमगताई मे ॥
अलक चमर 'घनस्याम' बाजै नूपुरादि,
बटत हँसन–अवलोकन बधाई मे ।
थिरि चिर ऐसौ राज, देखो-देखो सखी आज,
दुहुँन रजाई पाई, एक ही रजाई मे ॥३६॥

*

दाबै चारो कोर राजै, नूपुर निसान बाजै,
छाजै छबि कर कुच भट भिरिवौ करै ।
सिहासन सेज सोहै, सीस सीसफूल छत्र,
अलख अनोखे चारु चौर ढरिवौ करै ॥
मैन मंत्री मत्र देत, भायन बढत भूर,
बदी जन भूषन बिरद ररिवौ करै ।
हिम की हिमाई, सुखदाई सी 'गोविद' दोऊ,
एक ही रजाई मे, रजाई करिवौ करै ॥४०॥

*

पूस–निसा मे सु बारुनी लै, बनि बैठे दुहूँ के दुहूँ मतवाले ।
त्यो 'पदमाकर' झूमै–झुकै, घन घूमि रचै रस-रंग रसाले ॥
सीत को जीत अभीत भए, सु गनै न सखी कछु साल–दुसाले ।
छाक छका छबि ही की पिऐ मद, नैनन के किऐं प्रेम के प्याले ॥४१॥

तरुनि-तमोल रचि अंग-रंग राजत है,
उभय अनंग सग साजै निज कंत कौ।
'द्विज बलदेव' कहै हरषि हिए अपार,
प्रमुदित बाद्य करि सुर-ताल तत कौ॥
सीत सरसात, तूल सेवत त्यो जात नेह
उदित है वात, सुख सोभित सिमंत कौ।
मोद अनुराग, मन रंग छवि बाग,
लखात बल भाग, भयौ आगम हिमत कौ॥४२॥

*

प्यारी-पिया पौढि परयक पर सोहत है,
'मोहन' परसपर रस-बतियान करि।
आपस मे बेधे मन नेह सरासन चढ़े,
तीच्छन कटाछन सो, भौहै धनु तान करि॥
राधा-मनमोहन जू अगन के सगनि सो,
पुलकित होय रहे, लपटि भुजान करि।
सुख कौ न अंत, लह्यौ रजनी हिमत रितु,
कियौ गुनवत कंत काम की कलान करि॥४३॥

*

कामरी की खोही मोही गोपन की जाई बाल,
आई लाल पामरी रजाई परहरिकै।
कहै 'कालिदास' पास भई है एकंत, कत-
लीजिए लपेट, लपटाय अक भरिकै॥
रैन मे नगर द्यौस जन कै बगर कीजै,
जगर-मगर ब्रज भूमि केलि करिकै।
पूस मे कलाधर ये धन कौ न छोडै संग,
तातै रंग कीजै, हिए प्रेम-ध्यान धरिकै॥४४॥

*

सुंदर मंदिर अंदर मे, बहु बंदनवार-वितान अडोलै।
है परदा मखतूलन के, तिहि मूल बिछी गिलमे गुलगोलैं॥
'बल्लभ' दीपत दीपति है, मनि त्यो सुक-सारिका के गन बोलै।
ए री! हिमंत मे राधिका स्याम, करै बहु रंग उमंग कलोलैं॥४५॥

नील निकुंज बनौ रस-पुंज, चहूँ दिसि हेम बितान है तानौ ।
आछे परे परदा मखतूल के, तूल कौ चारु बिछायौ बिछानौ ॥
केलि करै 'गिरिधारन जू' संग लै तिय को मध आतसखानौ ।
पावक ही की सिखान के संग, अनंगहिं पावक पूजत मानौ ॥४६॥

मंजु मनोहर सीत सुगंध, सूँघे प्रिय रैन सचैन रमै ।
सो घन नील सरोरुह से, निरमाल दुरावत भोर समै ॥
पीन उतंग उरोज के भारन, गौन समय मृदु गात नमै ।
नूतन गंध रची कच मे, कितनी तरुनी तनु मैन जमै ॥४७॥

★

छाई है हिमंत-भ्रांत तंत की बताय देत,
अंत को बराय जिय अंत को न जाइऐ ।
'द्विज बलदेव' कहै कंस कहि दूर करि,
काम की कलोल कान्ह कामद मचाइऐ ॥
अतर-तमोल-तेल-तूलन के तुंग साजि,
ताती सी सोहाति सेज तापै इत आइऐ ।
करन हैं आन तजि, मान कौ समान नैक,
मानिऐ प्रमान निसि भान उर लाइऐ ॥४८॥

★

मेरे मिलाऐं मिली दिन द्वैक, दुरै-दुरै आनँद ओघ अघाती ।
त्यों चसकौ चित चित्तए चाहिऐ, सोच-सँकोचन सो लचि जाती ॥
'देव' कहाँ ते बनै विधि दोऊ इतै मुख देखि लला को लजाती ।
है इत सीत मे संग लहै, उन सोइबे को अतिसै ललचाती ॥४९॥

★

बैरी बयार लगै बरछी सी, अँगार लगे हिम मैन मसूस मे ।
पान सुगंध सनेह सुरंग, सुमेर हरी सजी सेज अदूस मे ॥
जाय नही रवि हू के तपे, बिन कंत हिमंत के जोर जलूस मे ।
कीरति-लाड़िली प्रेम की माडिली, बावरी ! रूसत है कोऊ पूस मे ॥५०॥

★

सुनि कै सखियान पै साईं सवार, चले इत पूस कौ मास जु लाग्यौ ।
'रसिकेस' रहे सुख होय महा, अब कीजै कहा सु मनोभव जाग्यौ ॥
कछु ठानी उपाय, दई को मनाय, पसारिकै अंचल सो वर माँग्यौ ।
गहिकै वर बीन प्रवीन तिया, तब ही तहाँ राग मलार सुराग्यौ ॥५१॥

हेमंत-विलास के साधन

सौने की अँगीठिन मे अगिन अधूम होय,
होय धूम-धार हू तौ मृगमद आला की ।
पौन कौ ना गौन होय, भरक्यौ सुभौन होय,
मेवन कौ खौन होय, डब्बियाँ मसाला की ॥
'ग्वाल कवि' कहै हूर-परी सी सुरग वारी,
नाँचती उमग सो तरग तान ताला की ।
बाला की बहार औ दुसाला की बहार आई,
पाला की मे बहार, बहार बडी प्याला की ॥ ५२॥

*

अमल अनोखे, अति चोखे भरे प्यालन मे,
अमित मसालन की गिनती गिनावै क्यो ।
गिलमै गलीचन की, परदा दरीचन की,
सेजन की सुखमा अनूप कवि गावै क्यो ॥
साल औ दुसालन मे, रेसमी रुमालन मे,
लौने दीप जालन मे, सो हिमत पावै क्यो ।
'रसिक बिहारी' नव बाला अंग माला किऐं,
मदन बिहाला तिन्है सीत-भीत पावै क्यो ॥५३॥

*

गाले अति अमल, भरा ले तोसको मे, फेर-
ऊपर गलीचे बिछवाले जाल वाले अब ।
सेजन पै सेजबंद खूब कसवाले बनि,
खाले रस वाले जे गजक बनवाले सब ॥
'ग्वाल कवि' प्यारी को लगाले लिपटाले अंक
सौइकै दुसाले मे, मजा ले अति आले जब ।
मंजुल मसाले मिले, सुरा के रसाले पिऐं,
प्याले पर प्याले, मिटै पाले के कासले तब ॥ ५४॥

*

सीत अनीत करै अति भीत, जिन्है निज मीत मिले कपटी है ।
तीर सी लागै समीर हिए, रहती जो दुसालन मे लपटी है ॥
है 'रसिकेस' सुखी तिय सो, बिरची सर मे जुनही रपटी है ।
काह हिमत करै तिनकौ, रहै कंत की जो छतियाँ छपटी है ॥५५॥

प्रात उठि आइवे को, तेलहि लगाइवे को,
मलि-मलि न्हाइवे को, गरम हमाम है ।
ओढ़िवे को साल, जे बिसाल है अनेक रंग,
बैठिवे को सभा, जहाँ सूरज की घाम है ।।
धूप को अगर, 'सेनापति' सोधौ सौरभ कौ,
सुख करिवे कौ छिति अंतर कौ धाम है ।
आए अगहन, हिम-पवन चलन लागी,
ऐसे प्रभु लोगन को होत बिसराम है ।।५६।।

*

अगर की धूप, मृग-मद की सुगंध वर,
बसन बिसाल-जाल, अंग ढाकियतु है ।
कहै 'पद्माकर' सुपौन कौ न गौन जहाँ,
ऐसे भौन उमँगि उमग छाकियतु है ।।
भोग औ सयोग हित सु रितु हिमंत ही मे,
एते सब सुखद सुहाए वाकियतु है ।
तान की तरंग, तरुनापन-तरनि-तेज,
तेल-तूल-तरुनि-तमूल ताकियतु है ।।५७।।

*

गावें गीत अंगना प्रबीन कर बीन लिऐं,
आनँद-उमंग भरी रंग के भवन मे ।
कहै 'रतनाकर' जवानी की उमंग होय,
तंग होय बसन सजीले तने तन मे ।।
सुखद पलंग होय, दुहरी दुलाई लगी,
आनँद अभंग तब होय अगहन मे ।
नूपुर के संग-सग बाजत मृदग होय,
रंग होय नैनन, तरंग होय मन मे ।।५८।।

*

मारग-सीरष, पूस मे सीत हरन उपचार ।
नीर समीरन तीर सम, जनमत सरस तुसार ।।
जनमत सरस तुसार, यहै रमनी सँग रहिऐ ।
कीजै जोबन-भोग, जनम जीवन-फल लहिऐ ।।
तपन-तूल-तंबूल, अनल अनुकूल होत जग ।
'सेनापति' धन सदन बास, न बिदेस, न मारग ।।५९।।

मीनन के चौके चुने, चमकै नगीनन के,
झीने पल माने कैसे गहब गहीले है ।
तूलन के तागे, धागे मंजु मखतूलन के,
रेसम दुकूलन के परदे रँगीले है ॥
नीचे नए खासे 'जगमोहन' गलीचे यो,
सो सेज के नगीच ही चिराग चटकीले है ।
लपटे सु आसन मे, छपटे दुसालन मे,
सोए सीत-कालन मे, छिपकें छबीले है ॥६०॥

*

खासी कोठरीन मे सँवारी सेज सौधे सनी,
आस-पास अगर-कपूर बगरे रहै ।
दरन सु परदा गलीचन सो झपि भूमि,
बरै दीप कंचन के, अतर धरे रहै ॥
ऐसै समै कंत सग जुवती हिमंत रितु,
पौढि पलिका पै, दोऊ आनँद भरे रहै ।
सीत-त्रास दपटे से, कपटे दुकूल-दुख,
लपटे दुसालन सो, छपटे परे रहै ॥६१॥

*

आड़े ना रहत, रोम ठाढ़े ही सदा रहत,
पच्छिम कौ पवन फेरि पाला सो कटत है ।
कंपत करेज, सेज सोइऐ सुखत अरु,
गब्बर गरीबन की गरुता घटत है ॥
'ठाकुर' कहत फेरि पानी ते परस होत,
होत तन पीर, नैम नाँही निपटत है ।
ओढ़िऐ दुसाला, तरै तोसक बिसाला, बिना-
लागै अंग बाला, सीत-काला ना कटत है ॥६२॥

*

अभिराम हमाम के धामन मे, चहै केतौ अराम लपेटि पटै ।
बिरचे बिधि केते दुसाले बिसाले, धरे तन मे नहि पाले कटै ॥
'रघुराज' कहै सखी सूरज हू न, निवारि राके हिय हारि हटै ।
छींटे मे छिनदा मे छबीली बिना, छतियाँ छपटै हिम की दपटै ॥६३॥

दूर-दूर ढाँपें, जऊ थर-थर काँपे अंग,
अंग नवलान के अनंग रस राचै है।
विविध विलास के अवास सुख-रास जहाँ,
मृगमद-धूम औ अँगीठिन मे आचै है॥
बार-बधू निरतत सुढंग तें उमग भरी,
अमिल अलापन मे सप्त सुर साचै है।
'रसिकबिहारी' हितकारी प्रानप्यारी-मुख,
देखिकै हिमंत मे, अनत मोद माचै है॥६४॥

*

तेल औ तमोल पुन तरुनि-तुराई-तूल,
जेते सुख-साज तेते सब ही पुरे रहै।
असन-बसन उष्न कोटिन बिधानन के,
ठौर-ठौर द्वारन किवार हू मुरे रहै॥
रसना-अधर-नैन-कंठ-उर-बाहु सबै,
नव रस अंग तिय-अंग सो जुरे रहै।
'रसिकबिहारी' तऊ व्यापत हिमंत-सीत,
जदपि घनेरे भले, भौन मे दुरे रहै॥६५॥

*

ब्रह्म यंत्र वारे भारे लपटै सुगंध, तैसे—
आलि दीपमाल लाल जालन जरे रहै।
परम प्रबीन बीन लै-लै सुखकार,
'सरदार' चीन-चीन रंग-रागन भरे रहै॥
चूमि चंदबदन, चपाय पाँय-पाँय मेलि,
उरज उतंग अंग-अंगन अरे रहै।
करदे करन हारे, सरदे समीरन के,
जरदे दुसालन के, परदे परं रहै॥६६॥

*

ओक-ओक लोक सब करत कलोल निसि,
कोकन को सोक भौ, कलानिधि कों काफा सौ।
भनत 'दिवाकर' लगावत अतर अंग,
बारत हुतासन डरपि कै बराफा सौ॥

राजा औ अमीर पसमीना के बहार लेत,
मुजरा बरंगना करावत इजाफा सौं ।
आयौ ये हेमंत, कंत लहत अनंत सुख,
सत जड़ सैन लेत, जगत जुराफा सौं ॥६७॥

*

हेमंत-विरह

पल-पल, दिन-दिन जामिनी घटन लागी,
भामिनी जगन लागी, जामिनी इकंत मे ।
भनत 'दिवाकर' सयोगिनी सुखी न कीनी,
दु खिनी वियोगिनी लगीना हँसि हंत मे ॥
घर-घर, धर-धर बाजत कपाट-पाट,
सटपट सेज पै मजेज छबिवंत मे ।
सखी इहि पाख मे, जो आयौ न हमारौ कंत,
होगे प्रान अंत, नहि पाइकै हेमंत मे ॥६८॥

*

छाई सीतलाई, मुरझाई कला कुंजन की,
मानो मनरंजन की पाइकै जुदाई है ।
कापै कहि जाई, दिन हू की लघुताई, जनु—
रही छलताई, लखि प्रीति सकुचाई है ॥
रैन अधिकाई, भयौ बिरह सहाई, तासु-
सीत चहुँघाई, विन मीत भीत धाई है ।
पीर सरसाई, फूली सरसो सरस भाई,
हेम रितु आई, न कन्हाई-सुधि पाई है ॥६९॥

*

बरसै तुषार, बहै सीतल समीर नीर,
कंपमान उर क्यो हू धीर न धरत है ।
रातन सिरात, सरसात व्यथा बिरह की,
मदन-अराति जोर जोबन करत है ॥
'सेनापति' स्याम ! हम धन है तिहारी, हमै-
मिलौ, बिन मिलै, सीत पार न सरत है ।
और की कहा है, सबिता हू सील रितु जानि,
सीत कौ सतायौ धन रासि मे परत है ॥७०॥

बास पिय पास जाकौ, अति ही हुलास ताकौ,
भोगन रसाल रास-रस सरसायौ है ।
चकचौधि देखि-देखि चकित चकोर चाहै,
ससि के समान सर सीतल सोहायौ है ॥
बहत समीर सीरी, दहत हमारौ अग,
रहत न धीर, यो अनग उँमगायौ है ।
छल सो धरयौ है नाम अगहन, गहन सम,
बिरही गहन प्रान, अगहन आयौ है ॥७१॥

पूस के महीना काम-वेदन सही ना जाय,
भोग ही के ग्रौसन ही बिरह अधीन के ।
भोर ही को सीत सो न पावक छुटन,त्योंही-
रात आई जान, है दुखित गन दीन के ॥
दिन की नन्हाई 'सेनापति' बरनी न जाय,
रंचक जनाई, मन आवै परबीन के ।
दामिनी ज्यो भानु ऐसै जात है चमकि,ज्यो न-
फूलन हू पावत, सरोज सरसीन के ॥७२॥

*

पीय-पीय रटत रहत आठ हू पहर,
रसना भई रहत, ज्यो पपीहा पावसी ।
घरी-घरी दहै मैन, चित कों न कहूँ चैन,
रह्यौ न परत ऐन बूड़े बेन नाव सी ॥
'तुलसी' कहत पिय प्यारे के समीप बिना,
भूषन की कहा, भौन-भोजन न भावसी ।
पीउ बिन पूस मास, पैयत न चैन आली,
बु द ऐसौ दिन होत, रैनि दरियाब सी ॥७३॥

*

चद्रक-चंदन चारु चितै, चख नीची करै, न बयारि सोहाई ।
आनन पानिप रूखे भए, दिन ते अति होत निसा अधिकाई ॥
फूलन सेज विभूषन जाल, चहै छितिपाल नहीं नियराई ।
बाहर भावत है न भट्ट, बनि बाल वियोगिनि सी हिम आई ॥७४॥

परत तुषार, झार उठत अपार भार,
द्वार औ पहार, पूस आँगन सुहात है ।
बीछी के से छौना, भरे मानहुँ बिछौना माँझ,
दिसि हू बिदिसि लगि घेरे घर घात है ।।
'विट्ठल' सुहित अति गति-मति भूलि जात,
चातिका करात, जब बोलै अधरात है ।
बिरह ते हिरात पिया बिन रही, रात-
आवै नियरात, तिय जात पियरात है ।।७५।।

*

परत तुषार भार, काँपै हिय हरि-हरि,
रजनी पहार, दिन आग जैसै फूस की ।
द्वार-द्वार परदे परे है भरे तूलन के,
भीतर सँवारि धरे पलँग जलूस की ।।
'राम कवि' कहत हनत सीत अब-तब,
आव रे सुजान, तेरी छाती आबनूस की ।
जैसै-तैसै कान्ह षट मास तौ व्यतीत करयौ,
निपट जुवाल भई, काल-रैन पूस की ।।७६।।

*

अंग सुकराय, औ उसाँसिन थकाय नैक,
हिय को हिमंत बात बेधै चहुँघाय जूटि ।
तासु दरसाय दसा तो बिन मलीन अब,
सब सुख चायन को लीन्हौ कामदेव लूटि ।।
खान-पान को नसाय, डोलै तो विरह पाय,
मूँदि पलकन को, रहै लोगन ते दूरि छूटि ।
भूलि भूलिकै कुपंथ, जाय सुनि प्यारी ताकै-
काँटौ गडि जाय, पै न जाय तेरौ ध्यान टूटि ।।७७।।

*

सेज सजाई रजाई समैत, जहाँ तहँ आई पिया जो सु अंत की ।
गाढ़ सुरा है तुरंत अँची, तब कीनी अरंभ कछु बात इकंत की ।।
ज्यो हरि 'तोष जू' सो हँसि कै, रसि कै चसकै सिसक छबिवंत की ।
हूलै हिए झुकि झूल सु मूरति, भूलै नही हमैं केलि हिमंत की ।।७८।।

अमल कमल-दल लोचन ललित, गात-
जरत, समीर सीत-भीत देह दुख की ।
चंद्र को न लख्यौ जाय, चंदन न लायौ जाय,
चंदन चितायौ जाय, प्रकृति बपुरन की ।।
घाट की घटत जात, घटना घरी हू घटी,
छिन-छिन छीन छबि रवि-मुख सुख की ।
सीकर तुषार स्वेद सोहत हेमत रितु,
कैधौ 'केसवदास' तिय प्रीतम बिमुख की ।।७६।।

*

बैठत उठत जात आवत सकारे-साझ,
काम के करारे बान हिए डोलियतु है ।
देखै बन-बाग भले लागत भयावन से,
खान-पान माँहि मानो विष घोरियत है ।।
धाय कै हिमंत-वाय, बेधत दुखद काय,
छाय कै करेजौ छिन माँहिं छोलियत है ।
लखै क्यो न जाय, ताहि बिरह सतायौ-तायौ,
तो बिन सहाय हाय-हाय बोलियत है ।।८०।।

*

एक ओर बान पंचबान को गहाइ दीन्हों,
एक ओर रन अति कठिन लखावतौ ।
दोषाकर बीच दोष आकर बसाई सीत,
भीत करै जेंत प्रीति बाहिर निबाहतौ ।।
'बंसीधर' कहै घर-डगर-नगर बीर !
लै करि समीर रोम-रोमनि बसावतौ ।
छूटतौ न मान, मन्त्र-तंत्र अरु यंत्र कीन्हे,
जो नहिं हिमंत दूती कंत बिन आवतौ ।।८१।।

*

आलि हिमंत समय हिम संगत, बात बहै, जग सीत करै ।
पाकत-कंपत कोमल कामिनि, सीत समाकुल कोर भरै ।।
मानहुँ कामिनि प्रीतम के बिन, वारि समय नहि धीर धरै ।
सोच करै पियरी तन मे, दुबरी नित नैनन नीर ढरै ।।८२।।

══ शिशिर ══



राशि—

मकर+कुंभ



मास—

माघ+फाल्गुन



सिसिर सरस मन बरनिए, 'केसव' राजा-रक ।
नॉचत-गावत रैन-दिन, खलत-हँसत निसंक ॥

शिशिर-परिचय



शिशिर शीत के उत्थान और पतन की ऋतु है। इस ऋतु में भयकर सरदी, बर्फीली वायु, मेघ की गरज और बिजली की चमक के साथ माघ मास की वर्षा, आँधी-तूफान एवं ओला-पाला की अधिकता रहती है, जिनके कारण शीत की कठोरता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। इसके फल स्वरूप बन-उपबन और बाग-बगीचों के खिले हुए पुष्प ही नहीं, वरन् उनके पत्ते तक झड़ने लगते हैं। देखते-देखते प्रकृति देवी की मनोरम क्रीडा-भूमि उजड़ने लगती है और पल्लवविहीन वृक्षों के कारण सर्वत्र भयावना सा दृश्य दिखलायी देता है! इस प्रकार उजाड़ और बरबादी के वातावरण में शीत भी अपने जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिनने लगता है और हतप्रभ एवं बलविहीन होकर ऋतुराज बसंत के लिए स्थान खाली कर देता है।

वैसे तो शिशिर के मध्य काल में ही बसतागमन के आसार दिखलायी देने लगते हैं, और माघ शुक्ला पंचमी बसत-पंचमी के नाम से प्रसिद्ध भी है, तथापि शिशिर के अंतिम पखवाडे में तो होली के रूप में बसंत की धूमधाम आरभ ही हो जाती है। इस प्रकार बरबादी के वातावरण में उत्पन्न और पोषित होकर भी शिशिर का सुखमय अंत होता है।

फाग और होली शिशिर ऋतु की विशेषताएँ हैं, जिनके कारण यह नीरस ऋतु भी सरस बन गयी है। ब्रजभाषा काव्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इस ऋतु के वर्णन में कवियों का मन रमा नहीं है, किंतु उन्होंने होली का कथन बड़े विस्तार एव मनोयोग पूर्वक किया है। ब्रजभाषा के भक्त कवियों ने शिशिर विषयक पदों की रचनाएँ प्रायः नहीं की है। रीति कालीन कवियों ने इस ऋतु का भी थोड़ा-बहुत कथन किया है, किंतु वह प्रायः हेमत ऋतु के वर्णन जैसा ही है और उसमें कोई विशेष चमत्कार भी नहीं है। किंतु फाग और होली के सबध में ब्रजभाषा का विशाल साहित्य उपलब्ध है, जो भक्ति कालीन पद और रीति कालीन छंद-दोनों प्रकार की शैलियों में रचा गया है।

शिशिर और बसत के सधि-काल में पड़ने के कारण होली का उत्सव कई प्रकार की विचित्रताओं को लेकर आता है। वैसे तो होली की गणना देश-भर के मुख्य उत्सवों में की जाती है, तथापि ब्रजभूमि के उत्सवों में इसका

सर्वोपरि महत्व है। यही कारण है कि व्रजभाषा के कवियों ने इसका बड़ी उमग और उत्साह के साथ कथन किया है।

फाग और होली में गायन-वादन-नृत्य आदि विविध कलाओ के सर्वत्र प्रदर्शन होते रहते हैं। इसके अतिरिक्त रग-बिरगी गुलाल और पिचकारियो की धूमधाम के कारण समस्त व्रजभूमि मे आनद और उल्लास का समुद्र सा उमड़ पडता है। नर-नारी आनद विभोर होकर इस उत्सव में ऐसे तल्लीन हो जाते हैं कि कुछ समय के लिए उनको विधि-निषेध का भी ज्ञान नहीं रहता है। व्रजभाषा-कवियों की तत्सबधी रचनाओं में इस प्रकार के वातावरण का वास्तविक चित्रण किया गया है, जो सहृदय काव्य-रसिकों को अपूर्व आनद प्रदान करता है।

माघ

बन-उपबन केकी-कपोत, कोकिल कल बोलत ।
'केसव' लै भूभरे भ्रमर, बहु भाँतिन डोलत ॥
मृगमद-मलय-कपूर, धूर धूसरित दसौ दिसि ।
ताल-मृदग-उपग सुनत, सगीत-गीत निसि ॥
खेलत बरात सतत सुघर, सत असत अनत
घर नाह न छोडिय माह मे, जो मन माँहि सनेह-मति ॥१॥

**

मनि मय महि मुद्दानी औ मनोहर मजु,
मानिक के मदिर महान मूसै मन है ।
मालती की महँक मलिद मदमाते फिरें,
मिले मकरंदन सो मौलमिरी पन है ॥
'गिरिधरदास' मुकुताहल की माला धरै,
मदन महीपति के मद मरदन है ।
माघ के महीना मैन मोहन मयंकमुखी,
मजेदार मौज करे, मन मे मगन है ॥ २ ॥

फाल्गुन

'गिरिधरदास' फूलवारे फूले फूलन सों,
फलवारे फलन सो फलित फवन है ।
फटिक से फरस पै, फरस फरास रच्यौ,
फवनि सो फलक निवासी ही फबत है ॥
फाटक फराक फनधर फन फवीन को,
फरक मे फरकी फिरोजा की फकल है ।
फरहत भरे फूलें, फागुन मे फनी बधु,
फील की फिरनि, ऐसी फिरनि फिरत है ॥ ३ ॥

**

लोक-लाज तजि राज-रंक, निरसंक बिराजत ।
जोइ भावत सोइ कहत, करत पुनि हँसत न लाजत ॥
घर-घर जुवती-ज्वान जोर गहि, गाँठनि जोरहिं ।
बसन छीनि मुख मीडि, आँजि लोचन तृन तोरहिं ॥
पट बास सुबास अकास उड़ि, भूमडल सम मडिऐ ।
कहि 'केसवदास' बिलास निधि, फागुन फाग न छंड़िऐ ॥ ४ ॥

शिशिर



शिशिर-वर्णन

सिसिर मे ससि कौ सरूप पावै सविता हू,
घाम हू मे चाँदनी की दुति दमकत है ।
'सेनापति' सीतलता होत है सहस गुनी,
रजनी की भाँई दिन हू मे झमकत है ॥
चाहत चकोर, सूर ओर दृग-छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धमकत है ।
चद के भरम मोह होत है कुमोदिनी को,
ससि संक पंकजिनी फूलि ना सकत है ॥५॥



फूली अवली है लोध्र लवली लवंगन की,
धवली भई है स्वच्छ सोभा गिरि-सानु की ।
कहै 'रतनाकर' त्यो मरुवक फूलन पै,
झूलन सुहाई लगै हिम-परमानु की ॥
साँझ-तरनी औ भोर-तारा सी दिखाई देत,
सिसिर कुही मे दबी दीपति कृस्भानु की ।
मीत-भीत हिए में न भेद यह भान होत,
भानु की प्रभा है, कै प्रभा है सीतभानु की ॥६॥



सिसिर तुषार के बुखार से उखारत है,
पूस बीते होत सुन हाथ-पाँय ठिरि कै ।
द्यौस की छुटाई की बडाई बरनी न जाइ,
'सेनापति' पाई कछु सोचि कै, सुमिरि कै ॥
सीत ते सहस-कर सहस-चरन ह्वै कै,
ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि कै ।
जौ लौं कोक कोकी को मिलत, तौ लौ होत रात,
कोक अधबीच ही तें आवत है फिरि कै ॥७॥



उर मे हिम सर सौ लगत, सिहरत सकल सरीर ।
सी-सी कहि सिसकन न को, परसत सिसिर-समीर ॥८॥

धाय-धाय सिधुर मदंध फूले लोधन सो,
गंध-लुब्ध ह्वै कै कध रगरत गात है ।
कहै 'रतनाकर' प्रभात अरुनाई माँहि,
बाघन के लेरुवा लरत लुरियात है ॥
उठि-उठि धूम बनबासिन के बासन तें,
त्रासन ते सीत के तहाई मँडरात है ।
पंछीगन सीस काढि बिटप-बसेरन ते,
उमहि कछूक, मौन गहि रहि जात है ॥९॥

धायौ हिम-दल, हिम-भूधर ते 'सेनापति'
अंग-अग जग थिर-जंगम ठिरत है ।
पैऐ न बताई, भाजि गई है तताई, सीत-
आयौ आततार्इ, छिति अबर घिरत है ।
करत है ज्यारी, भेष धरिकै उज्यारी ही कौ,
घाम बार-बार बैरी बैर सुमिरत है ।
उत्तर तें भाजि सूर, ससि को सरूप करि,
दच्छिन के छोर छिन आधक फिरत है ॥१०॥

*

सिसिर खिलारी भयौ मिसिर मदारी महा,
करतब आपनौ अनूपम उघारै है ।
कहै 'रतनाकर' अखिल हरियारी पर,
कलित कपूर-धूर बिसद बगारै है ॥
पावक पै फूँकि के प्रभाव निज पानी करै,
पानी को परसि पल उपल सुधारै है ।
प्रबल प्रचार सीतकार की करामत सो,
भानु को पलटि सीत-भानु करि डारै है ॥११॥

*

छायौ इभि सिसिर-अतंक महि-मंडल मे,
अंक माँहि संकित न बाल ठुनकत है ।
कहै 'रतनाकर' न बिकसत बोल नैक,
कोकिल न कूजत, न भौंर गुनकत है ॥

इमि हिम-गाला बरसत चहुँ ओरन तें,
ताकौ कहि आवत कसाला-गुनकत है ।
सीत-भीत अतुल तुलाई करिबे को मनो,
धुनक बिधाता तूल-चाप धुनकत है ॥१२॥

*

ह्वै कै भयभीत सीत प्रबल प्रभावन सों,
पाला माँहि मेदिनी सुगात निज ग्वै रही ।
कहै 'रतनाकर' तपाकर को चद जान,
मान सुख चकई-बियोग-ताप ग्वै रही ॥
जोगी भयौ चाहत सँजोगी, भोगी जोगी भयौ,
मति जुवती मे पच-पावक मे ग्वै रही ।
पैठे जान सिमिट भवानी के पटंबर मे,
अबर की चाह यो दिगम्बर को ह्वै रही ॥१३॥

*

बिहरति रहै बनराज जू मे आठौ जाम,
और सो न काम, गान गावैं नदलाला के ।
फाटी मी पिछौरिया मे, राजत हजार चीर,
दिपत अनूप रूप, छौने मृगछाला के ॥
'लाल बलबीर' स्यामा-स्याम जू के रंग भरे,
तिन को न व्यापत कसाला भूलि पाला के ।
ओढि-ओढि साधु प्रेम-कुटी मे निवास करै,
गूदरी गूँथेवाँ मान मारत दुसाला के ॥१४॥

*

मृगमद-केसर-अगर-धूप-धूम काँपि,
सीत-भीत काँपन की रीतिहिं बुझावैं है ।
कहै 'रतनाकर' त्यो परदे दरीचिन के,
हिलि-हिलि हिलन अजोगता सुझावैं है ॥
संग-सुख संपति न दंपति बिहाइ सकै,
प्रीति सो परस्पर यो भाषि अरुझावैं है ।
सिसिर-निसा में निसरन को न चाह कहूँ,
गिलिम-गलीचा पाँय गहि समुझावैं है ।१५॥

मंजुल मकंदनि के कोपल सचोप लख,
लागे गान गुनन मलिंद छिन द्वैक तें।
कहै 'रतनाकर' गुलाबन में बौंडी लगी,
औंडी ओप औरहीं अनूप इन द्वैक तें॥
केसरि--कुरंगसार--लेप न सुहात अंग,
कन घनसार के मिलावैं किन द्वैक तें।
दाबी रहै हौसन कौ हुमस न ही मे अब,
फाबी फाब सीत पै गुलाबी दिन द्वैक तें॥१६॥

*

साथ प्राननाथ के सिसिर मे समोद बाल,
सरित सरोवरादि मॉहि अवगाहै ना।
बार-बार धूप ही मे बैठै छबि वारी जाय,
सीत-छोभ मॉहि छकी चाहै छनौ छाँहैं ना॥
'हरिऔध' सी-सी करै, सीतल समीर लगै,
सीतलता वाकी अजौं सुमुखी सराहै ना।
चाँदनी मे कढ़ै नैकौ चित मे उमाहै नाँहि,
चंदमुखी चाव कर चंद हू को चाहै ना॥१७॥

*

मृगमद--केसर--अगर--धूम--जालन कौ,
सुखद दुसालन कौ जदपि सहारौ है।
कहै 'रतनाकर' पै आनत बिचार आन,
कॉपि जात गात सब हहरि हमारौ है।
तन की कहा है अब आनि मन हू पै परयौ,
ऐसौ कछु सिसिर-प्रभाव कौ पसारौ है।
प्रान हू तें प्यारौ मान लागत सखी पै आज,
मान हू तें प्यारौ लगै, पीत पट वारौ है॥१८॥

*

थिर-चल सकल प्रबल भयभीत ह्वै कै,
जगत जुराफा सम गति दरसत है।
ठौर-ठौर बरसा ज्यो बरसै बरफ-पुंज,
आलय हिमालय चहूँघा सरसत है॥

उदित प्रभाकर की मुदित मयूखै पुर,
पुहुमी पियूप-धर कैसी परसत है।
सोचित सरोजन कौ, पोचित बदन पेखि,
रोचित कुमोदिनी कै मोद बरसत है॥१९॥

*

भानु सीतभानु के समान लघु भान भय।
वारी बरसान सां कुसान हू की साला मे।
दीपगन बारन भयौ है पौन बारन कै,
'सेवक' सितारन सु तारन की माला मे॥
माच्यौ फूल-फूल ह्वै अतूल तूल हू कौ तून,
तैसौ मखतूल भोग लोचन के जाला मे।
मदत मसाला की नवाला बिन बाला होत,
पाला सम लागत दुसाला सीत काला मे॥२०॥

*

चंद-छबि पागि, आगि औरै चलै भानु भागि,
सीत जागि-जागि जग ऐसै गरसत है।
रदन सो बोलै रद, बदन बिकासै कौन,
नदन की गौन-रौन सूधौ सरसत है॥
लागी जऊ झाँपै, मची झर की झरापैं, तऊ-
'सेवक जू' काँपै, न दुराब दरसत है।
दृढ़ बरसाला फोरि, साल हू दुसाला फोरि,
सकल मसाला फोरि, पाला बरसत है॥२१।

*

डोलन चहूँघा, मतवारे सम बोलत है,
सबै नर-नारि सुध भूले है सदन की।
केसर के रग बीच भीजे, अंग राजत है,
सहित गुलाल सोभा साजत वदन की॥
काहू कै विसेष नख-रेख है उरोजन पै,
काहू कै कपोलन निसानी है रदन की।
'रसिक बिहारी' हिय सोहिनी बिलोको घनी,
सिसिर है, कैधौं ये मोहिनी मदन की॥२२॥

पाबक जुडानी, विषधरन गॅवाई रिस,
चडकर सकल प्रचंडता विहाई है ।
चोर-विभिचारी निसि भ्रमन विहाय बैठे,
सिंह-वृक वृंद पैठ्यौ गुहन लुकाई है ॥
भीति बस जाके दिन दीन ह्वै कै सिमिटत,
पाला मिसि कीरति अपार जासु छाई है ।
'पूरन' विलोको जग सातुकी बनावन को,
सातमयी, सीतमयी सिसिर सुहाई है ॥२३॥

*

तंग पयोद लसै गिरि-सृंग, मिल्यौ चलि सीतलता सरसावत ।
त्यौं तरु-जूहन पे बिरमाय, घने सुख-साजन को लहरावत ॥
मंजु दरी निकरी जलधार, बसै पुनि सीकर संग लै धावत ।
ग्रीषम हू मे कँपावत गात, सुवात हिमांचल छ्वै जब आवत ॥२४॥

*

कोपि कासमीर ते चल्यौ है दल साज वीर,
धीर ना धरत गलगाजिवे को भीम है ।
सुन्न होत साँझ ते, बजत दंत आधी रात,
तीसरे पहर में दहल दै असीम है ॥
कहै 'कवि गंग' चौथे पहर सतावै आनि,
निपट निगोरौ मोहि जानि कै यतीम है ।
बाढ़ी सीत-संका, काँपै उर है अतंका, लघु-
संका के लगे तें होत लंका की मुहीम है ॥२५॥

*

मकर सीत बरसत विषम, कुमुद-कमल कुम्हिलात ।
बन-उपबन फीके लगत, पियरे जोउत पात ॥
पियरे जोउत पात, करत जाड़ौ दारुन अति ।
सो दूनौ बढ़ि जात, चलत मारुत प्रचंड गति ॥
भए नैक माहौठि, कठिन लागै सुठि हिमकर ।
'सेनापति' गुन इहै, कुपित दंपति संगम कर ॥२६॥

*

लोक सीत-साँसत सहत, दुरि दिन बितवत घाम ।
सिसिर माँहि कुहरा पर, मचत महा कुहराम ॥२७॥

शिशिर-विलास

कहूँ बौरे सरस रसाल बन-बागन मे,
सुखद सुगंध चाह अमित बढ़ावै है ।
कहूँ नव नागरी अनंग-रंग छाकी, हिय-
हुलसि बहार ते, बहार सुर-गावै है ।।
'रसिक बिहारी' कहूँ संग निज प्रीतम के,
नागरी छबीली बिपरीत-रीति छावै है ।
सिसिर की सीत कहूँ, मीत सो मिलन कहूँ,
कहूँ निज प्यारे को बसंत लै बधावै है ।।२८।।

*

सुंदर गुलाबी सीस महल बनौ सुभल,
विमल बनाती लगे परदा चमकिकै ।
चारु-चारु चतुर चहूँ दिसि बिछाए भाए,
गिलगिली गिलम-गलीचा सु दमकिकै ।।
'सोभन' धुकायौ मृगमद औ अगर-धूप,
झूमि-झूमि घूमै सखिगन त्यो लमकिकै ।
लिपट रँगीले लाल सिसिर के सीत-भीत,
अंग लावै लाड़िली को, अति ही झमकिकै ।।२९।।

*

गुन के निधान दोऊ, रूप के विधान दोऊ,
परम सुजान दोऊ, मिलि बतरावही ।
प्रीति-रीति देखै दोऊ, रहै अनमेखै दोऊ,
मुदित अलेखै दोऊ, रस बरसावही ।।
राधा-मनमोहन अनंग की तरंगन सों,
सिसिर की रजनी में सुख सरसावही ।
अगिनि परसि अरु पुलकित गात धरैं,
प्रेम में विवस ह्वै कै दोऊ लपटावही ।।३०।।

*

राजत है इहिं भाँति बन्यौ गृह, बात न बात जहाँ बिन काजै ।
है हँसती-हँसती चहुँघा, अरु त्यौं हँसती ब्रज-बाल बिराजै ।।
पानन को सनमान महा, बहु तान तरंगन की धुनि गाजै ।
'बल्लभ' राधिका-स्याम तहाँ लखु, सैसिर के सुख मे सुभ आजै ।।३१।।

भावै न सरित–सर तीर नीर बीर, और—
आतप हुतासन की तपनि सुहावै है ।
शिशिर की संक–बंक, अधिक उतग पर–
यंक पै छबीली सग सुख उँमगावै है ॥
अग–अंग भपै तऊ मिटत न सकै उर,
सी-सी करि रदन बतीसी बँधि जावै है ।
'रसिकबिहारी' राग–रंग मे अभग मोद,
तन पुलकावै, घनौ मदन जगावै है ॥३२॥

*

रतन जटित त्यो घटित घर चारो ओर,
दरन दिवारन किवारन मुदाए है ।
परदा पसम के असम के पडे है, गोल—
गेदुआ गलीचन, गिलम गुदवाए है ॥
'मजु कवि' आतस अँगीठी धूप घूमि–घूमि,
धूम भूमि–भूमि सुचि सौरभ सुहाए है ।
केलि, कल क्रीडा–बीडा, हँसन–बसन द्युति,
दंपति दिपति दिव्य सीत सिसिराए है ॥३३॥

*

बैठे चित्रसाला में, बिसाला रूप बाला-लाला,
एक बैस बाला हू मे, अंग उजियाला है ।
दीन्हे गल बाँई, तन–मन सो लगाई, मानो–
सुंदर अमोल कंठ मेली बनमाला है ॥
'लाल बलबीर' ब्यापै हिम की न पीर बीर,
प्रेम रनधीर पिऐ, रूप–रस प्याला है ।
देखि छबि आला, बाला होत है निहाला, संग–
राजै प्रतिपाला, राधे छैल नदलाला है ॥३४॥

*

आज रंग महल बिराजैं, श्री स्यामा-स्याम,
जग–मग चारो ओर दीपक उजाले हैं ।
विविध बनातन के, परदे परे द्वारन पै,
'लाल बलबीर' भब्बा भूमत निराले हैं ॥

विद्रुम पलंग, तापै गादी मलमली, जापै-
बसन रँगीले, तर-अतर मसाले है।
कहा सीत-पाले, खाँय गरम मसाले, पिऐ-
प्रेम-मधु प्याले, ओढ़ै चौहरे दुसाले है ॥३५॥

*

गरम गिलौरी है नकुल नौनी नेजन की,
ब्यजन अनेकन मे, गरम मसाला है।
सुंदर मधुर मीठे मेवा धरे थारन मे,
पराके सुधा मे भरे कंचन के प्याला है॥
'लाल बलबीर जू' कं पाला के कसाला कहा,
आय-आय लागत नवीन उर बाला है।
जरै दीप-माला, सेज सुंदर बिसाला जाकैं,
साल है, दुमाला है, बिसाला चित्रसाला है ॥३६॥

*

पौन प्रविसै न, परे परदे, दिऐ है पट,
आतसी अबास, आस-पास के भरे रहै।
दिपै दीप झुंडन, दिवारन दिवालगीर,
फरसी फनूस चहुँ रौसन धरे रहै॥
अगर की धूप, सेज अंबर अतर रूप,
'सेवक' मसाले मौज मन के करे रहै।
दपटे मनोज, तेऊ झपटे सिसिर-सीत,
छपटे दुसालन मे, लपटे परे रहै ॥३७॥

*

कंचन के पलँग बिछाए सीसमहल मे,
चद्दर सुपेदी, सनी सौरभ रसाला मे।
ओढ़ै ऊन अंबर सकल नख-सिख तऊ,
नैक हू न मानै मन रहत कसाला मे॥
'कवि बंसरूप' साजे दीपगन माला स्वच्छ,
अधिक उतंग त्यो अनंग चित्रसाला मे।
मदुत मसाला हैं, बिसाला जे दुसाला आला,
पाला सम लागै, बाला बिन सीत-काला मे ॥३८॥

राजै आस-पास दासी खासी कर बीन लै-लै,
गावत सुहावनी अनूप तान ताला मे ।
चारो ओर द्वारन पै परदे पसमीनन के,
राखे भर अतर अमोल दीपमाला मे ॥
'लाल बलबीर' प्याला भरे खीर पन्नन के,
पानन के बीरे भर राखे है मसाला मे ।
सजा सेज आला, आवै मदन गोपाला आजु,
ओढ़ि कै दुसाला बाला बठी चित्रमाला मे ॥३९॥

★

सोभित सखीन मध्य सुंदर नवेली बाल,
ऐसी छबि देत है अनूप तिहि काला मे ।
जैसे उडुगन मध्य राजत सुधाधर जू,
फैल रही जगा-जोति जोबन उजाला मे ॥
'लाल बलबीर' अंग भूषन नबीन राजै,
जड़ित जवाहिर अमोल हेम-माला मे ।
सजा सेज आला, आवै मदनगोपाला आजु,
ओढ़ि कै दुसाला बाला बैठी चित्रसाला मे ॥४०॥

★

बैठी केलि-मदिर मे सुंदर सिंगार साजि,
आगम बिलोक रही प्यारे नंद-लाला
द्वारन मे परदे परे है मखतूलन के,
तूल भरे दमदमात, लाल रंग गाला के ॥
'लाल बलबीर' के रिझावन विचित्र चित्र,
रचे चित्रसाला मे अनेक केलि-माला के ।
पाला के कसाला के नसावन बिसाला, जहाँ-
राजत अनेक वस्त्र रेसमी दुसाला के ॥४१॥

★

चमचमात चाँदनी चँदोवा लगै चंद्रमा से,
राजै तसवीर बिपरीति-रीति बाला की ।
चौलंग दिवालगिरी, सोहत फनूस-झाड,
चहकै चिराग, छबि छाई दीपमाला की ॥

'लाल बलबीर' सजी, सुंदर सजीली सेज,
गिलम-गलीचे-गादी सुरख दुसाला की।
शिशिर के पाला के कसाला काटिबे के हेत,
रची है बिसाला चित्रसाला नंद-लाला की ।।४२।।

*

सुभग पलंग पै बिराजै नाथ साथ सब,
बिविध सिंगार साजि जेती पुर-बाला हैं।
ओढ़ि कै दुसाला, उर कंचुकी कसाला,
गरे मोतिन की माला, हीर-हार हू बिसाला है ।।
कंचन-अंगीठी सो सु मीठी-मीठी धूम उठै,
मन काम स्याम हेतु, रचे धूम जाला है।
'सोभन' भनत एते उदित मसाला जामैं,
तामैं बिच केलि करै ओढ़िकै दुसाला है ।।४३।।

*

कारचोबी कीमत के परदा बनाती चारु,
चमक चहुँघा समादान जोत-जाला मे।
फरस गलीचन के बीच मसनंद, तापै—
मखमली गोल-गोल गुलगुली गाला मे ।।
'ग्वाल कवि' आला सेजबंद सेज सुंदर पै,
आला मे मसाला धरे, अगर मसाला मे।
चाहत लला को चित्रसाला मे सुबाला आज,
सौतन दुसाला दिऐं लिपट दुसाला में ।।४४।।

*

खंभे दार रावटी बनाती लाल डेरन मे,
अगर अँगीठी करी सीत की भजाई है।
कहै 'सिवराम' पसमीने की बिछाइत पै,
तखत के रूप सेज सरस सजाई है ।।
मोरछली अलकैं, अनूप सीसफूल छत्र,
संजित कौ सोर काम नौबत बजाई है।
प्यारे कौ मिलाप, प्यारी पातसाही पाई, रीझि-
सौतिन कों सालै, दई सखिन रजाई है ।।४५।।

शिशिर–बिरह

बैठी चित्रसाला मैं बिलोकत पिया की बाट,
होय गौ कहा री खाय गरम मसाला में ।
सीतल समीर अग तीर सी लगै है बीर,
मानो ये लिपट आई बरफ हिमाला ते ॥
'लाल बलबीर' पीर कब लौ सहू मै बीर,
कीजिऐ उपाय री, बचाओ काम-ज्वाला ते ।
भई मैं बिहाला, बिन ए री नंदलाला, नही–
सिसिर कौ सीत जाय, साल औ दुसाला ते ॥५३॥

*

कौने बिरमाए,छैल अज हू न आए, अबै—
मन लेत दाए, को बचावै सीत–काला तें ।
दौरि-दौरि आली झुकि-झाकत झरोखन मे,
लगन लगी है मेरी मदन गुपाला तें ॥
'लाल बलबीर' बिन, जागी बिरहा की पीर,
जाइऐ जरूर, दौर लाइऐ उताला तें ।
भई मै बिहाला, बिन ए री नदलाला, नही–
सिसिर कौ सीत जाय, साल औ दुसाला तें ॥५४॥

*

देत है न कल, एकौ पल ए हो रघुनाथ !
पौन पछिवाँही बहै अंगन छिलत सौ ।
पानी की कहानी,सो तौ जाती न बखानी कछू,
नैक परसत पानि पाय पिघलत सौ ॥
कैसे कै हिमंत-अत सिसिर कौ ह्वै है, पल–
पट के टरत, पेट पीठ सो मिलत सौ ।
जब सो उयौ है आज, तब सो देखि सखी,
तरनि कौ तेज, सीत आवत मिलत सौ ॥५५॥

*

पूस कौ मास सु बीति गयौ, हिय जोस भरी बिरहागिन पैठी ।
दोष कहौ किहि कौ कहिऐ, अब तो सन होत है जाऊँ मैं कैठी ॥
याद ह्वै बोल मसोसत है जिय, होस परी रहै तासु अँगैठी ।
नैक तजै अफसोस कियौ, जिहिं हाय ! सो तीनसौ कोस पै बैठी ॥५६॥

अब आयौ माह, प्यारे लागत है नाह, रवि–
करत न दाह, जैसौ अवरेखियत है।
जानिऐ न जात, बात कहत बिलात दिन,
छिन सो न ताते, तनकौ बिलेखियत है॥
कलप सी रात, सो तौ सोए न सिरात क्यो हू,
सोइ–सोइ जागे, पै न प्रात पेखियत है।
'सेनापति' मेरे जान दिन हू ते रात भई,
दिन मेरे जान सपने मे देखियत है॥५७॥

*

परे तें तुसार, भयौ झार पतझार, रही–
पीरी सब डार, सो बियोग सरसत है।
बोलत न पिक, सोई मौन ह्वै रही है, आस–
पास निरजास, नैन नीर बरसत है॥
'सेनापति' केली बिन, सुन री सहेली! माह–
मास न अकेली, बन–बेली बिलसत है।
बिरह तें छीन, तन भूषन–बिहीन दीन,
मानहु बसंत–कंत काज तरसति है॥५८॥

*

लागै न निमेष, चार जुग सौ निमेष भयौ,
कही न बनति कछु, जैसी तुम कंत की।
मिलन की आस तें उसास नाँही छूटि जात,
कैसे सहौ सासना मदन मयमंत की॥
बीती है अवधि, हम अबला अबध, ताहि–
बधि कहा लैहौ, दया कीजै जीव–जत की।
कहियो पथिक परदेसी सो, कि धन पीछे–
ह्वै गई सिसिर, कछु सुधि है बसंत की॥५९॥

*

सीत समय परदेस कों पीय–पयान सुन्यो, वह रोवन लागी।
या रितु मे हरि क्यो हूँ रहै, घर देवता पूजि मनावन लागी॥
और उपाय तक्यौ न कछू, तब साजिकै बनि बजावन लागी।
प्यारी प्रबीन भरे सुर मेघ-मलार अलापि कै, गावन लागी॥६०॥

फाग और होली

फाग रस–रंग

(राग देवगधार)

रविजा–तट कुंजन मे, गिरिधर खेलत फाग सुरंग ।
गोप-बाल गोकुल के सब ही, लिए जोरि सब सग ॥
श्री वृषभान–सुता सो, प्रमुदित चले करन हित जंग ।
सोभा अद्भुत बनी सबन की, निरखत लज्यौ अनंग ॥
नव सत साज सिगार राधिका, सनमुख आई दौरि ।
प्रेम सहित नैनन अवलोकत, साथ सखी सब जोरि ॥
पिचकारी भरि लई कनक की, केसर–रस सो घोरि ।
छिरकत चौप परस्पर बाढ़ी, हँसत मृदुल मुख मोरि ॥
चोवा–मेद–फुलेल–अगरजा, लीन्हो सुभग बनाय ।
भरि-भरि बेला सब छिरकत हैं, उर आनँद न समाय ॥
सरस सुगंध उड्यौ अति बूका, दिन-मनि लख्यौ न जाय ।
चहूँ ओर रस-सागर उमड्यौ, स्रुति-पथ गयौ बहाय ॥
बचन विवेक न बोलत तिहि छिन, सुधि भूली, नहि चेत ।
सोर करत सब ही धावत हैं, हो–हो सब्द समेत ॥
राधा लाल गुलाल मुठी भरि, डारत अति सुख हेत ।
बाहर उर अनुराग दुहुँन कौ, प्रगट दिखाई देत ॥
पटह–झाँझ-झालर–डफ आवज, बीना-सुर कल मद ।
ताल–पखावज–मुरली–महुवर, बाजत मुरज सु छंद ॥
गारी ब्रज-ललना मिलि गावत, मन मे अति आनंद ।
फगुवा मन भायौ सब माँगत, पकरे आनँद–कंद ॥
उलटि सखन–तन चितए मोहन, बाढ़यौ रंग अपार ।
भयौ मूढ़ मन सेष कहन को, राधा–कृष्न बिहार ॥
सिव समाधि भूल्यौ, विधि मन मे पछितायौ बहु बार ।
जो माँग्यौ फगुवा, सो हँसि कै दीनो नंद–कुमार ॥
कुसुमित विपिन सुबल बहु विधि सो, दरस करन को आयौ ।
रितु बसत केकी–सुक-पिक मिलि मधुपन बोल सुनायौ ॥
थके देव–किन्नर, सुर–बनिता अनि मन मे सुख पायौ ।
'गोकुलचद' सरूप सुखद कौ गुन, संभ्रम सों गायौ ॥ ६१ ॥

(राग गौरी)

खेलत फाग कुँवर गिरिधारी।
अग्रज-अनुज-सुबाहु-श्रीदामा, ग्वाल-बाल सब सँग अनुसारी॥
इत नागरी निकस घर-घर तें, आगै दै वृषभान-दुलारी।
नव सत सजि ब्रजराज-द्वार मिलि, प्रफुलित भीर भई अति भारी॥
दुदभि-ढोल-पखावज-आवज, बाजत डफ-मुरली रुचिकारी।
हस्त कमल लीऐं कर उनमद, भाजत गोप त्रियन सो हारी॥
बाँह उठाय पढ़त हो-होरी, लै-लै नाम देत प्रभु गारी।
इत राधिका निकसि मडल तें, मनमुख पिय डारत पिचकारी॥
इक गोपी गोपाल पकरि कै, अपने मेल, लै गई सारी।
आँजत आँख, मनावत फगुवा, हँसत-हँसावत हरि-चितहारी॥
'सूरदास' आनद-सिधु मे, मगन भए है सब नर-नारी।
सुर विमान कौतुक भूले है, कोटि मनोज जाँय बलिहारी।६२॥

*

(राग जैतश्री)

खेलत फाग संग मिलि दोऊ, आनँद भरि पिय-प्यारी।
नवल किसोर रसिक नँदनंदन, नव वृषभान-दुलारी॥
नव रितुराज, लता-द्रुम फूले, बरन-बरन छवि न्यारी।
गुंजत मधुप, कीट-पिक कुंजत, स्रवन सुनत सुखकारी॥
तैसोइ सुभग गौर-स्यामल तन, बनी जोट इकसारी।
कमल नैन पर बूका मेलत, हँसि सकुचत सुकुमारी॥
भरि अरगजा कनक-पिचकारी, धाईं सबै ब्रज-नारी।
भरति भावतें मदनगुपालैं, बढ्यौ रंग अति भारी॥
बहुरयौ मिलि दस-पाँच अली, गोविंद भरे अँकवारी।
चोबा-चंदन-अगर-कुमकुमा, दियौ सीस तें ढारी॥
प्रेम मगन मोहन-मुख निरखत, तन सब दसा बिसारी।
'चतुर्भुज' प्रभु सुर-नर-मुनि मोहे, गुन-निधान गिरिधारी॥६३॥

*

(राग केदारौ)

पकरि बस कीने री नँदलाल।
काजर दियौ खिलार राधिका, मुख सौं मसलि गुलाल॥
चपल चलन कों अति ही अरबर, छूटि न सके प्रेम के जाल।
सूधे किए बंक ब्रजमोहन, 'आनँदघन' रस-ख्याल॥६४॥

(राग सोरठ)

मनमोहन खेलत फाग री, हौं क्यों कर निकसौं ।
मेरे संग की सबै गईं, मोहि प्रगट भयौ अनुराग ॥
एक रैन सपनौ भयौ री, नंदनँदन मिले आय ।
मैं सकुचत घूँघट कढ़यौ, उन भेंटी भुज लपटाय ॥
अपनौ रस मोको दियौ री, मेरौ लीयौ घूँट ।
बैरिन पलकै उघरि ते, मेरी गई आस सब छूट ॥
फिर मैं बहुतेरौ कियौ री, नैक न लागी आँख ।
पलक मूँदि परचौ लियौ, मैं जाम एक लौं राख ॥
ता दिन द्वारें ह्वै गयौ री, होरी-डाँडौ रोप ।
सास-ननद देखन गईं, मोहिं घर-रखवारी सोप ॥
सास उसासन त्रासही री, ननद खरी अनखाय ।
देवर डग धरिवौ गिनै, मेरौ बोलत नाह रिस्याय ॥
तिखने चढ़ि ठाढ़ी रहौं री, लेवौं करौं कन हेर ।
रात-दिवस हो-हो रहै, बिच वा मुरली की टेर ॥
ऐसी मन मे आवही री, छाँड़ि लाज-कुल-कान ।
जाय मिलो 'ब्रज-ईस' सो, रतिनायक रस की खान ॥६५॥

*

(राग सारग)

आज हरि खेलत फाग बनी ।
इत गोरी रोरी भरि भोरी, उत गोकुल कौ धनी ॥
चोबा कौ ढोवा करि राख्यौ, केसर-कीच घनी ।
अबीर-गुलाल उड़ावत-गावत, सारी जात सनी ॥
हाथन बनी कनक पिचकाई, ग्वालन छूटि घनी ।
'नंददास' प्रभु सँग होरी खेलत, मुरि-मुरि जात अनी ॥६६॥

*

(राग सारग)

खेलि फाग घर आयौ लाड़िलौ, जसुमति करत बधाई ।
विविध उपहार लिए सब गोपिन, ब्रज जन मंगल गाई ॥
कनक-थार भर मुक्ताफल, लै आरती उतराई ।
नंदनँदन की या छवि ऊपर, 'सूरदास' बलि जाई ॥६७॥

होली की धूम–धाम

(राग जैतश्री)

नंद-कुँवर खेलत राधा सँग, जमुना-पुलिन सरस रँग होरी ।
नव घनस्याम मनोहर राजत, स्यामा सुभग तन दामिनि गोरी ॥
केसरि के रंग कलस भरे बहु, संग सखा हलधर की जोरी ।
हाथन लिऐ कनक पिचकारी, छिरके ब्रज की नवल किसोरी ॥
चीर-अबीर उड़ावत, नाँचत कटि सो बाँधि गुलाल की झोरी ।
मगन भईं क्रीडत सब सुंदरि, प्रेम-समुद्र-तरंग झकोरी ॥
बाजत चंग-मृदंग-अधौटी, पटह–झाँझ–झालरि सुर घोरी ।
ताल–रबाब-मुरलिका–बीना, मधुर सब्द उघटत धुनि थोरी ॥
अति अनुराग बढ़यौ तिहि औसर, कुल-लज्जा मर्यादा तोरी ।
मदनगोपाल लाल सँग बिहरत, देह-दसा भूली भई बौरी ॥
एक गहत फैंटा फगुवा को, एक करत ठाडी जुठठोरी ।
एक जु आँख आँजि कै भाजी, एक बिलोकि हँसी मुख मोरी ॥
एकन लई छिनाइ मुरलिका, देत गारि मोहन को भोरी ।
एक फुलेल-अरगजा–चोवा, कुमकुम रस-गागर सिर ढोरी ॥
विविध भाँति फूल्यौ वृंदाबन, कुंजत कीर- खटपद-पिक-मोरी ।
निरखत नेह भरी अँखियन सो, यो चितवत निसि चद चकोरी ॥
थके देव-किन्नर-मुनिगन सब, मनमथ निज मन गयौ लज्योरी ।
'परमानंदास' या सुख को जाँचत, बिमल मुक्ति पद छोरी ॥६८।

*

(राग गौरी)

खेलत मदनमोहन पिय होरी ।
लरिका संग सकल गोकुल के, करत कुलाहल ब्रज की खोरी ॥
भवन-भवन तें निकसि द्वार ह्वै, अति प्रफुलित मन नवल किसोरी ।
सोधौ लिऐ कनक-बेला भर, अरगज-कुमकुम सो घसि छोरी ॥
एक गुवालि गुलाल लिऐ कर, एकन लई बहुत कर रोरी ।
एक पलास कुसुम-रँग बरसत, एक लिऐं बीरा भर झोरी ॥
बाजत ताल-मृदंग-झाँझ-डफ, बिच-बिच मोहन मुरलि धुन थोरी ।
मधुर बचन हँसि कहत परस्पर, 'गोविंद' प्रभु लीनो चित चोरी ॥६६॥

(राग गौरी)

खेलत नंद कसोर ब्रज मे, अति रस बाढ्यौ हो-हो होरी ।
गौरी राग अलापत-गावत, मधुर मुरलि कर घोरी ॥
कटि पियरौ पट फैंट बनी, छवि सीस चंद्रिका-मोर ।
मनमथ-मान हरन हँसि चितवन, चपल नैन की कोर ॥
बालक वृंद स्याम सँग सोभित, उत सोहत ब्रज-नारी ।
विविध सिंगार सजे मिल झुंडन, देत भामती गारी ॥
देखि समाज मदनमोहन कौ, भईं मगन उल्लास ।
तिनमे मुख्य राधिका नागरि, सकल सुखन की रास ॥
दुंदुभि-झाँझ-मुरज-ढप बाजै, मृदंग-उपग अरु तार ।
दुहुँ दिसि माच्यौ खेल परस्पर, घोषराय दरबार ॥
चोवा-साख-अरगजा चदन, केसर सुरंग मिलाय ।
तकि-तकि तरुनि गुपालैं छिरकत, करन कनक-पिचकाय ॥
उत मन मुदित लिऐं कर सोंधौ, सखन सहित बलबीर ।
जुवति कदंबन ऊपर बरसत, सुरंग गुलाल अबीर ॥
जुवती-जूथ पेलि सनमुख ह्वै, मोहन पकरे जाय ।
काजर नैन आँजि प्रीतम के, मुरली लई छिनाय ॥
पिय-प्यारी की जोट बनाई, अंचल सों पट जोरि ।
सैनहि सैन परसि कर सों कर, हँसत सबै मुख मोरि ॥
मगन भईं, तन की सुधि बिसरी, हृदै बढ्यौ अनुराग ।
ये सुख तीन लोक मे नाँही, गोपिन कौ बड़ भाग ॥
चीर-हार अँग-अंगन भीजैं, कीच मची ब्रज-खोर ।
मानहुँ प्रेम-समुद्र अधिक बल, उमँगि चल्यौ मित छोर ॥
'चतुर्भुजदास' विलास फाग कौ, कहत न बरन्यौ जाय ।
लीला ललित देव गन मोहे, गिरि गोवरधन-राय ॥७०॥

*

(राग रामकली)

होरी के मदमाते आए, लागै हो मोहन मोहि सुहाए ।
चतुर खिलारिन बस करि पाए, खेलि-खेल सब रैन जगाए ॥
दृग अनुराग गुलाल भराए, अंग-अंग बहु रंग रचाए ।
अबीर-कुमकुमा केसरि लैकै, चोवा की बहु कींच मचाए ॥
जिहिं जाने तिहि पकरि नँचाए, सरवस फगुवा दै मुकराए ।
'आनँदघन' रस बरसि सिराए, भली करी हम ही पै छाए ॥७१॥

(राग कल्यान)

होरी खेलत कुंज-बिहारी ।
संग लिऐ केसर-कुमकुम भरि, पिय पर प्यारी डारी ॥
चोबा-चदन-अगर-अरगजा, चरचित ब्रज की नारी ।
तकि-तकि छिरकत हैं मोहन कों, किलक देत कर-तारी ॥
मदनगोपाल गहे श्री राधा, हमहि देहु फगुवारी ।
श्रीगिरिधरलाल दियौ तहाँ सरवस, 'रामदास' बलिहारी ॥७२॥

*

(राग नट)

बहुरि डफ बाजन लागे हेली ॥ ध्रु० ॥
खेलत मोहन साँवरौ हो, किहि मिसि देखन जाँय ।
सास-ननद बैरिन भई, अब कीजै कौन उपाय ।
ओजत गागर डारिऐ, जमुना-जल के काज ।
इहिं मिस बाहर निकसि कै, हम जाय मिलैं तजि लाज ॥
आओ बछरा मेलिऐ, बन कों देहि विडार ।
वे दै है हम ही पठै, हम रहेगी घरी द्वै-चार ॥
हा-हा री हौ जात हों, मोपै नाहिंन परत रह्यौ ।
तू तो सोचत ही रही, तै मान्यौ न मेरौ कह्यौ ॥
राग-रंग गहगड मच्यौ री, नंदराय-दरबार ।
गाय-खेलि-हँसि लीजिऐ, फाग बड़ौ त्यौहार ॥
तिन मे मोहन अति बने, नाँचत है सब ग्वाल ।
बाजे बहु विधि बाजहीं, रुंज-मुरज-डफ-ताल
मुरली-मुकट विराजही, कटि पट बाधैं पीत ।
नृत्यत आवत 'ताज' के प्रभु, 'गावत होरी-गीत ॥७३॥

*

(राग सारग)

नैनन मे जिन डारो गुलाल, तिहारे पाँय परत नदलाल ।
होत है अंतर पिय दरसन मे, बिन दरसन बेहाल ॥
कनक-बेलि वृषभान-नदिनी, प्रीतम स्याम तमाल ।
रितु बसंत वृंदावन फूल्यौ, नाँचत गोपी-ग्वाल ॥
ब्रज के लोग सबै जुरि आए, करत कुलाहल ख्याल ।
'रामदास' प्रभु गिरिधर नागर, पीक-रंग सोहै गाल ॥७४॥

(राग काफी)

ब्रज मे हरि होरी मचाई ॥
इत तें आई सुघर राधिका, उत तें कुँवर कन्हाई ।
हिल-मिल फाग परस्पर खेले, सोभा बरनी न जाई ।
नंद-घर बजत बधाई ॥
बाजत ताल-मृदंग-बाँसुरी, बीना-डफ-सहनाई ।
उड़त अबीर-गुलाल-कुमकुमा, रह्यौ सकल ब्रज छाई ।
मानो मघवा झर लाई ॥
लै-लै रग कनक-पिचकारी, सनमुख सबै चलाई ।
छिरकत रग, अंग सब भीजे, झुकि-झुकि चाचर गाई ।
परस्पर लोग-लुगाई ॥
राधा सैन दई सखियन को, झुंड-झुंड घिर आईं ।
झपटि लपट गईं स्यामसुंदरसो, परबस पकड़ लै धाईं ।
लाल जी को नाँच नँचाई ॥
छीन लई मुरली-पीतांबर, सिर तें चुनरि उढ़ाई ।
बैंनी भाल, नैन बिच कजरा, नकबेसर पहराई ।
मनो नई नारि बनाई ॥
मुसकत हौ, मुख मोड़ि-मोडि कै, कहाँ गई चतुराई ।
कहाँ गए तेरे तात नंद जी, कहाँ जसोदा माई ।
तुम्है अब लै न छुडाई ॥
फगुवा दिए बिन जान न पावो, कोटिक करो उपाई ।
लैहौं काढ़ि कसक सब दिन की, तुम चित-चोर, चबाई ।
बहुत दधि-माखन खाई ॥
रास-विलास करंत वृंदावन, जहाँ-तहाँ यदुराई ।
राधा-स्याम जुगल जोरी पर, 'सूरदास' बलि जाई ।
प्रीति उर रही समाई ॥७५॥

★

(राग कान्हरौ)

मोसों होरी खेलन आयौ ।
लटपटी पाग, अटपटे बैनन, नैनन बीच सुहायौ ॥
डगर-डगर मे, बगर-बगर में, सबहिंन के मन भायौ ।
'आनँदघन' प्रभु कर दृग मींड़त, हँसि-हँसि कंठ लगायौ ॥७६॥

(राग सारंग)

अहो खेलत होरी, प्यारौ लाल बिहारी, सग वृषभान-दुलारी ।
जमुना-पुलिन सुहावनौ, जहाँ फूलि रहे द्रुम भारी ॥
गुंजत मधुप, कीर-पिक कुंजत, स्रवन सुनत सुखकारी ।
इतहीं गोप-कुमार विराजत, उत सब गोकुल-नारी ॥
इत नायक बल-मोहन दोऊ, उत चंद्रावलि प्यारी ।
इतके कर गेंदुक फूलन की, उत गुहि माल सँभारी ॥
पहरावत पीतम प्यारे को, देत-दिवावत गारी ।
बाजत ताल--मृदग--झाँझ--डफ, तूर-भेरि--सहनारी ॥
ढोलक--ढोल--निसान -महूवर, बिच मुरली मनहारी ।
इनन लई भरि कनक--कटोरी, उनन लई पिचकारी ॥
अति कसि बाँधें फेंट गुलालन, मुठी अबीर उड़ारी ।
बूका--बदन उडत चहूँ दिसि, दिन निसि ज्यो अँधियारी ॥
नैन--सैन दै हँसत परसपर, धाय गहे गिरिधारी ।
चोबा--केसरि--मृगमद घोरी, दियौ सीस तें ढारी ॥
रोरी हरद कपोलन मीडत, आँखि आँजि अनियारी ।
एकन लियौ झपट पीतांबर, एक भरत अँकवारी ॥
श्री राधा सो कर गठजोरौ, नाँचत दै कर--तारी ।
भीज्यौ रस खेलत रंगन मे, रँगमगे भूषन-सारी ॥
अधर-माधुरी पिवत-पिवावत, मेटी मदन-व्यथा री ।
क्रीड़त देख नदनंदन, सुर करत कुसुम बरखा री ॥
रस-बस खेल मच्यौ जु परस्पर, बरनै कवि कहा री ।
अविचल रहो सदा ये जोरी, 'कृष्णदास' बलिहारी ॥७७॥

*

(राग आसावरी)

आजु हरि खेलत होरी, सँग वृषभान-किसोरी ।
पूनौ निसि डहडही उजियारी, बाँह-बाँह मे जोरी ॥
चाँदनि में गुपाल की चमकनि, अरु बुक्कन की झोरी ।
जमुना तीर स्वेत बारू मधि, अति सोभित भइ होरी ॥
इत सब सखा खेल बौराने, उत मदमाती गोरी ।
अद्भुत छवि 'हरिचंद' देखिकै, रह्यौ हरषि तृन तोरी ॥७८॥

(राग सारग)

मोहन हो-हो, हो-हो होरी ।
काल्ह हमारे आँगन गारी दै आयौ, सो को री ॥
अब क्यो दुर बैठे जसुदा ढिग, निकसो कुंजबिहारी ।
उमँगि-उमँगि आई गोकुल की, वे सब भई धन बारी ॥
तबहिं लला ललकारि निकारे, रूप-सुधा की प्यासी ।
लपट गईं घनस्याम लाल सो, चमकि-चमकि चपला सी ॥
काजर दै भजि भार भरु वाके, हँसि-हँसि ब्रज की नारी ।
कहै 'रसखान' एक गारी पर, सौ आदर बलिहारी ॥७९॥

*

(राग आसावरी)

बरसाने की नवल नारि मिलि, होरी खेलन आईं ।
बरवट धाय, जाय जमुना-तट, घेरे कुँवर कन्हाई ॥
अति झीनी, केसरि-रंगभीनी, सारी सुरंग सुहाई ।
कंचन बरन कंचुकी ऊपर, झलकत जोबन-झांई ॥
केसर-कस्तूरी-मलयागिरि, भाजन भरि-भरि लाईं ।
अबीर-गुलाल भेंट भरि भामिनि, करन कनक-पिचकाई ॥
खेलत-खेलत रसिक-सिरोमनि, राधा जु निकट बुलाईं ।
'ऋषीकेस' प्रभु रीझि स्याम घन, बनमाला पहराई ।८०॥

*

(राग सोरठ)

हौ कैसै जमुना जल जाऊँ, री हरि मो तन हेरै ।
मेरे संग की जान देत, वु मेरौ ही मग घेरै ॥
नीचौ ह्वै, घूँघट तकै, मेरे सनमुख दरपन लाय ।
मुख-प्रतिबिंब निरखि कै, छिन-छिन लेय बलाय ॥री हरि०
डगर बुहारै काँकरी, री डारै दूर उठाय ।
मधुर बैन मोसों कहै, चरनन जिन चुभि जाय ॥री हरि०
जब ही हौं गागर भरौं, री तब ही पैठ अन्हाय ।
तू जिन परसै सीत में, कहि मोही पै जु भराय ॥री हरि०
हँसि कर कलस उचावही, री मिस कर पकरै बाँह ।
क्यो हू हटक्यौ ना रहै, मेरी छल कर पकरै छाँह ॥री हरि०
यद्पि सकल ब्रज-सुंदरी, री सब सो खेलै फाग ।
मन-क्रम-वच 'ब्रज-ईस' के, नित मोही सो अनुराग ।८१॥ री०

(राग सारंग)

अहो पिय ! मोसो ही खेलो, हौं खेलौ तुम संग ।
जो कोऊ और खेलि है तुम सो, कर हौ तामै भंग ॥
हौ ही आँजौ तुम्हारे नयना, जानै न और गँवारि ।
तुम मेरे मुख मृगमद माँड़ो, हौ भेंटौ अंकवारि ॥
तुम डफ लेहु आपुने ही कर, हौ गाऊँगी गारि ।
कुमकुम रंग जो छिरको भरि-भरि रत्नजटित पिचकारि ॥
तुम सो कहे लेत फगुवा मै, हौ आलिंगन लेहौ ।
'ब्रजपति' आज आन बनिता कौ, लागन लाग न देहौ ॥८२॥

*

(राग सारंग)

हो–हो होरी खेलन जैऐ, जाय खिलैऐ कुँवर कन्हैऐ ।
अपने संग तें फूटि परै छिन, वाहि नियारै न पत्यैऐ ॥
बहुत गुलाल केसरि कौ रस लै,समाज खिलारत न घैऐ ।
अपने रंग मे ऐसै बोरिऐ, स्याम रंग ढूँढ़यौ नहि पैऐ ॥
इकतन,इकमन होय सखीरी,बाँह पकरि,वाकौ सीस नवैऐ ।
भाज चलै तौ तारी दै हँसि, सब ब्रज मे री वाहि लजैऐ ॥
फगुवा के मिसि फेंट पकरि कै,मृदु मुसिकाय बदन-तन चहिऐ ।
'जगन्नाथ कविराय' के प्रभु सो,हिलि-मिलिकै रस सिंधु बढैऐ ॥८३॥

*

(राग विहागरौ)

रसिक दोऊ खेलन लागे होरी ।
उततें निकसे नंदनँदन, इत बरसाने की गोरी ॥
बाजत ताल–मृदंग-झाँझ -डफ, मुरलि मधुर धुनि थोरी ।
गोपी–ग्वाल सबै जुर आए, भवन रह्यौ नहि को री ॥
भवन–भवन तें भामिनि निकसी, छिरकत चंदन–रोरी ।
बाजत बीन–रबाब–किन्नरी, मनमथ -मान लज्यौ री ॥
भरत भामते मदनगोपालै, हो–हो–हो करि दौरी ।
स्यामा-स्याम की या छवि ऊपर, सब डारत तृन तोरी ॥
तारी दै ललितादिक भाषत, भली बनी ये जोरी ।
केसर और मँगाय विविध रंग, दियौ सीस ते ढोरी ॥
खेल मच्यौ ब्रज–बीथिन महियाँ, कुंज-कुंज बर खोरी ।
'मुरारिदास' प्रभु फगुवा दीयौ, लोचन लगी ठगोरी ॥८४॥

(राग सारंग)

होरी खेलि न जानैं, तू कब की खिलवारि ।
बरजत हौ. रहि ग्वालिनि ! खेजै कीरति-सुकुमारि ।।
जब आवत कर कमल-नाल लै, थोरौ सौ घूँघट डारि ।
चलत दृगचल, अंचल औ झल मूर्ति मैन--सर मारि ।।
गरुवे वचन, बोल हरुवे, दै जात मवन को मारि ।
कर पर कर,धर चिबुक अँगुरिया,इकटक रही निहारि ।।
दक्खिन चरन उठाय उलटि, धरनी जो अगूठा धारि ।
एकटक देखि रहत ठाडी, धर रूप त्रिभंगी नारि ।।
कबहुँ सकुचि घूँघट गहरौ दै, गावत सरस धमार ।
बहुत गुलाल उड़ाय गगन, फिर देखत बदन उघार ।।
तुलत न रति नख-सिख एकौ अँग,को कहि सकै विचार ।
मनहरनी ब्रज-तरुनि सबै, ये 'मोहन' मन फँदवार ।।८४।।

*

(होली डफ की)

मैं तो चौंक उठी, डफ बाजन सो ।
सोवत रही अपने आँगन मे, जागी गारी गाजन सो ।।
देख्यौ तो द्वारे मोहन ठाड़े, सजे छैल सब साजन सो ।
'हरीचंद' मेरौ नाम लियौ,नित गारी दई बिन लाजन सों ।।८६।।

*

(होली डफ की)

पीरी परि गई, रसिया के बोलन सो । पीरी० ।।
आयौ जानि छैल होरी कौ, डरी लाज के खेलन सो ।।
एक प्रीति,दूजै होरी सिर पर, कैसै बचि हौ ठठोलन सो ।
'हरीचंद' सब कोउ जानेंगे, मेरी गलियन डोलन सो ।।८७।।

*

नित-नित होरी ब्रज मे रहो ।
विहरति हरि सँग ब्रज-जुवती गन, सदा अनंद लहो ।।
प्रफुलित फलित रहो वृंदावन, मधुप कृष्ण-गुन कहो ।
'हरीचंद' नित सरस सुधामय, प्रेम-प्रवाह बहो ।।८८।।

होली-विरह

(राग गौरी)

एरी बिरह बढ़ावन, आयौ फागुन मास री ।
हौं कैसी अब करूँ, कठिन परी गाँस री ॥
औरै रितु ह्वै गयी, बयारहुँ और री ।
औरै फूले फूल, और बन ठौर री ॥
औरै मन ह्वै गयौ, और तन पीय कौ ।
और चटपटी लगी, काम की जीय कौ ॥
बन के फूलन देखि, होत जिय सूल री ।
बिनु पिय मेटै कौन, बिरह की हूल री ॥
बिसरयौ भोजन, पान-खान सुख-चैन री ।
वही खुमारी चढ़ी रहत, दिन-रैन री ॥
रजनी नींद न आवै, जिय अकुलाय री ।
चौकि-चौकि हौं परौं, चित्त घबराय री ॥
अटा-अटा चढ़ि डोलौं, पिय के हेत री ।
कहूँ नहीं मेरे लाल, दिखाई देत री ॥
सपने मे जो कहुँ, पिय-रूप दिखात री ।
तौ यह बैरिन नींद चौकि तजि जात री ॥
जो कहुँ बाजन बाजै, गोकुल-गैल री ।
तौ उठि धाऊँ, आवत जानूँ छैल री ॥
या घर मे सखि ! क्यो नहि लागत आग री ।
जाके डर, हौं खेलन जात न फाग री ॥
बैरिन मेरी सास-जिठानी है सबै ।
देखन देत न मोहन कौ मुख री अबै ॥
जरौ लाज, ये ऐहै कौन काम री ।
जो नहिं देखन देत, पियर घनस्याम री ॥
मोहि अकेली निरबल-अबला जान री ।
तानि कान लौ खींच्यौ, मदन कमान री ॥
कहा करौं कहँ जाउँ, बताओ मोहि री ।
कहै किन और उपाय, सपथ है तोहि री ॥
जदपि कलंकित कहत, सबै ब्रज-लोग री ।
तऊ मिटत नहिं, मुख लखिवे कौ सोग री ॥
रोवन हूँ नहि देत, प्रगट मोहि हाय री ।

क्यौं ऐसौ दुख मिटै, बताउ उपाय री ॥
फिरि डफ बाजत, सुनि सखि आए स्याम री ।
होरी खेलत, प्राननाथ सुखधाम री ॥
अब कैसे रहि जाय, मिलौंगी धाइ कै ।
लाज छाँड़ि, जग नेह-निसान बजाइ कै ॥
'हरीचद' उठि दौरी भामिनि प्रीति सो ।
बरजे हू नहि रही, मिली मन-मीत सों ॥८९॥

*

(राग खभाती)

अरी, 'निसि नीद न आवै, होरी खेलन की चोप ।
स्याम सलौना, रूप रिझौना, उलह्यौ जोबन कोप ॥
अबही ख्याल रच्यौ जु परस्पर, मोहन गिरिधर भूप ।
अब बरजत मेरी सास-नँनदिया, परी विरह के कूप ॥
मुरली टेर सुनाइ, जगावै सोवत मदन अनूप ।
पै जिय सोच रही हौं अपने, जाय मिलौं हरि हूप ॥
इत डर लोग उत चोंप मिलन की, निरखि-निरखि वो रूप ।
'आनँदघन' गुलाल घुमड़न मे, मिलि हौ अँग-अँग गूप ॥९०॥

*

(राग बिहाग)

बिनु पिय आजु अकेली सजनी होरी खेलौं ।
बिरह-उसास उडाइ गुलालहि दृग-पिचकारी मेलौं ॥
गावों बिरह-धमार, लाल तजि हो-हो बोलि नवेली ।
'हरीचंद' चित माँहिं जराऊँ होरी, सुनो हो सहेली ॥९१॥

*

(ठुमरो)

उड़ि जा पंछी, खबर ला पी की ।
जाय बिदेस मिलो पीतम से', कहो बिथा बिरहिन के जी की ॥
सौने की चोंच मढाऊँ मै पछी, जो तुम बात करो मेरे ही की ।
'माधवी' लाओ पिय कौ सँदेसवा, जरनि बुझाओ बियोगिन ती की..९२॥

*

होरी नाहक खेलूँ मैं बन मे, पिया बिनु होरी लगी मेरे मन में ।
सूनौ जगत दिखात स्याम बिनु, बिरह-बिथा बढ़ी तन में ॥पिया बिनु०
काम कठोर दवारि लगाई, जिय दहकत छिन-छिन में ।
'हरीचंद' बिनु बिकल बिरहिनी, बिलपति बालापन मे ॥९३ पिया बिनु०

फाग-अनुराग

फलि रही सरसो चहुँ ओर, जो सौने के बेस बिछायत साँचै ।
चीर सजे नर-नारिन पीत, बढ़ी रस-रीति, बरंगना नाँचै ॥
त्यो 'कवि ग्वाल' रसाल के बौरन, भोरन-झोरन ऊधम माँचै ।
काम गुरू भयौ, फाग सुरू भयौ, खेलिऐ आजु बसत की पाँचैं ॥६४॥

*

गावै राग बानी वर, मानो सुधा सानी,
सुनि मोहे सब ज्ञानी ध्यानी, ध्यानी अलसंत री ।
केसर कुसभ रंग कंचन के जंत्र भरे,
झोरी भरि रोरी औ गुलाल बरसत री ॥
चोवा और अतर-फुलेल के फुहारे चलै,
मलै देव मीडै मुख, सुर सोहसंत री ।
'मनीराम' माघ सुदी पचमी पियारे कान्ह,
सजि व्रजराज आजु खेलत बसंत री ॥६५॥

*

फागुन लाग्यौ सखी जब ते, तब तें व्रजमंडल धूम मच्यौ है ।
नारि नवेली बचै नही एऊ, विसेष इहै सबै प्रेम अँच्यौ है ॥
साँझ-सकारे कही 'रसखानि' सुरंग गुलाल लै खेल रच्यौ है ।
को सजनी निलजी न भई, अरु कौन भटू जिहिं मान बच्यौ है ॥६६॥

*

ठौर-ठौर चाँचर, चुहुल मची चंगन की,
अंगन की औरै दसा, औरै रूप छायौ है ।
आनँद उरन अति, अमित अखंड छायौ,
नागर मिलन दिन दाव दरसायौ है ॥
लाज औ रुखाइयत, संग लै विवेक पति,
भाज्यौ व्रज मे ते मार बानन दबायौ है ।
प्रौढ़ी प्रीति जागन, नवल नेह लागन को,
फागुन सनेहिन के भागन ते आयौ है ॥६७॥

*

फाग मची बरसाने के बाग मे, पूर रह्यौ थल तान-तरंग सो ।
गोप-बधू इत ठाड़ी, गोपाल उतै, 'रघुनाथ' बढ़े सब संग सो ॥
घूँघट टारि, सखीन की ओट ह्व, प्यारी चलाई जो प्रेम-उमंगसो ।
लागी तौ मूठ अबीर की आय पै, प्यारौ अन्हाय गयौ वह रंगसो ॥६८॥

होली—बहार

बाजै डफ, ढोल बाजैं, फागु के समाज साजै,
ग्वालन के झुंड लै गोविंद फौज जोरी है।
बाधै सिर चीरा, हीरा झलकै कलंगिन मे,
अगन तरंग रंग भूषन करोरी है॥
केसरिया बागे, अनुराग-प्रेम पागे, मन-
माखन सभागे फहरात पट-छोरी है।
लीन्है भरि झोरी, पिचकारी रंग बोरी,
आजु होरी, आजु होरी, बरसाने आजु होरी है॥९९॥

*

खेलत सुफाग महाराज ब्रजराज आज,
नॉचै बार-अंगना सभा मे छल छूटि-छूटि।
'सेवक' बखानै सुर सकल समाँ के मँचै,
महत मनोज के मजा की मौजि लूटि-लूटि॥
घूमि-घूमि ताल सो, उझकि-झुकि झूमि-झूमि,
हाव-भाव भूमि लौ बताव तान जूटि-जूटि।
पूतरी सी, पातरी, नगी सी, पन्नी सी, नरी,
किन्नरी सी, किन्नरी-परी सी, परै टूटि-टूटि॥१००॥

*

मोहन औ मोहिनी ने फाग की मचाई लाग,
बाग मे बजत बाजे, कौतुक विसाल है।
केसर के रंग बहैं छज्जन पै, छातन पै,
नारे पै, नदी पै औ निकास पै उछाल है॥
'ग्वाल कवि' कुंकम की घालन रसालन पै,
तालन तमालन पै, फूटत उताल है।
गजन गुलालन पै, लालन पै, ग्वालन पै,
बाल-बाल-बालन पै. घुमड़यौ गुलाल है॥१०१॥

*

केसर की पिचका परिपूरन, पूर कपूर गुलाल कौ दौना।
आई सबै ललना ललितादिक, खेलत फाग निकुंज के कौना॥
केसरिया पट मे दृग पावै, गुलाल के त्रासन स्याम सलौना।
मानो कहूँ बिछुरयौ निज साथ तें, सोंनजुही में छिप्यौ मृग-छौना॥१०२॥

कीरति-किसोरी संग स्यामै लखि भई भोरी,
होरी देखि आई आज प्यारे बलबीर की ।
सारी जरतारी की किनारी मे गुलाल राजै,
तैसी छबि छाजै उत कास्मीरी चीर की ॥
हरै-हरै आवै, मंद-मंद सुर गावै दोऊ,
मिलि मुसकावै, दुति धावै री सरीर की ।
नैन कारे ओर पर, बरुनी की छोर पर,
भौहन-मरोर पर, ओप है अबीर की ॥१०३॥

*

खेलो मिलि होरी, घोरो केसर-कमोरी, फेंको-
भरि-भरि झोरी लाज जिय मे बिचारो ना ।
डारो बहु रंग, सग चगऊ बजावो, गावो,
सबहिं रिझावो, सरसावो संक धारो ना ॥
जोरि कर कहति निहोर 'हरिचद' प्यारे,
मेरी बिनती है एक, ताहि तुम टारो ना ।
नैन है चकोर, मुख चंद सो परैगी ओट,
याते इन आँखिन गुलाल लाल डारो ना ॥१०४॥

*

एक संग धाए नंदलाल औ गुलाल दोऊ,
दृगन गए जे भरि, आनँद मढ़ै नहीं ।
धोय-धोय हारी 'पद्माकर' तिहारी सौह,
अब तौ उपाय एकौ चित्त मे चढ़ै नही ॥
कहा करौ, कहाँ जाऊँ, कासौ कहौ, कौन सुनै,
कौऊ तौ निकारो, तातें दरद बढै नहीं ।
ऐरी मेरी बीर, जैसै-तैसे इन आँखिन तें-
कढिगौ अबीर, पै अहीर कौ कढ़ै नही ॥१०५॥

*

खेलिऐ फागु, निसंक ह्वै आजु, मयंकमुखी बड भाग हमारो ।
लेहु गुलाल दोऊ कर मे, पिचकारिन रग हिए महि मारो ॥
भावै तुम्है सो करो मोहि लाल, पै पाँउ परौ, जिन घूँघट टारो ।
'बीर' की सो, हम देखि हैं कैसै, अबीर तो आँख बचाय कै डारो ॥१०६॥

फागु के भीर अभीरन तें गहि, गोविंदै लै गई भीतर गोरी ।
भाय करी मन की 'पद्माकर', ऊपर नाय अबीर की झोरी ॥
छीन पितंबर कमर तें, सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी ।
नैनन चाइ, कह्यौ मुसक्याइ, लला ! फिर खेलन आइयो होरी ॥१०७॥

*

बातै लगाय, सखान तें न्यारौ कै, आजु गह्यौ बृषभान-किसोरी ।
केसर सो तन मंजन कै, दियौ अंजन आँखिन मे बरजोरी ॥
हे 'रघुनाथ' कहा कहौं कौतुक, प्यारे गोपालै बनाय कै गोरी ।
छाँडि दियौ इतनौ कहि कै, बहुरौ इत आइयो खेलन होरी ॥१०८॥

*

लालहि घेरि रही ललना, मनो हेम-लता लपटानि तमालहि ।
मालहिं टूटत जात न जानत, लूटत है रस-रासि रसालहि ॥
सालहि सौतिन के उर मे, चलरी उठि वेगि, दै ताल उतालहि ।
तालहि देत उठी ततकाल, लगाय गुपाल के गाल गुलालहिं ॥१०९॥

*

घेरि लिए घनस्याम, चहूँ दिसि दामिनि सी मिली चेटक कै गई ।
पीत पिछौरी रही कर खैंचि कै, बाँसुरिया हँसि छीनि कै लै गई ॥
प्रेम के रंगन सों भरिकै, अरु फाग के रंगन मोहिनी वै गई ।
केसर सो मुख मीड़ि गोपाल कौ, खंजन से दृग अंजन दै गई ॥११०॥

*

होरी कौ औसर हेरि लला हरुए ढिग आय गली मे लई गहि ।
री छरकायल छूटि गई, 'रघुनाथ' छबीले न फेरि सके लहि ॥
रीझि औ खीझि दोऊ प्रकटी, बृषभान-लली इमि दूर खरी रहि ।
नैन नँचाय कछू कहिवे कों, पै चाह्यौ कह्यौ, नहि आयौ कछू कहि ॥१११॥

*

फाग की रैन अँधेरी गलीन में, मेल भयौ सखि ! साँवरे जी कौ ।
हौं धरि लीन अचानक दौरि, लगावन काज गुलाल कौ टीकौ ॥
वा नें गुलाल लगायौ अली जब, लीन्हो मुठी मे अबीर सो नीकौ ।
बखहुँ छाँड़ि कन्हैया गयौ, न भयौ सखि ! हाय मनोरथ जी कौ ॥११२॥

*

रस भिजये दोऊ दुहुँनि, तऊ टिक रहे. टरै न ।
छबि सों छिरकत प्रेम-रँग, भरि पिचकारी नैन ॥११३॥

थोरी-थोरी बैस की अहीरन की छोरी संग,
भोरी-भोरी बातन उचारत गुमान की ।
कहै 'रतनाकर' बजावत मृदंग-चंग,
अंगन उमंग भरी जोबन उठान की ॥
घाघरे की घूमनि समेटि कै कछोटी किए,
कटि-तट फेंटि कोछी कलित विधान की ।
झोरी भरै रोरी, घोरि केसर कमोरी भरै,
होरी चली खेलन किसोरी वृषभान की ॥११४॥

*

चौरासी समान, कटि किंकिनी बिराजत है,
साँकर ज्यों पग जुग घुंघरू बनाई है ।
दौरी बे सँभार, उर-अंचल उघरि गयौ,
उच्च कुच कुंभ, मनु चाचरि मचाई है ॥
लालन गुपाल, घोरि केसर कौ रंग लाल,
भरि पिचकारी मुँह ओर कों चलाई है ।
'सेनापति' धायौ मत्त काम कौ गयंद जानि,
चोप करि चपै, मानों चरखी छुटाई है ॥११५॥

*

आयौ जुरि उततें समूह हुरिहारन कौ,
खेलन को होरी वृषभान की किसोरी सो ।
कहै 'रतनाकर' त्यो इत ब्रजनारी सबै,
सुनि-सुनि गारी गुनि ठठकि ठगोरी सो ॥
आँचर की ओट-ओटि चोट पिचकारिन की,
धाइ धँसी धूँधर मचाइ मंजु रोरी सो ।
ग्वाल-बाल भागे उत, झझरि उताल इत,
आपै लाल गहरि गहाइ गयौ गोरी सों ॥ ११६॥

*

पिय के अनुराग सुहाग भरी, रति हेरै न पावत रूप रफै ।
रिझवारि महा रसरासि खिलार, सु गावत गारि बजाय डफै ॥
अति ही सुकुमार उरोजन भार, भर मधुरी डग, लंक लफै ।
लपटै 'घनआनँद' घायल ह्वै, दृग पागल छ्वै गुजरी गुलफै ॥११७॥

नवल किसोरी भोरी केसर ते गोरी, छैल-
होरी मे रही है मद जोबन के छकि कै ।
चंपे कैसौ ओज, अति उन्नत उरोज पीन,
जाके बोझ खीन कटि जाति है लचकि कै ॥
लाल है चलायौ, ललचाइ ललना को देखि,
उघरारौ उर, उरबसी ओर तकि कै ।
'सेनापति' सोभा कौ समूह कैसे कह्यौ जात,
रह्यौ है गुलाल अनुराग सो झलकि कै ॥११८॥

*

केसर के हौजन पै मौज मची आनँद की,
दामिनी सी दमकत सग सुकुमारी की ।
हँसन चलाइन, बचाइन अदाइन सो,
मुरन-दुरन कोर भीजी तनु सारी की ॥
रसिक कुँवर जू के हाथन की लाघवता,
कहाँ लौ सराहो उतै खेलन खिलारी की ।
जघन सघन कद कुचन-कपोलन पै,
मन की भरन, तहाँ परन पिचकारी की ॥११९॥

*

खेलत खिलार गुन-आगर उदार राधा,
नागरि' छबीली फाग-राग सरसात है ।
भाग भरे भाँवते सो, औसर फब्यौ है आनि,
'आनंद के घन' की घमंड दरसात है ॥
औचक निसंक अक चोप खेल धूँधरि मे,
सखीन त्यों सैनन ही चैनन सिंहात है ।
केसू रंग ढोरि गोरे कर स्यामसुंदर को,
गोरी स्याम रंग बीचि बूड़ि-बूडि जात है ॥१२०॥

*

बैस नई, अनुराग मई, सु भई फिरै फागुन की मतवारी ।
कौंवरे हाथ रचैं मिहदी, डफ नीके बजाय रहै हियरा री ॥
साँवरे भौंर के भाय भरी, 'घनआनँद' सोनि मे दीसत न्यारी ।
कान्ह है पोषत प्रान-पिये, मुख अबुज च्वै मकरंद सी गारी ॥१२१॥

या अनुराग की फागु लखो, जहॉ रागती राग किसोर–किसोरी ।
त्यो 'पद्माकर' घाली घली, फिर लाल ही लाल गुलाल की झोरी ॥
जैसी की तैसी रही पिचकी कर, काहू न केसर–रंग मे बोरी ।
गोरी के रंग मे भीजिगौ सॉवरौ, सॉवरे के रँग भीजिगी गोरी ॥१२२॥

*

आई खेलि होरी, कहूँ नवल किसोरी भोरी,
बोरी गई रंगन सुगधन झकोरै है ।
कहै 'पद्माकर' इकत चलि चौकी चढि,
हारन के बारन के बद्–फद् छोरै है ॥
घाघरे की घूमनि, उरुन की दुबीचै पारि,
आँगी हू उतारि, सुकुमार मुख मोरै है ।
दंतन अधर दाबि, दूनरि भई सी चाप,
चौवर–पचौवर कै चूनरि निचौरै है ॥१२३॥

*

रौक्यौ रहै अब क्यो करि के, मिलि खेलन हौस कौ ओज बढ्यौ है ।
राख्यौ दुराव दुराय हिऐ, अनुराग सु बाहिर आनि कढ्यौ है ॥
सॉवरे छैल गरयारिनि गारिन, गायके दोहरा एक पढ्यौ है ।
चौंपनि चौगुनिऐ पुट लागि है, आजु तौ सौगुनौ रंग चढ्यौ है ॥१२४॥

*

फागु खेल स्याम सग सदन सिधारी प्यारी,
राजै दुति दामिनी सी भामिनी भरी अनग ।
'कवि राव राना' बैठ रतन सिहासन पै,
दर्प भरी दर्पन लै भूषन सँभारै अंग ॥
चंद मुख चंदन तें चंद की कला सी खाति,
कंचन की झारिन में जल भरि लाई गंग ।
कोमल कपोलन ते धोवती गुलाल–लाली,
त्यो–त्यो होत आली ! अति गहब गुलाबी रग ॥१२५॥

*

राधा नवेली सहेली समाज मे, होरी कौ साज सजे अति सोहै ।
मोहन छैल खिलार तहॉ रस–प्यास भरी अँखियान सो जोहै ॥
डीठि मिले, मुरि पीठि दई, हिय–हेत की बात सकै कहि कोहै ।
सैनन ही बरस्यौ 'घनआनँद', भीजनि पै रँग–रीझनि मोहै ॥१२६॥